श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

नियमसार प्रवचन

प्रथम भाग

प्रवक्ता :-

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी

"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज

सम्पादक :—

महावीरप्रसाद जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ

प्रकाशक —

खेमचन्द जैन, सर्राफ

मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला,

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

(उ० प्र०)

प्रथम संस्करण] १००० १९६६ [मूल्य २)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के संरक्षक

(१) श्रीमान् लाला महावीर प्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ

(२) श्रीमती फूलमाला जी, धर्मपत्नी श्री लाला महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ।

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के प्रवर्तक महानुभावों की नामावली :—

(१) श्री भवरीलाल जी जैन पाण्ड्या, झूमरीतिलैया
(२) ,, ला० कृष्णचन्द जी जैन रईस, देहरादून
(३) ,, सेठ जगन्नाथजी जैन पाण्ड्या, झूमरीतिलैया
(४) ,, श्रीमती सोवती देवी जी जैन, गिरिडीह
(५) ,, ला० मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन, मुजफ्फरनगर
(६) ,, ला० प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन, प्रेमपुरी, मेरठ
(७) ,, ला० सलेखचन्द लालचन्द जी जैन, मुजफ्फरनगर
(८) ,, ला० दीपचन्द जी जैन रईस, देहरादून
(९) ,, ला० बारूमल प्रेमचन्द जी जैन, मसूरी
(१०) ,, ला० बाबूराम मुरारीलाल जी जैन, ज्वालापुर
(११) ,, ला० केवलराम उग्रसैन जी जैन, जगाधरी
(१२) ,, सेठ गैंदामल दगडू शाह जी जैन, सनावद
(१३) ,, ला० मुकुन्दलाल गुलशनराय जी, नई मंडी, मुजफ्फरनगर
(१४) ,, श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन, देहरादून
(१५) ,, श्रीमान् ला० जयकुमार वीरसैन जी जैन, सदर मेरठ
(१६) ,, मंत्री जैन समाज, खण्डवा
(१७) ,, ला० बाबूराम अकलंकप्रसाद जी जैन, तिस्सा
(१८) ,, बा० विशालचन्द जी जैन, आ० मजि०, सहारनपुर
(१९) ,, बा० हरीचन्द जी ज्योतिप्रसाद जी जैन ओवरसियर, इटावा
(२०) श्रीमती प्रेम देवी शाह सुपुत्री बा० फतेलाल जी जैन संघी, जयपुर
(२१) श्रीमती धर्मपत्नी सेठ कन्हैयालाल जी जैन, जियागंज
(२२) ,, मंत्राणी, जैन महिला समाज, गया
(२३) श्रीमान् सेठ सागरमल जी पाण्ड्या, गिरिडीह
(२४) बा० गिरनारीलाल चिरंजीलाल जी, गिरिडीह

(२५) ,, बा० राधेलाल कालूराम जी मोदी, गिरिडीह
(२६) श्री सेठ फूलचन्द बैजनाथ जी जैन, नई मण्डी, मुजफ्फरनगर
(२७) ,, ला० सुखबीरसिंह हेमचन्द जी सर्राफ, बडौत
(२८) श्रीमती धनवती देवी ध० प० स्व० ज्ञानचन्द जी जैन, इटावा
(२९) श्री दीपचद जी जैन ए० इंजीनियर, कानपुर
(३०) श्री गोकुलचंद हरकचंद जी गोधा, लालगोला
(३१) दि० जैनसमाज नाई मडी, आगरा
(३२) दि० जैनसमाज जैनमन्दिर नमकमडी, आगरा
(३३) श्रीमती शैलकुमारी ध० प० बा० इन्द्रजीत जी वकील, कानपुर
* (३४) ,, सेठ गजानन्द गुलाबचन्द जी जैन, गया
* (३५) ,, बा० जीतमल शान्तिकुमार जी छावडा, झूमरीतिलैया
* (३६) ,, सेठ शीतलप्रसाद जी जैन, सदर मेरठ
* (३७) ,, सेठ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बडजात्या, जयपुर
* (३८) ,, बा० दयाराम जी जैन आर. एस. डी. ओ. सदर मेरठ
* (३९) ,, ला० मुन्नालाल यादवराय जी जैन, सदर मेरठ
× (४०) ,, ला० जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन, सहारनपुर
× (४१) ,, ला० नेमिचन्द जी जैन, रुडकी प्रेस, रुडकी
× (४२) ,, ला० जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन, शिमला
× (४३) ,, ला० बनवारीलाल निरजनलाल जी जैन, शिमला

नोटः—जिन नामोके पहले * ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोकी स्वीकृत सदस्यता के कुछ रुपये आ गये हैं बाकी आने हैं तथा जिनके नामके पहले × ऐसा चिन्ह लगा है उनके रुपये अभी नही आये, आने हैं।

आत्म-कीर्तन

शान्तमूर्ति न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

द्वारा रचित

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥टेक॥

[१]

मैं वह हू जो हैं भगवान, जो मैं हू वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ राग वितान ॥

[२]

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥

[३]

सुख दुख दाता कोई न आन, मोह राग रुप दुख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ॥

[४]

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुँचू निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम ॥

[५]

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका कर्त्ता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ॥

—:०:—

नियमसार प्रवचन प्रथम भाग

[प्रवक्ता:— अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज]

णमिऊण जिणं वीरं अणंतवर णाण दंसणसहावं।
वोच्छामि णियमसारं केवलि सदकेवली भणिदं ॥१॥

अनन्त उत्तम ज्ञानदर्शन स्वभाव वाले वीर जिनेन्द्रको नमस्कार करके केवली और श्रुतकेवलीके द्वारा कहे इस नियमसार का वर्णन करूँगा।

नियमसारका संक्षिप्त परिचय— यह नियमसार नामक एक ग्रंथ है, अब इसका प्रारम्भ हो रहा है। नियमसार ग्रंथमें पहिले पढ़े गए परमात्मप्रकाशके विषयकी भांति एक सहजस्वभावका वर्णन किया गया है। इसमें चरणानुयोगका भी निश्चयदृष्टिसे वर्णन करते हुए इसी ज्ञायकस्वभावके आलम्बन पर बल दिया गया है। इसमें मोक्षमार्गका वर्णन है। अनादिकालसे भटकते हुए चले आए इन प्राणियोंको कैसे मोक्षमार्ग मिले? उसका मौलिक अमोघ उपाय इस ग्रन्थमें बताया गया है।

वीर जिनेन्द्रदेवको प्रणमन— इस ग्रन्थके आदि में इसके रचयिता श्री कुन्दकुन्ददेव मंगलाचरणमें जिनेन्द्र वीरको नमस्कार कर रहे हैं। आजके समय जिनेन्द्र वीरका शासन चल रहा है और जब तक भी यह धर्मपरम्परा रहेगी, वीर प्रभुका शासन कहा जाएगा। जैसे ऋषभदेवके निर्वाणके बाद अजितनाथ स्वामीके तीर्थंकर बननेके पहिले जितना समय था, वह ऋषभदेवका शासन कहलाता था। इसी प्रकार सब तीर्थंकरोंका समय है। पार्श्वनाथ भगवान्‌के तीर्थंकर होनेके बाद जब तक वीरप्रभु तीर्थंकर नहीं हुए, तब तक पार्श्वनाथके शासनका समय था। अब जिनेन्द्रवीरके शासनके बाद जितने समय तक धर्मपरम्परा रहेगी (समझ लीजिए पंचम काल तक) तब तक वीरप्रभुका शासनकाल कहलायेगा। इसी कारण वीरप्रभुकी विरदवृत्तिसे प्रभावित होकर कुन्दकुन्ददेवने जिनेन्द्रवीरको नमस्कार किया है।

वीर शब्दका अर्थ— वीर शब्दका अर्थ है—वि ई र, इसमें तीन शब्द हैं। वि का अर्थ है विशिष्ट, ई का अर्थ है लक्ष्मी और र का अर्थ है देने वाला। विशिष्टां ई राति ददाति इति वीर। जो विशिष्ट ज्ञान लक्ष्मीको देवे, उसे वीर कहते है। लक्ष्मीका नाम है ज्ञानदर्शनस्वभावका, पर लोकव्यव-

हारमें लोगोंने हजारों लाखों करोड़ोंकी सम्पदाका लक्ष्मी नाम रख दिया है। चार हाथोंसे रुपए बरसाती हुई, जिसके दोनों ओर हाथी माला लिए हों या कलशोंसे भी अभिषेकसा करते हुए ऐसा रूपक भी बनाया, किन्तु लक्ष्मी शब्दमें जो अर्थ भरा है, उस अर्थसे भाव निकलता है ज्ञान दर्शन स्वभाव। उसे लक्ष्मी कहो या लक्ष्म कहो, एक ही शब्द है। लक्ष्म शब्द नपुंसक शब्द है, लक्ष्मी शब्द स्त्रीलिङ्ग शब्द है, पर शब्द वही है। लक्ष्म का अर्थ है लक्षण, चिन्ह। अपने आपका जो चिन्ह है, आत्माका स्वरूप है प्रतिभास चैतन्यज्ञानदर्शन। इसी प्रकाशका नाम है लक्ष्मी। ऐसी विशिष्ट लक्ष्मीको जो दे सकते है, उसे वीर कहते हैं।

मूलभाव और रूढि—भैया! पहिले जितने धर्मके पर्व मनाये जाते थे, उन सब पर्वोंमें कल्याणकी पुट रहती थी, किन्तु जैसे जैसे समय गुजरता गया कि उसका रूपक बिल्कुल विलक्षण हो गया है। एक दीवाली त्यौहारको ही ले। दीवाली दो बार मनायी जाती है—सुबह और शाम। अमावस्याके सवेरे व शाम। अमावस्याके सुबह तो वीरप्रभुके निर्वाण होने की दिवाली है और शामके समय वीरप्रभुके मुख्य गणधर इन्द्रभूति अथवा गौतम उनके केवलज्ञानके की दिवाली है। सुबह वीरप्रभु मोक्ष गए और शामको गौतम गणधरको केवलज्ञान हुआ। कभी कभी अमावस्याके दिन सुबह ८-९बजे तक ही अमावस्या रह जाती है और चौदसके दिन दोपहरके बाद या शामके बाद अमावस्या शुरू हो जाए तो चौदसको रात्रिको लोग दीवाली मना लेते है। वे चौदसके भावसे दीवाली नही मानते। मानते हैं अमावसके भावसे, किन्तु सन्ध्याको अमावस्या पहिले पड गई।

दिवालीका मूलविरुद्ध रूपक— यह दीवाली है ज्ञानलक्ष्मीकी दीवाली। अब धीरे धीरे देखो, आज क्या रूपक बन गया? उस ज्ञानको तो भूल बैठे और मात्र धन पैसा, रोकड वही, तराजू, बाट, घोड़ा—ये ही सब सजाए जाते है और इनको ही पूजा जाता है। बजाज लोग होंगे तो गजोंको पूजेंगे, पसारी पसरट वाले होंगे तो तराजू बाट पूजेंगे। कोई लेखक या मुनीम होंगे तो अपनी कलम दवात पूजेंगे और सेठ साहब अपनी रोकड़ पूजेंगे। क्यासे क्या रूपक बन गया? ज्यों ज्यों समय गुजरता गया, उसका असली प्रयोजन भूलते गए और अपने स्वार्थ या मर्शाके अनुकूल तत्त्व आने लगे।

रक्षाबन्धनका मूल भाव—रक्षाबन्धनका त्यौहार ले लो। मूलमें क्या रूप था? अकम्पनाचार्य आदि मुनिराजोंको उस दिन श्री विष्णु ऋषिराजने उपद्रवसे बचाया था। जब दूसरे दिन लोगोंने उनके आहारके लिए

उनके अनुकूल पथ्य भोजन बनाया। इस नगरमें बड़ी खुशी छाई थी। जहा सात सौ मुनियोका सघ जलाया जा रहा हो और किसी समर्थ महापुरुषके द्वारा उपसर्ग बचा लिया गया हो, उस समय नगरवासियोंके हर्षका क्या ठिकाना है? हर्षके मारे सारा नगर उछल रहा था। मुनिराज आये तो उनको भोजन मुख्यतासे क्या दिया गया? जो गलेमें जल्दी गिल जाय सेवई अथवा पतली खीर।

रक्षाबन्धनका उत्तरकालमें निर्वाह— वह साल तो गुजर गया। अब आया दूसरा साल। तो दूसरे वर्ष उन मुनियोका उपसर्ग हुआ और आहार दे, ऐसा-ऐसा तो न हुआ। वह तो एक दफा हो गया। जब दूसरा वर्ष आया तो उपसर्गका और उस खुशीका ध्यान तो रहा कुछ, पर उस कार्यको कैसे निभाये? सो कुछ स्मरणके लिए सूचक कोई बात बनाई। अब और साल गुजरा, रक्षाका ना ध्यान रहा कि रक्षा होनी चाहिए। रक्षाकी थी विष्णुकुमार मुनिने, सो सबकी रक्षा करना अपना भी कर्तव्य है। बड़े महापुरुषोंने यदि बड़ी रक्षा की थी तो अपन लोग छोटी-छोटी रक्षा करलें। सो जो साधर्मीजन हुए उस समय उनकी रक्षाका सूत्रपात हुआ। फिर और समय गुजरा तो उन व्रती, त्यागी, सधर्मी आदि लोगोका भी ख्याल भूल गये और सोचा कि अपने ही घरमें तो बुवा हैं, बहिनें हैं, गरीब हैं, विधवा हैं, दु खी हैं इनका ही रक्षण करें। सो उनके रक्षणपर दृष्टि हुई।

रक्षाबन्धनका रूढिरूप— फिर कैसा क्या हुआ, हम इतिहासके जाननेवाले तो नहीं है, पर अदाजसे बात बतला रहे है। धीरे-धीरे असली बातोंका लोप हुआ और अपने मन माफिक बाते आईं। खैर कुछ दिन यों ही चला। फिर यह हुआ कि चलो बहिन, बुवा, विधवायें कोई बांधे, उन्हें पैसा दे उनकी कुछ मिठाई खावे। वे मिठाई देने लगीं तो लोग उन्हें पैसे देने लगे। फिर चलते-चलते जितनी मिठाई दे उसके अनुपातसे लोग पैसे देने लगे। अगर छटाक भर मिठाई धर दी तो उसको मिल जायेगी अठन्नी और अगर २॥ सेर धर दी तो उसको मिल जायेंगे बीस रुपये। क्यासे क्या रूप बिगड़ता चला जाता है? जो हितकी और असली बात है वह तो छिपती चली जाती है। लक्ष्मी शब्दका अर्थ भी यो वैभव हो गया। यह सब समयका काम हैं।

वीरकी विशेषता— प्रभु वर्द्धमान स्वामी का वीर भी नाम है। इस वीर शब्दका अर्थ है जो विशिष्ट ज्ञानलक्ष्मीको देवे। संस्कृत भाषा जानने वाले इसका स्पष्ट अर्थ जानेंगे। वि ई र ऐसे तीन शब्दोंसे मिलकर वीर बना है। ऐसे वीरप्रभुका इस ग्रन्थके आदिमें स्मरण किया तो विशेषण

क्या दिया है कि जो अनन्त उत्तम ज्ञानदर्शन स्वभाव वाला है, जो स्वय ज्ञानका भण्डार हो उसही का तो ऐसा निमित्त है कि उससे दूसरेको भी ज्ञान प्राप्त हो। तो प्रभु वीर अनादि अनन स्वभाव वाला है।

प्रभुस्वरूपका अनुमान— इसके अदाजके लिये जरा कुछ देर बाहरी विकल्पोंको त्यागकर अपने आपके अन्तरकी स्वभावकी परख करें—मैं किस रूप हू, किसके द्वारा रचा गया हू, मेरा क्या आकार प्रकार है। इस ओर दृष्टि दें तो क्या मिलेगा ? अपने आपमे अपनी पकड़ करने के लिए एक ज्ञानदर्शनात्मक चैतन्यस्वभाव है। इसमे स्पर्श है नहीं जो छूकर समझे कि यह मै आत्मा हू। रस है नहीं जो चखकर जाना जाय कि यह आत्मा तो मीठा है और यह आत्मा खट्टा है। कहते तो है लोकव्यवहारमे ऐसा कि इससे मत भिडना, नहीं तो खट्टा खावोगे। यह बडा कडुवा पुरुष है, यह बहुत मीठे मिजाजका है, पर ये सब रूपक कहे है अलकारमे। आत्मामें रस नहीं है जो चखकर जान लिया जाय कि आत्मा कैसा है ? आत्मामे गध नहीं जो सूँघ लिया जाय कि कैसा गध है, इसमे रूप नही जो नेत्रोसे जान लिया जाय कि कैसा रूप है ?

ज्ञानका व्यक्तरूप आनन्द— भैया ! कोई लोग कहते हैं कि जब बडे ध्यानमें बैठते हैं तो भीतरमे सफेद उजेले का झक्काटा दीखता है। पर है क्या सफेद ? है क्या ऐसा सफेद रंगका उजाला जैसा कि बिजलीकी रोशनीमे सूर्य चादकी रोशनीमे सफेद उजाला है ? नहीं है। पर जब यह ज्ञानकी स्वच्छता जाननेके लिए उद्यम करते है तब इसे पूर्व स्वच्छताके दिख जाने के नाते कुछ उजाला महसूस करते हैं किन्तु जब ज्ञानस्वरूप अनुभवमे आता है तब वहा उजाला, झक्काटा नहीं होता, किन्तु अनन्त उत्तम सहज स्वाधीन आनन्दका अनुभव करते है। ज्ञानका यदि कुछ रूप मानें तो आनन्दरूप तो हो सकता है मगर उजाला झक्काटा, सफेद आदि रूप यह नहीं हो सकता।

ज्ञानविकासकी आनन्दसहभाविता— भैया ! आनन्द उपजाता हुआ यह ज्ञान प्रकट होता है। जैसे एक जगदीशी टीका है वेदातमें, उसमे एक दृष्टात दिया है कि कोई नई बहू थी। उसके प्रथम बार गर्भ रह गया। बहू बोली साससे कि सासू जी, जब हमारे बच्चा पैदा हो तो हमे जगा देना, ऐसा न हो कि सोते हुएमे हो जाय। तो सास उत्तर देती है कि बेटी घबड़ावो मत जब बच्चा पैदा होगा तो तुम्हें जगाता हुआ ही पैदा होगा। तो यह ज्ञान जब प्रकट होता है तो आनन्दको विकसितकर प्रकट होता है। ऐसा वास्तविक ज्ञान कही न होगा जो ज्ञानकी वृत्ति भी चल रही हो और

क्लेशका अनुभव भी कर रहा हो। जहां क्लेश है, दुःख है, शल्य है, चिंता है, विकल्प है वहां ज्ञानका विलास नहीं है, वहा अज्ञानका विलास है। जहा ज्ञान अपने शुद्ध ज्ञानसे प्रकट हो रहा है वहा शुद्ध आनन्द है।

कुन्दकुन्दाचार्यका परिचय-- भगवान् वीर जिनेन्द्र अनन्त श्रेष्ठ ज्ञान दर्शन स्वभाव वाला हैं, विकास वाला है, ऐसे जिनेन्द्र वीरको नमस्कार करके कुन्दकुन्दाचार्य देव नियमसार ग्रन्थको कहनेका संकल्प करते हैं। ये कुन्दकुन्दाचार्य १२, १३ वर्षकी अवस्थामे मुनि हो गए थे, और फिर १०-१५ वर्षके ही बाद उनके समयके समस्त मुनिसघने उन्हे आचार्यपद दिया। पुत्रको बचपनसे माता कैसा बना लेती है? इसका उदाहरण कुन्दकुन्ददेव है। जब कुन्दकुन्ददेव बच्चे थे, उनकी मां पालनेमे झुलाती थी तो झुलाती हुई मां क्या गीत गाया करती थी, वह गीत ज्ञान से भरा था—

शुद्धो बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि, संसारमायापरिवर्जितोऽसि।
ससारस्वप्न त्यज मोहनिद्रा श्रीकुन्दकुन्द जननीदमूचे॥

कुन्दकुन्दकी मा कुन्दकुन्दसे कह रही हैं कि हे बालक! तू शुद्ध है, बुद्ध है, निरञ्जन है, ससारकी मायासे रहित है, तू ससारस्वप्नको मोह नींदको छोड़।

बाल्यमे शुद्धदर्शन— वैसे भी बचपन बडा शुद्ध होता है, ज्यों-ज्यों उमर बढ़ती जाती है और विभाव अपना घर बसाते है तब यह टेढा बनता है, कुटिल बनता है। किन्तु बालक तो अपने बचपनमे सरल और शुद्ध होते है लेकिन कुन्दकुन्दकी माका उस बचपन पर ध्यान नहीं है, किन्तु उसकी आत्माका ध्यान है। बचपनमे मनुष्यके पुण्य ज्यादा होता है क्यो कि पूर्वभवकी तपस्या करके नया नया पुण्य यहा आया है। जैसे जैसे उसकी उमर बढ़ती है उसका पुण्य खराब होता जाता है। मोह बढा, राग बढा, छल कपट करने लगा, धोखा देने लगा फिर धीरे धीरे पुण्य खत्म हो जाता है। यहा तो कुन्दकुन्दकी मा उनके आत्मस्वरूपको देखकर बोल रही है कि तू शुद्ध है।

बालककी सरलता-- एक बाबू साहब एक सेठके कर्जदार थे। सो बाबू जी ने देखा कि सेठ जी आ रहे है, हमसे रुपये मागेंगे। सो अपने लड़के से कह दिया कि तुम चबूतरे पर खेलो—सेठ आयेगा, पूछेगा कि तुम्हारे बाबू कहा है, तो तुम कह देना कि बाबू साहब बाहर गए हैं। अब वह खेलता रहा चबूतरे पर। सेठजी ने आकर पूछा कि तुम्हारे बाबू घर हैं ना? तो बोला कि बाबू जी बाहर गए। फिर पूछा कि कितने दिनोमे

आयेंगे ? तो बोला कि ठहरो बाबू जी से पूछकर अभी बतायेंगे। देखा ना, बच्चेकी सरलता।

ज्ञानी माता पिताकी बालकपर हितदृष्टि— कुन्दकुन्ददेवकी मा पालने में झूलते हुए बच्चे से कह रही है कि तू शुद्ध है, ज्ञायकस्वरूप है, रागद्वेष मोह आदिकसे रहित है, ज्ञानस्वरूप है, निरञ्जन है, तू कर्मरूपी अञ्जनसे परे है, विभाव तुमसे परे हैं। तू संसारके स्वप्नको, मोहकी नींद को तोड़। हितकारिणी मा थी वह। नहीं तो मा यों कहती कि तू बड़ा हो, राजा हो, विवाह कर, ऐसे गीत गाती। पर यह तो बड़े पुरुषोंकी अलौकिक बात है। इनको जब बालक पर प्रेम उमड़ेगा तो यों उमड़ेगा कि यह सम्यग्ज्ञानी बने, सम्यग्दृष्टि हो, अपने आपका कल्याण करे। ऐसी उत्तम भावना होती है। पिता रक्षकका नाम है। पाति इति पिता, जो रक्षा करे उसे पिता कहते हैं। जीवकी रक्षा ज्ञानसे है। धन कितना ही जोड़कर रख जावो, मगर वह अज्ञानमें है तो अधीर रहेगा, विह्वल रहेगा और संकट घिर जायेंगे। इस कारण वास्तवमें वही पिताका नाता निभाता है जो अपने बालकको मोक्षमार्गकी विद्या सिखानेमें लगाता है।

कुन्दकुन्दाचार्यका संकल्प— ऐसे कुन्दकुन्ददेव कुमार अवस्थामें साधु हुए। शास्त्रोंका उन्होंने अध्ययन किया। गुरुपरम्परासे गुरुचरणोंमें रहकर अध्यात्मविद्याका मर्म जाना। बड़ी युक्तियोंमें ये बड़े कुशल थे। ऐसे योगी कुन्दकुन्ददेव कहते हैं कि केवली भगवान् और श्रुतकेवली भगवानने जो कहा है ऐसे मोक्ष और मोक्षमार्गरूप इस नियमसारको मैं कहूंगा।

आगमोपदेशकी परम्परा— इस नियमसार ग्रन्थमें जो कुछ तत्व बताया जायेगा वह केवली भगवान् और श्रुतकेवलीके द्वारा प्रणीत है। इसका मूलकर्ता तो केवली भगवान है अर्थात् वीतराग सर्वज्ञ हितोपदेशी अरहंत भगवानकी जो दिव्यध्वनि खिरती है वह दिव्यध्वनि समस्त आगमों का मूल कारण है। उस दिव्यध्वनिको सुनकर गणधरदेव द्वादशांग अंग बाह्यरूप आगमकी रचना करते हैं। फिर उन श्रुतदेवताकी परम्परासे आचार्य उसका व्याख्यान करते हैं। इन आचार्योंके व्याख्यानकी परम्परा से आज जो कुछ आगम हमारे आपके सामने है वह उस मूल परम्परा से है।

दूषित वचनोंकी अप्रतिष्ठा— यद्यपि बीचमें कुछ लोगोंने कुछ संस्कृत श्लोक भी रचकर या फिर थोड़ा मिला जुलाकर रचना भी कर दी है किन्तु सच्चे रत्नोंमें जैसे खोटे रत्न कब तक चल सकेंगे ? प्रथम ही वह पारखी

उन खोटे रत्नोंको अलग बता देगा। मान लो एक पारखी न कर सका तो दूसरा पारखी उसे अलग कर दिखायेगा। रह नहीं सकता है खोटा रत्न असलीमें मिलकर, असली बनकर। इसी प्रकार जो रागपूर्ण वचन है, तत्त्वविरुद्ध वचन हैं वे किन्हीं पुरुषोंके द्वारा आगममें मिला भी दिये जायें तो भी टिक नहीं सकते हैं। पारखीजन उन्हें पहिचानते हैं और विनाशीक जान कर उन्हें अलग कर देते हैं।

प्रयोजनभूतविषयमें सदोष व निर्दोष वचनके परिचयकी सुगमता— प्रयोजनभूत तत्त्वके सम्बन्धमें सदोष और निर्दोष वचनका जानना बहुत कठिन नहीं है। जिन वचनोंसे स्वभावपर दृष्टि जाय, रागद्वेष मोह दूर करनेकी शिक्षा मिले वे वचन प्रमाणीक हैं और जो रागद्वेष मोहको धर्म बतायें, कुपथ पर ले जानेकी प्रेरणा करें वे वचन एकदम मालूम ही पड जाते हैं कि ये सदोष हैं। सदोष वचन आगममें कब तक टिक सकेंगे? उन्हें पारखी अलग कर देते हैं। यह निर्दोष व्याख्यानपरम्परा केवली और श्रुतकेवलीसे चली आयी है। आचार्यदेव यहां कह रहे हैं कि हम कपोलकल्पित बात नहीं कह रहे हैं, किन्तु जिस बातको केवलीकी दिव्यध्वनिमें बताया गया, श्रुतकेवलीके भाषणमें बताया है वही तत्त्व बताया जायेगा। कपोलकल्पित बात कदाचित् सत्य भी हो तो भी सुनने वालेको केवल कहने मात्रसे प्रमाणिकता नहीं आती। इस कारण आचार्यदेवने स्वयं ही मंगलाचरणकी गाथामें यह कह दिया कि केवली और श्रुतकेवली द्वारा कहे हुए तत्त्वको मैं कहूंगा।

जिनशासनमें मार्ग व मार्गफलके कथनकी मुख्यता— भैया! इस नियमसारमें मार्ग और मार्गफल बताया जावेगा। जिनशासनमें मार्ग और मार्गफल ये दो प्रकारके तत्त्व बताये गए हैं। कौनसा तो मार्ग चलने योग्य है और उस मार्गसे चलनेका क्या उपाय है? यह जिनेन्द्रशासनमें बताया गया है। दूसरी बात मार्गका फल बताया है—मार्ग तो है मोक्षका उपाय। इस अनादि बन्धनबद्ध वैभवदूषित इस आत्माका संकटोंसे कैसे छुटकारा हो? उस उपायको मार्ग कहते हैं और वह मार्ग मिल जाय तो उस मार्गसे चलनेका जो फल रहता है वह है मोक्ष। तो मोक्ष और मोक्षका उपाय ये दो बातें जिनशासनमें बतायी गई हैं।

मार्ग शब्दका भाव— इस मार्ग शब्दका अर्थ है इष्ट स्थान खोजा जाता है जिसके द्वारा उसे मार्ग कहते हैं। जीवका सर्व अभीष्ट सिद्धजीवन है। यह जीव चिरकाल तक या तो निगोदमें रहता है या सिद्ध अवस्थामें तो निगोदकी कोई सीमा नहीं होती है। चिरकाल तक जीव निगोदमें

रहता है और चिरकाल तक ही यह जीव मोक्षमें रहता है। मोक्षकी सीमा नहीं है। मोक्ष होने के बाद फिर कभी संसारमें भटकना नहीं होता। निगोदसे तो निकलना हो जाता है। निगोद और संसार—इन दो दशावों को छोड़कर जीव अन्य पदमें बहुत काल तक नहीं रहता। इसका पशु पक्षी जैसा जीवन सदा नहीं रहता। जैसे हम आप मनुष्य हुए वैसा ही यह जीवन सदा न रहेगा।

जीवनका गुजरना— जैसे पर्वतसे गिरने वाली नदीका वेग जो बह गया वह वापिस नहीं होता, इसी तरह इस जीवनका समय जितना गुजर गया वह गुजर गया, फिर उसका कुछ भी समय वापिस नहीं आ सकता है। जैसे जिसकी अवस्था ६०-६५ वर्षकी हो गयी, शरीरमें शिथिलता आने लगी, बड़ा धनी है, बड़ा गुणी है, बड़ा उसका यश है, खूब प्रतिष्ठा है, समाजमें मान्यता भी है, पर वह चाहे कि मेरी उम्र ८ वर्षके बच्चेकी जैसी हो जाय तो नहीं हो सकती। एक साल क्या, एक दिन भी पीछे नहीं हो सकता है। जो समय गुजरा वह गुजर गया। यदि इसी समय में कोई कर्तव्य न कर पाया तो बतलावो फिर क्या हाथ रहेगा? कुछ भी हाथ न लगेगा, व्यर्थ ही यह जीवन खो दिया।

जीवनसमयका दुरुपयोग व सदुपयोग— जीवन व्यर्थ खोनेका अर्थ है जीवनको विषयोंमें, पापोंमें ही लगा देना। ज्ञानमें समय गुजरे, प्रभुके स्मरणमें समय गुजरे, अपने आत्माके एकत्वकी ओर उन्मुख हो, इस तरह से समय गुजरे तो वह है जीवनका सदुपयोग। और विषयोंके सुखमें समय गुजारा—खूब खाते हैं मौजसे, बड़ा स्वाद आता है, आनन्द लेते हैं, जो चाहें दृश्य देखते हैं, जो मनमें आया उसी रूपको देखते हैं, विषयभोगों के साधन भी सुलभ बना लिए गए हैं, मनमाना विषयोंमें सुख लूटते हैं, ऐसे अज्ञानी जीव भले ही समझें कि हम बड़ी चतुराईका काम करते हैं किन्तु जो इस प्रभुकी दशा हो रही है वह दयनीय हो रही है, वे समयका दुरुपयोग कर रहे हैं। यह मनुष्यजीवन बड़ा दुर्लभ है। उसकी दुर्लभताका वर्णन करनेमें किसीके हजारों जीभ भी हों तो भी वह समर्थ नहीं है।

नरजीवनके श्रेष्ठताका अङ्कन— सारे लोकमें दृष्टि पसारकर देख लो, मच्छर फिरते हैं, मेढक मछलियां हैं, पशु पक्षी हैं, चूहा बिल्ली हैं, कुत्ता सूकर हैं, कीड़े मकौड़े हैं, इनकी जिन्दगी निहारलो क्या ऐसा बनना चाहते हो? मन तो नहीं चाहता होगा। बड़ी तुच्छ दशा है। इन जगतके जीवों की हालतको देखकर अपने आपके जीवनका मूल्य तो समझलो। क्या यह जीवन मोही जीवोंके हाथ बेचना है? जिनमें मोह और राग

बढ़ाया है ऐसे घरके लोगोंका ही क्या जाप करते रहना है ? धन सम्पदा, वैभव इज्जत क्या ये सदा रह सकते हैं ? इन असार बातोंमें कुछ भी सार न पावोगे ।

विवेक— यह मन केवल दो ही ठिकाने लगाने योग्य है । एक तो वीतराग सर्वज्ञ प्रभुके स्वरूपमें और दूसरे अपने आत्माके स्वभावमें । तीसरी जगह मन नहीं बेचना है । इन दो बातोंकी सिद्धिके लिए कुछ बोलते हैं, रहते हैं, व्यवहार करते हैं पर समर्पण तो उस चैतन्यस्वरूपको ही मन हो । जिनका संयोग हुआ है उनका वियोग अवश्य होगा । यह चंद दिनोंका समागम है । यह सदा न रहेगा, और जितने दिन रहेगा उतने दिन बेहोश बेवकूफ मोही पापमय बननेका तो कारण होगा, पर पार करनेका कारण न होगा । ज्ञानीपुरुष इस संतापपूर्ण जगतके अन्दर भी अपनी सावधानी बनाए रहते हैं ।

निरन्तर विशेष सावधानी— किसीके यहा मशीन या इञ्जीनियरिङ्ग का काम हो रहा हो, आप आटा पीसने वाली चक्कीके ही पास क्यो न हो ? कैसा सभलकर खड़े होते हैं । थोड़ा किसी ओर झुकाव न हो जाय अन्यथा पट्टेमें लिपटकर मृत्यु हो जायेगी । किसी बड़े कारखानेके बीच जहा पेच पुर्जे अधिक चल रहे हो, कैसी सावधानी आप वहा वर्तते हैं, कहीं खत्म न हो जाये । जगह-जगह लिखा है– खतरा । इस लौकिक खतरे से इतनी सावधानी होती है और यह इस प्रभुस्वरूपपर जो बड़ा खतरा हो रहा है, बाह्यपदार्थ रुच जाये, चिंता, विशाद, शल्य, आकांक्षा निदान घर कर जाय, इतना बडा जो उपसर्ग है जिससे दुर्गति होनी है, जन्ममरण की परम्परा बढती है, इस खतरेसे सावधानी न चाहिए क्या ? क्या ये ही बाह्य जड़ अथवा चेतन परिकर तुम्हारे लिए सब कुछ है ? हा ठीक है, यदि यह मदद कर सके तो ठीक है किन्तु ऐसा किसीके नहीं है ।

खाली हाथ—भैया ! बहुत अतीतकी बात नहीं है । जब सिकन्दर मरने लगा, इतिहासमें लिखा है, उसके देशमें बड़ा साम्राज्य था । इस परिचित दुनियामें इसका एकछत्र राज्य था । बहुत-बहुत सुखके साधन थे, पर मरने से बचने के लिए उसके पास कोई उपाय न था । उसके अन्तरमें यह एक हाय भी थी कि कितना श्रम करके इतना वैभव जोड़ा और आज एकदम छूटा जा रहा है, अब विवेक भी काम कर रहा है, कुछ चिंतन भी काम कर रहा है । उस समय वह लोगोंसे कहता है कि मेरे मरने के बाद अर्थी निकाली जाय तो मेरे हाथ पसार दिये जाये ताकि लोग देखें कि मरने के बाद यह खाली हाथ जा रहा है ।

सर्वदा शून्य— भैया ! मरने पर ही क्या ? जब यह जीवित है तब भी खाली हाथ है । लाखों और करोड़ोंकी सम्पत्तिके बीच भी हो और लोक व्यवस्थामें लाखों करोड़ों रुपये बैंकमें जमा हों, दरदस्तोंसे निकाले जायें लोकव्यवस्थामें बड़ा अधिकार भी हो तो भी वह पुरुष खाली हाथ है। केवल अपना स्वरूप लिए हुए है, जैसे कि अपने स्वरूपके भाव भी बनाये हों वैसे भावोंको लिए हुए हैं । भावोंके अतिरिक्त इसके पास और कुछ नहीं है । अपने आपकी चर्चा है यह । दूसरे पर कहीं दृष्टि नहीं देना है ।

गुप्तमें गुप्त गुप्तिका यत्न— बुद्धिमान पुरुष वह है जो चुपचाप अपने आपमें अपने आपकी ही बात सोचकर अपने हितके लिए अपना निर्णय बनाकर अपने आपके कल्याणका यत्न करते हैं । किसीको दिखानेसे क्या तत्त्व मिलेगा ? क्या दिखाना है, किन्हें दिखाना है ? तुम जिनको दिखाना चाहते हो, सम्भव है कि वे तुमसे भी अधिक मलिन हों । किसी को दिखाने से तुम्हें कोई सिद्धि होगी क्या ? किसके लिए क्या करना है, कोई यहां पूछने वाला नहीं है । सब जीव अपनी-अपनी धुनके है । स्वरूप ही ऐसा है । प्रत्येक जीव अपने स्वरूप चतुष्टयसे सम्पन्न है । दूसरेकी कोई दूसरा परवाह कर ही नहीं सकता । सब अपने-अपने स्वार्थ, सुख, दुःख, हर्ष, विशाद इनमें लग रहे हैं । किसी अन्यका कोई दूसरा कुछ करनेमें समर्थ नहीं हैं ।

प्रतिभाका एक उदाहरण— मध्य प्रान्तमें खुरईके एक बड़े श्रीमत सेठ थे । उनका मिजाज थोड़ा कड़ा भी था । उनकी एक स्त्री गुजर गई, दूसरी शादी हुई तो उस स्त्रीको समझा दिया दासियों ने कि देखो सेठ जी बड़े कड़े मिजाजके हैं, उनकी आज्ञाका उल्लंघन करोगी तो आफतमें पड़ोगी । स्त्री ने कहा कि अच्छी बात है देखूँगी । एक बार सेठ साहबके सिरमें बहुत दर्द हुआ । उन्होंने हुक्म दिया कि सेठानीसे कहो दवा लावे । खबर पहुची सेठानीको । अब वह सोचती है कि यह तो मंगलाचरण है अभी, यह तो पहिली बारकी बात है । इसमें यदि अपनी कला चला ली तो जीवन भर दुःखसे बची रहूगी । ऐसी बात सुननेके अनन्तर ही वह तो पलग पर पड़ गयी, कराहने लगी, मुझे बड़ी पीड़ा है, मेरे सिरमें दर्द हो गया और दिल धड़क रहा, है । यह खबर सेठ जीके पास पहुची कि सेठानी के सिरमें भी बड़ा दर्द है । सेठ जी झट सेठानीके पास दौड़कर गए, पूछा कहां दर्द है, कैसे क्या हुआ ? सो बहुत देरके बादमें कहा कि आपके सिर दर्दकी बात सुनकर मुझे बड़ा क्लेश हुवा, दिल धड़क गया । अब तो सेठजीमें होश ठिकाने आगया । कला खिल चुकी ।

खुदका खुदके प्रयोजनमें बन्धन— प्रयोजन यह है कि कोई सोचता हो कि किसी पर मेरा अधिकार है, कोई मेरे कहने से चलता है—ऐसा सोचना असत्य है। सब अपने-अपने परिणमनसे अपना कार्य करते हैं। कोई आपसे कितना ही वायदा करे कि हमारा तुम पर बड़ा अनुराग है, हम कभी भी तुमसे विलग नहीं हो सकते। यह उसके वर्तमान परिणामों की बौखलाहट है। ऐसा हो ही नहीं सकता कि कोई जीव किसी दूसरे जीवसे बेप्रयोजन ही बँध जाय। चाहे बड़ा हो, चाहे छोटा हो, चाहे घर का प्रमुख हो, चाहे देशका प्रमुख हो, प्रत्येक जीव अपने-अपने भावोंके अनुसार अपना परिणमन करते हैं। ऐसा यह जगत है। यहा अपने को बहुत सावधान रहना है।

बुद्धिदोषकी विपदा— भैया! सबसे बुरी विपदा है अपनेमें बुद्धि दोषका आ जाना। इससे बढकर और विपदा नहीं हैं। बुद्धिका दोष जिनके बढ़ जाता है उन्हें ही पागल कहते हैं ना, जो कभी सडक पर भी फिरते हो कोई बडे घरका आदमी, जो प्रतिष्ठित घरका हो, धनी हो और दिमाग खराब हो जाय तो लोग उसको कितनी दयनीय दशामें देखते हैं? अरे बेचारा बड़ा दुःखी है। सबसे अधिक दुःखी कौन? जिसकी बुद्धि-मलिन है। जिसकी बुद्धि पूर्ण स्वच्छ है, सावधान है, वह दरिद्र हो, चाहे इष्टोंका वियोग हो, चाहे कोई दूसरा सताता हो तब भी वह गरीब नहीं है क्योंकि बुद्धिवान है। विवेक धन उसके बराबर बना हुआ है। जिसकी बुद्धि बिगड़ जाती है, विवेक काम नहीं करता है वह चाहे कितने वैभवके बीच हो, वह गरीब ही है क्योंकि उसे वर्तमानमें शांति नहीं है और इतना ही नहीं वह भावी कालका भी अपना कुछ निर्धारण नहीं कर सकता।

उपदेशका ध्येय शिवमार्ग व शिवमार्गफल— जिनशासनमें इन दो बातोंका वर्णन है—मार्ग और मार्गफल। मार्ग तो मोक्षका उपाय है। किसे मोक्ष दिलाना है? अपने आत्माको। जिसे मोक्ष दिलाना है उसका स्वरूप तो जानो, उसकी श्रद्धा हो और जिसे छूटना है उस रूपमें इसका अंतरङ्ग में आचरण हो तो मोक्षका मार्ग बनता है और उसका फल है निर्वाणकी प्राप्ति। मोक्षकी तो लोग बडी प्रार्थना करते हैं। पूजामें, पाठमें, विनतीमें बोल जाते हैं कि हमें छुटकारा मिले। काहे से छुटकारा मिले? कर्मोंसे छुटकारा मिले, देहके बधनसे छुटकारा मिले। छुटकारेके लिए बडी प्रार्थना करते हैं। और क्यों जी यदि थोडे पैसोंसे छुटकारा हो जाय तो उसमें खेद क्यों मानते हो? विनतीमें तो कहते हो कि छुटकारा मिले, पर जरासा पैसोंसे छुटकारा हो जाय तो उसमें खेद काहेका मानते हो? मानते

हो ना, फिर तो यह सब ढोंग ढपारेकी बात रही। जब व्यवहारके कार्योंसे छुटकारा पानेमें धैर्य नहीं रख पाते हो तो इस बडे मोक्षकी बात तो एक स्वप्न देखनेकी जैसी बात है।

मुक्तिका आमूलचूल उपाय— इस ग्रन्थमें संकटोंसे छुटकारा पानेका उपाय कहा जाता है। नियमसार ग्रन्थ है यह। इसमें आगे जो वर्णन आयेगा वह बड़ा ही कलापूर्ण वर्णन है, जिसमें आत्माके भीतरकी बात बतायी जायेगी। तो उसे ग्रहण करके जो आनन्द प्राप्त होगा वह आनन्द असीम आनन्द होगा। जैसे मिठाई-मिठाई सब एक होती हैं पर रसगुल्ला, इमरती, जलेबी बरफी इन सबमें कुछ अन्तर है ना। इसी तरह ये चार ग्रन्थ—समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय एक ही तरहके आध्यात्मिक ग्रंथ हैं, फिर भी शैली और पद्धतिसे इनमें अतर है। जो नियमसारका वर्णन आगे आयेगा उससे सब बातें स्पष्ट होंगी। नियमसार शब्दका भाव है शुद्ध रत्नत्रयस्वरूप। नियम अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र और सार कहने से अर्थ निकला निश्चयस्वरूप विपरीततारहित। निश्चयसम्यग्दर्शन, निश्चयसम्यग्ज्ञान और निश्चय सम्यक् चारित्र, इसका और इससे सम्बन्धित समस्त अत क्रियावोंका इस ग्रन्थमें वर्णन होगा।

रागद्वेषके विजेताके नमस्करणीयता— ग्रन्थके आदिमें कुन्दकुन्ददेव ने अतिम तीर्थंकर श्री वीरनाथको नमस्कार किया है, जिसका तीर्थ आज चल रहा है वे वीर जिन हैं, जिनका अर्थ है कि अनेक जन्मोंरूपी अटवियों में बनियोंमें प्राप्त करानेका कारणभूत जो सर्व मोह रागद्वेषादिक हैं उन सबको जो जीतता है उसको जिन कहते हैं। जैसे यह कहना है कि श्री जिनवरको हमारा नमस्कार हो तो जिनवर कहनेसे अन्य लोग चौंक जायेंगे कि यह हमारे प्रभुको नहीं कह रहे हैं और इसही को इन शब्दोंमें कहा जाय कि मोह रागद्वेषको जीतने वाले को हमारा नमस्कार हो तो यह सुन कर अन्य लोग न चौंकेंगे। जिनको नमस्कार कहनेमें इस जैनका अभिप्राय यह है कि इसे किसीके शरीरसे, माता पितासे या कुल जातिसे या उनके जीवन चरित्रसे यहा जैनका हठ नही है किन्तु केवल यह ही आशय है कि जिसने मोह रागद्वेष शत्रुवोंको जीता है उनको नमस्कार हो। शब्द भी यही कहते हैं जिन भगवान् और आशय भी उनका ऐसा ही है।

व्यक्तिकी दृष्टिसे परे शुद्ध ज्ञानभावकी पूजा— भैया! जो त्रिशला के नन्दन हुए, सिद्धार्थके पुत्र हुए, कुण्डलपुरमें जन्म लिया ऐसे प्रभुको देखना हम आपकी मशा नहीं है, किन्तु अपने आपके शुद्ध आत्मस्वरूपका

परिचय करके जिसने विषय-कषाय को जीता, निर्मोह हुए, रागद्वेष रहित हुए और रागद्वेष रहित होनेके कारण सर्वज्ञ भी जिन्हे होना पड़ा ऐसे आत्माकी ओर दृष्टि है किन्तु त्रिशलानन्दन, सिद्धार्थसुत इक्ष्वाकुवंशमे जन्मे, इस बात पर दृष्टि नहीं है। जैन सिद्धान्तका लक्ष्य कितना पवित्र है ? केवल परमात्मतत्त्व इस दृष्टिमे लिया जा रहा है कि जो शुद्ध निर्दोष परिपूर्ण परमात्मत्व है उसकी ही मेरेमे भक्ति है।

कल्याणार्थीकी गुणदृष्टि— भैया ! ज्ञानीके रच हठ नहीं है किसी व्यक्तिका, किसी नामका, पर जिस शुद्ध तत्त्वको, निर्दोष परमात्मत्वको वे बताना चाहेंगे तो कोई शब्द ही तो कहेंगे। उन शब्दोका मतलब व्यक्तिसे नही लिया जायेगा, किन्तु जो निर्दोष और सर्वज्ञ हुए हैं उनका आशय लेना चाहिए। मुख्य मत्र णमोकार मत्र है। उसमे किसी व्यक्तिका नाम है ही नहीं, किन्तु गुणोका नाम है। अरहंत--जिसने स्वभावको घात करने वाले कषाय और कर्मोंको जीत लिया है उनको अरहत कहते है। अब कोई अरहत नामका भ्रम करके सोचे कि ये तो अरहंत राजाको मानते हैं और ऐसी कथाको गढ़ भी देते है। कोई अरहत राजा हुए थे, उनसे यह जिन धर्म चला था। तो किसी पदको बतानेके लिए जो शब्द कहे जायें उन शब्दोंके अक्षरोपर दृष्टि नहीं देना है, किन्तु जिस लक्ष्यके लिए शब्द कहा गया उस पर दृष्टि देना है। जो रागद्वेष मोहको जीत चुके हैं उनको नमस्कार हो, केवल यह ही अभिप्राय है अरहतके नमस्कारमें।

परमेष्ठित्वकी व्यक्ति-- अरहत पदके पश्चात् जब शुद्ध, बाह्य लेप रहित रहनेकी जो अवस्था होती है उसे सिद्ध कहते है। सिद्ध किसी व्यक्तिका नाम नहीं है किन्तु जो अपने विकासमे पूर्ण हो चुके हैं उन्हें सिद्ध कहते हैं। मंत्रमे आराधनीय दो हैं— (१) जो पूर्ण शुद्ध हो चुके हैं ये है अरहत और सिद्ध और (२) जो शुद्ध होने के प्रयत्नमे लगे हैं वे है आचार्य उपाध्याय और साधु। कोई भी गृहवासी ज्ञानसे जगकर, वैराग्यसे सम्पन्न होकर आरम्भ और परिग्रहको छोड़ देते हैं तो वे साधु होते हैं। जो भी साधु हुए हैं वे गृहवासी लोग ही हुए है। ऐसा भी कोई हुआ है कि जो घरमे न पैदा हुआ हो, घरमें न रहा हो, घरमे न पला हो और हो गया हो साधु। ऐसा कोई सुना हो तो बतलावो। चाहे कोई ८ वर्षकी उम्र वाला बालक ही साधु क्यो न हो जाय, पर रहा तो वह घरमें ही था।

अद्भुतपराक्रमी साधु— भैया ! एक आचार्य ऐसे भी हुए हैं कि उन्होंने पैदा होने के बाद कभी वस्त्र धारण नहीं किये और साधु हुए। पहिले बहुत बड़ी अवस्था तक बच्चे नग्न फिरा करते थे। बूढ़े आदमी

जानते होंगे इस बातको। आज तो ६ महीनेके बच्चेको भी अन्डरवीयर पहिना देते हैं और ऐसा पहिना देते हैं कि सारा दरवाजा नीचे से खुला रहे, नहीं तो कहा तक मूत धो-धोकर परेशान हो। तो पूर्व समयमे नग्न रहा करते थे बालक, सो नग्न रहा बहुत दिनों तक वह बालक और नग्न ही अवस्थामें मुनियोंके संघमें रहा। ज्ञान और वैराग्य जगा तो कहा कि महाराज अब दीक्षा दीजिए। दीक्षा ले ली सो पैदा होनेके बाद वस्त्र नहीं पहिना, और साधु हो गये। ऐसी नजीरें बहुत कम होती हैं। जैसे साधु होने के बाद महान् तपस्या करे और पानी आहार कुछ भी न खाये पिये और मोक्ष चला जाय, ऐसा भी नजीर है ना कोई? बाहुबलि स्वामीकी है ना और भी अनेक हैं।

साधुवोंकी वर्तमानता— तो ये आचार्य, उपाध्याय, साधु ये शुद्ध होने के प्रयत्नमें लग रहे आत्मा हैं। इन साधुवोंमे जो नायक होता है वह आचार्य कहलाता है। जो अन्य मुनियोंको दीक्षा दे, खुद आचरण पाले दूसरोंको पालन कराये वह आचार्य हैं, सो मुनि और आचार्य तो आजकल दर्शन करनेको मिल जाते हैं, परन्तु उपाध्याय नहीं मिल पाते हैं क्योंकि उपाध्यायके लिए ज्ञान चाहिए। सो ज्ञानयोग होना बड़ा कठिन है कि जो उपाध्याय पदके लायक कहलाये। लेकिन होते थे ऐसे पहिले। ये दोनों ही साधु शुद्ध आत्मा होनेके प्रयत्नमे लग रहे हैं।

भक्तों द्वारा शक्तिदेवताकी आराधना— इन ५ पदोंमे किसी व्यक्तिको नमस्कार नहीं किया गया है। जैनसिद्धान्त नमस्कार किए जाने वालोंमे व्यक्तित्व देखता ही नहीं है किन्तु गुण देखता है। गुणोंको नमस्कार है नामको नमस्कार नहीं है, और बात भी ऐसी ही है। कोई किसी त्यागीको नहीं पूछता, और कोई त्यागी यह सोचे कि हमसे तो बहुत लोग बड़ा स्नेह रखते हैं, मुझसे लोगोका बड़ा अनुराग है, तो उसका सोचना झूठ है। किसी नामधारी त्यागीको समाज नहीं पूजता है। वही त्यागी यदि पागल हो जाय, गड़बड़ हो जाय, भ्रष्ट हो जाय तो फिर क्यों नहीं पूजते? तो लोगोंकी दृष्टि गुणोंकी ओर होती है, नाम और व्यक्तिकी ओर नहीं होती।

नामकी पूज्यताकी अहेतुभूता— यहा २४वे तीर्थंकरको नमस्कार किया हैं, इसमे वीरत्वको और जिनत्वको नमस्कार है। सिद्धार्थनन्दनको नमस्कार नहीं है। यदि सिद्धार्थ कोई अपना नाम रखले और उसका लडका हो जाय तो वह भी तो सिद्धार्थनन्दन है। जैसे आजकल तीर्थंकरोंके नाम पर जो नाम चलते हैं उनकी क्या कमी है? बिहार प्रान्तमे सराक जाति

मे आदिनाथ नेमिनाथ ऐसे नाम होते हैं, और उनके कुलमें भी ऐसे ही नाम चलते हैं। तो नाम रख लेनेसे कहीं पूज्यता नहीं होती। ऐसे ही इन का नाम था सिद्धार्थनन्दन, त्रिशलानन्दन। इस नाते से वे पूज्य नहीं थे किन्तु उनमे जिनत्व था, जन्म-जन्मातर अनेक जन्मोंरूप जगलमे भ्रमणके कारणभूत जो रागद्वेषादिक भाव हैं उन पर उन्होंने विजय प्राप्त की। ऐसे जिन वीरको नमस्कार किया जा रहा है।

वीरका वाच्य— वीर शब्दके कहने से ७ हाथकी अवगाहना वाले कुण्डलपुरके जन्मे हुए थे। ऐसी दृष्टि नहीं लेना है, किन्तु जिनमें वीरत्व प्रकट हुआ है उन्हें दृष्टिमे लेना है। यद्यपि यह वर्द्धमान वीरप्रभु प्रभु हुए हैं, इसलिए पूर्ण नाम लेकर नमस्कार किया जाता है, पर लक्ष्यमें लेना है वीरत्व। वीरका अर्थ है जो विक्रान्त हो, विक्रम करे, कर्मशत्रुवोंको जीते, शूरता रखे उसे वीर कहते हैं। अब तो बहुतसे वीर है चन्दनपुरके वीर, कुण्डलपुरके वीर। और हाँ कोई आसपासके पुराने गावके जो उजाड़ हो गए हों, उस क्षेत्रमें कोई वीर नामका हो। तो ऐसे तो अनेक वीर हैं। अरे जहा पर्यायको भी दृष्टिमें न लेकर वीरत्व और जिनत्वको देखकर भक्ति की जा रही हो, उनके चदनपुर और कुण्डलपुरकी तो कहानी ही छोड़ो।

नाम व चरित्रकी पकड विडम्बनाकी जड़— वीरप्रभु जो कि चार नामोसे प्रसिद्ध हैं—वर्द्धमान, सन्मति, महावीर और अतिवीर। ये सब चारित्रोंसे सम्बन्धित हैं। पर बात यह बतायी जा रही है कि किसी जीवन चारित्रसे हम भक्ति नहीं करते है किन्तु गुणविकासके कारण भक्ति करते हैं। आज जो परमात्माके नाम पर ही इतने विवाद खडे हो गए देशमें उसका कारण है नाम और चारित्रकी पकड। जिसने ईसा प्रभुको माना है, बस उनका ख्याल है कि जो ईसा हुए हैं, जो यों जगलमें रहते थे, यों लोगोसे बोलते थे, अमुक जातिके थे, भेडे साथमें रखते थे, लोगोंके सकट दूर करते थे वे प्रभु हैं। चरित्रसे प्रभुता मान ली। इसी प्रकार जो जिन को देवता कहते हैं उनके जो चरित्र लगा है बस उस चरित्रके रूपके कारण ही भगवत्ता मानते हैं। तब इसमें विवाद हो गए, विसम्वाद हो गए।

जिनभावरूप दर्शनकी अभीष्टता— रागद्वेष मोह न होना और सारे विश्वका ज्ञाता बनना, यह बात तो सबको पूज्यताके लिए इष्ट होगी। चारित्र छोड़कर, जो मन, वचन, कायकी क्रिया हो, भली भी हुई हो तो भी उसे दृष्टिमे न लेकर केवल इस दृष्टिको भावसे लिया जाय कि जिसने रागद्वेष मोहको दूर किया है ऐसा शुद्ध ज्ञानपुञ्ज हमारा प्रभु है। तो सब एक छाया

में उपस्थित हो जायेंगे।

हितमार्गके अविरुद्ध चरित्रकी श्रोतव्यता— भैया ! प्रभुताके मर्मसे अविदित जैन नामधारी भी नाम, व्यक्ति और चरित्रकी ही हठ करके और उसमें ही परमात्मत्व देखकर, तत्त्वसे च्युत होकर विसम्वादमें पड़ जाते हैं। अब इस मूल बातको न भूले और फिर व्यक्ति और चारित्रकी ओर भी दृष्टि रखें तो वह व्यवहारभक्ति बन सकेगी। प्रभु वीरका वर्द्धमान तो पहिला नाम था और जब दो मुनिराज कुछ मनमें तत्त्वशंका रखते हुए जा रहे थे और यह बालक वर्द्धमान उन दोनों को दिख गया तो देखते ही उनकी शंका दूर हो गयी। ऐसे कथानकके आधारसे उनका नाम सन्मतिनाथ पड़ा और बचपनमें जब वे खेल रहे थे तो एक देव परीक्षा करने आया सापका रूप बनाकर, तो खेलने वाले सभी साथी खेल छोड़-छोड़कर भाग गए और वह साहसी बालक सर्पसे खेलने लगा। उसके फन पर ही पैर रखकर लीला करने लगा उस समयसे उनका नाम महावीर है। इस तरहकी घटनावोंके आधार पर चार नाम पडे है। इन नामों करके सहित परमेश्वर महादेवाधिदेव, अंतिम तीर्थंकर उनको प्रणाम करके इस नियमसारको कहेंगे।

महतोंकी महंतोंके प्रति महती कृतज्ञता— भैया ! जिससे उपकार हुआ उसको जो छिपाये उसके गुणोंके विकासमें बाधा रहती है। इस कारण कृतज्ञता प्रकट कर देना यह संतोंका स्वाभाविक गुण है। यदि वीर प्रभु की वाणी न होती तो आज पदार्थका स्वरूप हम कहांसे पाते और शांति कैसे मिलती ? शांति जो हम आपको जब कभी मिलती है वह भेदविज्ञान का प्रताप है। परकी ओर लगनेमें भिड़नेमें शांति कभी हो ही नहीं सकती जितना हम परसे हटते हैं, ज्ञानद्वारा हम अपने आपके अकेले स्वरूपमें विचरते हैं उतनी ही तो शांति है और बाकी शांतिकी आशा न रखिए। चाहे लखपति हो जावें, करोडपति हो जावे, कितना ही परिवार हो जावे पर शांति नहीं मिलती। बडे आदमियोंके ठाटबाट देख लो— उन्हें शांति उससे नहीं प्राप्त हो सकती। शांति ज्ञानपर ही निर्भर है।

महान् लाभके प्रोग्राममें तुच्छ हानिकी उपेक्षा— भैया ! चाहिए क्या ? सुख, शांति, आनन्द। उसका उपाय है—सम्यग्ज्ञान। तो वस्तु-स्वरूपका बोध करना कितना बड़ा काम है ? दुकानसे बडा है या नहीं ? दुकानसे तो बड़ा है और घरके लोगोंके स्नेहसे बड़ा है कि नहीं ? उससे भी बड़ा है। यह सबसे बडा काम है और जो बड़ा काम होता है उसको करते हुएमें अगर छोटी बातोंका नुक्सान भी हो जाय तो उसमें रंज न

होनी चाहिए। धनमे कुछ कमी हो जाय, परिवारमे कोई क्षति हो जाय तो उसके ज्ञाता द्रष्टा रहना चाहिए। यदि ऐसा न कर सके तो अशांति होगी। एक ही उपाय है शांतिका, सम्यग्ज्ञान होना। ये वीरदेव निर्मल ज्ञानदर्शनसे युक्त हैं। जो समस्त पदार्थोंके जाननेमें समर्थ हैं। तीन लोक तीन कालके चर और अचर द्रव्यगुण पर्याय सर्वको यथावत् एक साथ जाननेका जिनके जौहर प्रकट हुआ है, उस वीरजिनको नमस्कार करके इस नियमसारको कहेंगे, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य देव सकल्प कर रहे हैं।

वर्णनीय नियमसार— भैया! इस ग्रन्थमे किसको कहेंगे? नियमसार को। नियम अर्थात सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र उसका सार मायने शुद्ध निश्चयरूप परमार्थरूप रत्नत्रय। इसका निरूपण इस ग्रन्थमे किया जायेगा। ऐसा निरूपण अपनी बुद्धिसे ही नहीं प्रकट किया, किन्तु समस्त पदार्थोंको प्रत्यक्ष जानने वाले केवलियोंने बताया और समस्त द्रव्य श्रुतके जानने वाले श्रुतकेवलियोने बताया, वही तत्त्व जो अनन्त तीर्थकरो ने अपने-अपने समयमे बताया अथवा जो आत्मामें स्वरूप बसा हुआ है, सहजभाव है उसका निरूपण जो चला आ रहा है उस ही अनन्त सतोंके द्वारा निरूपित तत्त्वको यहा कुन्दकुन्दाचार्य कहेंगे। अपनी रुचिसे जो शास्त्र बनाया जाय उसमे प्रामाणिकता नही आती। रुचि भी काम देती है पर साथ ही उन अनन्त ज्ञानियोंके ज्ञानसे मेल खाता हो तब तो समझो कि वह समीचीन है, ऐसे प्रवाहरूपमे चले आए हुए इस नियमसार अर्थात् शुद्ध रत्नत्रय स्वरूपका इसमे वर्णन चलेगा।

महनीयके ही महनीयता— कुन्दकुन्दाचार्य देव यहा वीर जिनेन्द्रको नमस्कार कर रहे है। सो मानों ऐसी उत्सुकतासे नमस्कार कर रहे हैं कि हे वीर जिनेन्द्र! तुम्हारे जैसे वीतराग सर्वज्ञ प्रभुके रहते हुए मै किस अपने समान महा मुग्धचारित्र वाले अन्य देवताओंको नमस्कार कर सकता हू? कोई किसीका चारित्र यो बताए कि एक पुरुष है और वह जहां चाहे, जो चाहे चुरा लेता है और खा लेता है, हलवाईकी दुकानमे अब लेमे घुस जाय तो मिठाई खा लेता है, दूध वालेकी दुकानमें घुस जाय तो दूध दही खा लेता है और जहा जाता है वहा स्त्रियोंमे रम जाता है, तो इस चरित्रको सुनकर क्या आपमे भक्ति उमड़ेगी या जो गृहस्थकी भांति स्त्री रखे हो, पुत्र रखे हो, ऐसा कोई हो तो क्या उसके प्रति आपकी भक्ति जगेगी? ऐसे देव तो हमारी ही तरह मोहमुग्ध हैं। ससारकी ऐसी रीति है कि कोई विलक्षण बेढगा काम करने लगे तो उसमे प्रभुता मानने लगते हैं, किन्तु मेरी ही तरह मोह मुग्ध जो हैं उनको मैं कैसे पूजूँ?

धर्माश्रयका परमार्थ आश्रय-- हे प्रभु ! जो रागद्वेष कषायसे परे है, ज्ञानकी अत्यन्त स्वच्छ महिमा जिसके प्रकट हुई है ऐसा स्वरूप ही मेरा आराध्य है, मै कहा जाऊँ ? ये रागद्वेष शिष्यगण, परिवारजन, भक्तजन क्या मेरे कोई शरणभूत है ? सब मेरे उपयोगको यत्रतत्र भटकानेमे ये आश्रय बनते है। मैं किसकी शरण जाऊँ जो मेरे लिए एक मात्र हो। आप अभी देख लो--धर्मके नाम पर भगवान् जिनेन्द्र या प्रभुमूर्ति, मदिर इनके लिए सब लोग कितने न्योंछावर रहते है ? घरका काम बिगडे तो एकको ही चिंता है अन्यको, परवाह ही नहीं और मंदिरका या सस्थाका कोई काम आ जाय तो सबको चिंता और सबको परवाह है। कोई बात बिगडने लगे तो सबको चिता हो जाय। चाहे इन सबने इस धर्मका यथार्थस्वरूप न भी जाना हो, पर नाम तो है धर्मका। जिसके नाम पर इतना लट्टू होते हैं उसका यदि स्वरूप समझमे आ जाय तब तो फिर कहना ही क्या है ?

प्रभु वीरका उपकार-- हे प्रभु ! तेरा जैसा विजयी निर्दोष गुणकी खान आनन्दनिधान केवल ज्योतिपुञ्ज है, उसको छोड़कर मैं किस जगह अपना सिर झुकाऊँ ? मानो इस उत्सुकताके साथ सर्वप्रथम जिनेन्द्रदेवको नमस्कार किया गया है। दूसरी बात यह है कि लोग सिद्धकी अपेक्षा अरहतकी याद ज्यादा करते और अरहतोंकी अपेक्षा उन्हींमें तीर्थंकरकी याद ज्यादा करते और उनमें अतिम तीर्थंकरकी अधिक याद करते हैं तो ये प्रभु साक्षात् उपकारके जो कारण हुए हैं सो उनकी स्मृतिमें कृतज्ञता ही कारण है। यह तो देवका प्रकरण है ना। कदाचित् कोई गुरुको भी पहिले नमस्कार और भगवानको पीछे नमस्कार करे, किसी की ऐसी कृतज्ञता बन जाय तो किसी की बन भी जाती है।

गुरुका गौरव-- भैया ! एक कथानकमे सुना होगा कि एक सेठ ने किसी पशुको मरण समय णमोकार मत्र दिया। सो वह पशु मरकर देव बन गया। जब अवधिज्ञान से उसने जाना कि अमुक श्रावकने मेरी गति सुधारी तो मध्यलोकमे आया। एक जगह मुनिराज भी बैठे थे और वह सेठ भी बैठा था तो उसने पहिले सेठको नमस्कार किया, पश्चात् मुनिको नमस्कार किया। तो कृतज्ञताकी लहर जिसमे जैसी दौड़ जाय उस तरहसे प्रवृत्ति होती है। आप कहें कि यह तो ठीक नहीं, हा मुनिकी भक्ति रखने वाला हो सेठ और सेठको अगर पहिले ही नमस्कार करले तो वह मुनिको ही तो नमस्कार हुआ। जैसे मानो कोई जिनभक्त ब्रह्मचारी क्षुल्लक या मुनि इनका आप यथायोग्य विनय करते हैं तो किस नातेसे करते हैं ? मंदिरमे भी बैठे हों क्षुल्लक या मुनि तो आप वहा पर भी पहिले उनको

नमस्कार कर डालते हैं ना, तो चूँकि ये जिनेन्द्रके भक्त हैं सो भक्तके नाते से ही विनय किया गया है ना। तो यह जिनेन्द्रका विनय समझिए। न जिनेन्द्रके भक्त हों तो कोई पूछले तो जानें।

वीरभक्ति, वीरभक्त व वीरशक्तिकी विशेषता— गुरुके नमस्कार में भी प्रभुभक्ति ही तो अन्तरमें बसी है ना, यह कृतज्ञताकी कुछ पद्धति होती है पर आशय विपरीत हो जाय तो उसमें दोष आता है। चूँकि यह आप्तका प्रकरण है इसलिए वीर जिनेन्द्रको नमस्कार किया है और साथ ही यह भी ध्वनित है कि वीरको ही क्यों नमस्कार किया तो उनकी वाणी दिव्यध्वनिकी परम्परासे आज तीर्थ चल रहा है। जिस परम्परासे आए हुए तत्त्वको हम शब्दोंमें बाच रहे हैं यह भी साथ ध्वनित है। जिस प्रकार स्वच्छ वीर जिनेन्द्र हुए उस ही प्रकारका स्वच्छ हमें भी होना है। उस मार्गरहित मोक्षकी प्राप्तिके लिए हम यह उद्यम कर रहे हैं। यह तो शुद्ध लक्ष्य हो जानेकी विशेषता है।

शास्त्ररचनाका प्रयोजन निज परम विशुद्धि— आचार्य देव कुछ नहीं चाहते हैं, न यश, न नाम न अन्य कुछ, किन्तु मेरा उपयोग रागद्वेषकी वृत्तिसे दूर रहे इसके लिए यह उपक्रम है शास्त्र रचना और फिर इसको पढ़कर अन्य लोगोंका उपयोग भला होना, यह तो दूसरा भी तरह एक गौण प्रयोजन और फल है। हम लोग उनके मुख्य प्रयोजनको चाहे न आंक सकें और उपकार हम लोगोंका होता है अधिक, इसलिए यहीं गुण गावे कि कुन्दकुन्दाचार्य प्रभुने हम जैसे पामरोंके उपकारके लिए अध्यात्मग्रन्थों की रचना की है। हम यह बोलते हैं पर कुन्दकुन्दाचार्य प्रभु ने हम लोगों का ख्याल रखकर कि भिन्डके फलाने-फलाने लोग होंगे या इटावामें कोई नियमसार पढ़ेंगे, उनका उपकार होगा इसलिए बनाया या अन्य किसीके ख्यालसे शास्त्ररचना की ऐसा नहीं है, किन्तु अपने उपयोगको शुद्ध रखने के लिए और मोक्षमार्गसे उपकार होता है। सो उस मोक्षमार्गकी मूर्ति सांची है।

भक्तिपद्धति— भैया! जो जिस पर लट्टू हो जाता है उसके मनमें वही समाया रहता है। सबको भूलकर उसकी शकल बनाए, उसके गीत गाए, उसके भजन बनाए, गद्‌गद स्वरोंमें एकांतमें विनती करे—ये सब बातें होने लगती हैं। किसीको दिखानेका प्रयोजन नहीं है। यहां जिनकी पूजा कर रहे हैं, जल्दी जाना है अथवा नहीं जाना है, आदत है, जल्दी जल्दी बांच रहे हैं और कोई चार आदमी बड़े दर्शन करने आ जायें तो उनको देख करके फिर रागसे गायेंगे। क्योंकि उद्देश्य ही पुष्ट नहीं है कि

इतने समय सबको भूलकर मैं क्या हूं, किस परिवारका हू, मेरेमे कोई भार है क्या, सर्व बातोको भूलकर अपने को निर्भार अनुभवकर चिदानन्द स्वरूपको निरखकर उस ही ज्ञानपुञ्जकी ओर हमे मुडना चाहिए था, यह उद्देश्य तो न रहा, इसलिए मन यत्र तत्र भटकता है। बडी बाते करते हैं और करते कुछ नहीं है।

परमपूजाके लिये कमर कस कर भक्तकी तैयारी— पूजाकी प्रस्तावनामे पढते हैं ना —अर्हन् पुराणपुरुषोत्तमपावनानि वस्तून्न नूनमखिलान्ययमेक एव। अस्मिन् ज्वलद्विमलकेवलबोधवह्नौ पुण्य समग्रमहमेकमना जुहोमि। बडी लयसे आप पढते हैं ना, भगवानको रिझानेके लिए कि हे अरहंत! हे पुराण! हे पुरुषोत्तम ये जो नाना पवित्र चीजे रखी हैं ना, जल चदन, अक्षत आदि द्रव्य और इतन बडे हम और धोती दुपट्टा और यह वेदी और यह विराजे भगवान कितनी चीजें है वहा उस जगह? कहते हैं कि नाथ मुझे अन्य कुछ दिखता ही नहीं है। हमे ये अक्षत, पुष्प कुछ नहीं दिखते। हमें तो केवल एक ही चीज दिख रही है, अय एक एव। यह जाज्वल्यमान् तेजस्वी ज्ञानस्वरूपी ही हमे दिख रहा है, सो इस जाज्वल्यमान् निर्मल केवल ज्ञानरूपी अग्निमे समस्त पुण्यको एक मन होकर मैं स्वाहा करता हू। जो आप रोज-रोज पूजनमे कहते हो, उसका ही यह अर्थ किया जा रहा है। चाहे करते कुछ हो हमे पता नहीं हैं।

पूजासे प्रथम महान् संकल्प— आप रोज पूजा करने से पहिले यह कहते हो कि इस जाज्वल्यमान् ज्ञानाग्निमे सारे पुण्यको मैं स्वाहा करता हू। कितना निर्मल चित्त होकर यह भक्त पेश होता है प्रभुके दरबार में। केवल ज्ञानपुञ्ज ही उसे दिख रहा है और जो चार पांच लडके हैं उनकी रच खबर नहीं है क्योकि सर्वत्र सब द्रव्योंको जानता है, उनका भार उन पर है, मेरेसे कुछ उनका बनता ही नही है। यहा तो केवल आत्मस्वरूपके दर्शन को वह आया है। इस जाज्वल्यमान् ज्ञानमे सारी पुण्य चीजोको मै जलाता हू।

पुण्य वैभवका स्वाहा— कितनी पुण्य चीजे हैं अभी उसके पास? ६। आनेका कुछ द्रव्य है। पतली चिटक धर लिया, बादाम न मिलता हो तो कमलगट्टा हो गए, चिरमटी भी आ गयी हैं। सारी चीजे मिलकर सवा नौ आनेकी चीजें धरी हैं और कहते हैं सारा पुण्य स्वाहा कर रहा हूं. यह उसपर नखरे बगरा रहे हैं। प्रभुकी ओरसे पूछ दें, कोई ऐसा तो भक्त कहता है कि नहीं महाराज मैं इतने ही द्रव्यको स्वाहा नहीं करता हू, किन्तु इसके अतिरिक्त जितना भी वैभव है लाखोका, हजारोका, करोड़ोका उस सारे

वैभवको मैं न्यौछावर करता हूं। हेय चीजे हैं ये सब। उनको मैं क्या दिल मे रखूँ ? उन सबको मै स्वाहा करता हू।

द्रव्यपुण्यका स्वाहा— तब फिर मानो भगवान् बोले कि ऐ भक्त तुम चतुराई पर चतुराई बगरा रहे हो, तुम जानते हो कि धन वैभव तो मेरा है नही, सो जरा कहकर तो मियामिट्ठू बनले, भगवानके प्यारे बनले, मै सर्ववैभवको त्यागता हू, क्योंकि यह सब तो मरने पर भी न जायेगा, ये सारी चीजे मेरेसे भिन्न हैं तो इन चीजो को स्वाहा कहकर भगवान्के मियामिट्ठू बन ले, क्या यह बात है भक्त !

भावपुण्यका स्वाहा-- भक्त कहता है कि नही महाराज इतनी ही बात नहीं है। जिस पुण्यकर्मके उदयसे यह वैभव मिला हो उस पुण्यकर्म को भी मै स्वाहा करता हू, मुझे कुछ न चाहिए, ये सब हेय है। प्रभुका वाककील बोला--अच्छा, जानते हो कि ये भी पौद्गलिक है, मेरे आत्मा से अत्यन्त भिन्न है, सो कह लो प्रभुसे। भक्त कहता है कि महाराज यह बात नही हैं। वे द्रव्य पुण्यकर्म जिसके परिणामके कारण बद्ध हुए ऐसे शुभोपयोगरूप भावोको भी मै स्वाहा करता हू। मायने क्या करता हूं कि आपकी जो वर्तमानमे भक्ति कर रहा हू इस परिणामको भी मैं स्वाहा कर रहा हू। अब क्या रह गया ? जिस ज्ञानपुञ्जकी पूजा कर रहे हैं वह ज्ञानपुञ्ज ही मेरे ध्यानमे रह गया, ऐसी तैयारीके साथ बड़ी भक्तिसे आप भगवान्से रोज कह जाते है। तो अब सोचना चाहिए कि भगवान्के आगे हम सरासर झूठ तो न बोलें। न इतना न कर सके तो लक्ष्य तो रहे कि हमने ऐसा कहा है और हमारे करने को इतना काम पड़ा है।

महान् कार्यके लिये महान् यत्न-- यहां कुन्दकुन्दाचार्य देव एक बहुत बड़ा काम करने जा रहे हैं ना, तो उसके लिए पहिले अपने मनको बहुत निर्मल स्वच्छ दृढ बना लें। कौनसा काम करने जा रहे है ? जो बड़े-बड़े गणधर देवोंने जिस मर्मको शब्दोसे रचा है, उन गणधरोंकी साक्षात् वचनावली भी जिस प्रभुताकी बतानेमे समर्थ न हो सका तो हम लोग फिर क्या रहे ? भैया ! यद्यपि सम्भव है कि इसमे प्रवचनसार, समयसार नियमसार इनमे कोई कोई दोहा कोई-कोई गाथा शायद वह ही हो जो गणधरदेव अपने मुखसे बोल गए हों। हो सकता हैं मगर पूरी उनकी वचनावली परम्परामें आज नहीं रही। उस मर्मको व्यक्त करते हैं। तो जिस मर्मको बडे-बडे गणधर देव भी अपनी वाणीसे पूरा-पूरा व्यक्त न कर सके हों, जिससे सर्वजन समझ सके तो हम मदपुरुष उनके समक्ष क्या हैं ? इतने बडे कामको करनेकी तैयारीमे कुन्दकुन्दाचार्य देव

पहिले प्रभुस्मरण करके अपने मनको गम्भीर बना रहे हैं।

पुन पुनः वीरस्मृति— यह नियमसार ग्रन्थ है जिसे प्रत्यक्ष ज्ञान धारियो ने बनाया है, श्रुत केवलियोंने विरूपा है। समस्त भव्य जीवोंके हितके करने वाले ऐसे नियमसार नामक परमागमको कहूंगा। इस प्रकार कुन्दकुन्दाचार्यदेव एक विशिष्ट देवताको नमस्कार करनेके बाद अब इस ग्रन्थको कहेंगे। अभी ग्रन्थ बनानेके प्रारम्भिक प्रक्रममे फिर भी प्रभुकी याद बारबार आती ही है। ये प्रभुबाल ब्रह्मचारी थे। भजनोमे लोग गाया करते हैं, 'छोड़ दिया सकल परिवार चला वीरा, माता समझावति है।' अरे मेरे वीर क्यो जाते हो, माता रुदन मचाती है, पिता भी एक कोनेमे बैठा शोक कर रहा है। वह मानता ही नहीं है। बाल्यकालमे ही ब्रह्मचर्य जैसा दुर्धरव्रत धारण करके निष्परिग्रह रहकर यह प्रभु मौन रहे, जब तक केवलज्ञान नही हुआ। बडे आदमी या तो सच बोलेंगे नही तो मौन रहेंगे। मुनि अवस्थासे ये प्रभु मौन रहे हैं।

वीर प्रभुकी त्रिलोक पूज्यता— वीर प्रभुको केवलज्ञान हुआ, तीनो लोकके जीवोने उन्हे पूजा, मनुष्योने भी, देवोने भी, अधोलोकके जीवोने भी। तीन लोकके सारे जीव उनके चरणोंमे आए। सब तो नही आ सकते पर ऊर्ध्वलोकके इन्द्र, मध्यलोकके इन्द्र और अधोलोकके इन्द्र आ गये तो समझो सभी आ गए। मेरूकी जडसे नीचे अधोलोक माना जाता है। भवनवासी और व्यतरके आवास मेरुसे नीचे जाकर है। उनमे रहने वाले वे अधोवासी कहलाते हैं। तो जब सभी लोकोके इन्द्र उनके चरणोमे आ गए तो सभी आ गए समझिए। यह तो बात आजकल काश्मीरके विषय मे है कि काश्मीरको चुनने वाली उनकी जो समिति है उसने एक मतसे भारतमे मिलना स्वीकार कर लिया। तो इसका अर्थ है कि समस्त काश्मीर ने स्वीकार कर लिया। जब ऊर्ध्वलोकके इन्द्र चरणोमे आए तो सबही ने नमस्कार किया समझिये। सारे कहा आ सकते हैं? किसी-किसीके तो भाव ही नही आता होगा। मगर जब इन्द्र आ गए तो सबका आना समझ लीजिए।

वीतरागताका प्रताप— इस तरह तीन लोकके सकल जीवोंके द्वारा यह प्रभु पूज्य हैं। इनका एकछत्र तीन लोकमे राज्य फैला है। क्या फैला है, ज्ञानसाम्राज्य। वे राज्यको ठुकरा कर आये थे। अब तीन लोकका राज्य मिला है। अब इस ससारमे नहीं भटकते हैं, अब जन्म नहीं लेते हैं, अनन्त कालके लिए निर्दोष जन्ममरणरहित अनन्त आनन्दमय हो गए। वे वीर नाथ जिसकी भी दृष्टिमे आते हैं तो इसी प्रकार आया करते हैं कि समव-

शरण है, उस समवशरणके बीचमें गंधकुटी है, वहा जिनका निवास है। चारों ओरसे देवी देवता देवांगनाएं गायन करते हुए, बडे-बडे बाजा बजाते हुए जहा नाच कर रहे हों और तीन लोकके समस्त जीव जिनके चरणोंमे झुक रहे हों, यह सब किसका प्रताप है? एक वीतरागताका प्रताप है। वीतरागताके कारण यह सारा सकल समाज नृत्य, गान करते हुए उनके चरणोंमे पहुच रहा है। ऐसे शरीरसे तो वे समवशरणमे विराजमान हैं और अन्तरसे वे केवलज्ञान लक्ष्मी सहित विराजमान है। ऐसे वीरदेवको प्रणाम करके अब कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वितीया गाथाका अवतरण करते हैं।

मग्गं मग्गफलं ति य दुविहं जिणसासणे समक्खदं।
मग्ग मोक्ख उवायो तस्स फलं होइ णिव्वाणं ॥२॥

जिनशासनके दो उपदेश— मार्ग और मार्गफल, मोक्षका मार्ग और मोक्षके मार्गका फल, छुटकारेका उपाय और छुटकारेके उपायका फल, संकटोंसे दूर होनेका उपाय और संकटोंके दूर दूर होनेके उपायका फल, शांति पानेका उपाय और शाति पाने के उपायका फल। जिन शासनके उपदेशमे दो बातो पर विशेष जोर दिया गया है, ऐसा इस ग्रन्थमे जो कुछ वर्णन होगा, जिस किसी भी पद्धतिसे वर्णन होगा, मार्ग-मार्गफलका वर्णन चलेगा।

मार्ग और मार्गफल— इस गाथामे मोक्षमार्ग और मोक्षमार्गके फलका स्वरूप वर्णित किया गया है। मोक्षमार्ग क्या है? सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र। तीनोंका एक स्वरूप होना, सो मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शनसे प्रारम्भ होता है यह भी कह सकते हैं और सम्यक्चारित्रसे प्रारम्भ होता है यह भी कह सकते हैं। जहां परद्रव्योसे भिन्न आत्मतत्त्वका अवलोकन हुआ, कर्मोसे छूटनेका उपाय मिला वहा मोक्षमार्गका प्रारम्भ सम्यग्दर्शनसे हुआ समझिये और एक दृष्टिसे सम्यग्दर्शन ने वस्तुस्वरूप दिखाया और यह मार्ग है शातिका यह दिखाया, पर उस पर चलें तो मार्गका चलना कहलाता है। सो सम्यकचारित्रसे मोक्षमार्ग चला। जैसे सूर्यका काम है मार्ग दिखा देना। व्यवहार भाषामे कह रहे है—उजेला हो गया, मार्ग दिख गया, पर चलाना काम सूर्यका नहीं है। इस प्रकार सम्यग्दर्शनने मोक्षमार्ग दिखाया पर मोक्षमार्ग पर चलना सम्यक्चारित्रसे हुआ।

त्रिरत्नोंका प्रादुर्भाव— यह सम्यक्चारित्र शुरू हो जाता है सम्यग्दर्शनके होते ही, पर उसकी विशेषतासे बढ-बढ़कर सम्यक्चारित्र बढ़ता रहता है। सम्यग्दर्शनके साथ स्वरूपाचरण चारित्र होता है। स्वरूपाचरण

ही परमार्थ चारित्र है और आगे भी ऊँचेके गुणस्थानोंमें स्वरूपाचरणकी वृद्धिकी ही महिमामें स्वरूपाचरण की कितनी वृद्धि हुई, उसकी माप है अणुव्रत महाव्रत आदि। तो सम्यग्दर्शनके होते ही सम्यक्ज्ञान हो जाता है और सम्यक्चारित्र हो जाता है। परन्तु जैसे ज्ञानकी पूर्णता बादमें हुई है इसी प्रकार सम्यक्चारित्रकी परिपूर्णता बादमें हुई है, पर किसी न किसी रूपमें सम्यग्दर्शनके होते ही सम्यक्चारित्र हो जाता है और साक्षात् मोक्षमार्ग जिसके बाद मोक्षकी प्राप्ति होती है। वह है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका एक अभेदरूप हो जाना। इस गाथामें मार्ग और मार्गफल बताया जा रहा है। मार्ग तो है शुद्धरत्नत्रय, निश्चय रत्नत्रय, आत्मतत्त्वका श्रद्धान ज्ञान और आचरणरूप निश्चयरत्नत्रय और मार्गका फल है मोक्षकी प्राप्ति, अपुनर्भव अर्थात् फिरसे संसार न होना।

प्रमादकी अकर्तव्यता— भैया! निर्वाण हुआ तो निर्वाण ही है, फिर संसार नहीं होता। जब तक निर्वाणकी प्राप्ति नहीं होती अर्थात् क्षपक श्रेणी पर चढना नहीं होता तब तक शंका ही शंका है। जब तक क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता तब तक सम्यक्त्वकी भी शंका है। हो गया और फिर मिट जाय ऐसी स्थिति हो जाती है और जो कुछ थोड़ा बहुत ऊँचा भव पा लिया, ऊँचा कुल आदि प्राप्त कर लिया, इसका तो कुछ भरोसा भी नहीं है। आज उच्च कुल पाया कलके दिन क्या पायें?

कृतघ्नताका एक दृष्टान्त और कुफल— एक साधु महाराज बैठे थे तो उनके सामने एक चूहा निकला। वह चूहा साधु महाराजके निकटमें ही रहता था। सो चूहेके आने पर एक बिलाव भी आ गया। बिलावको देख कर चूहा डर गया, सो साधु महाराजने दयाभाव करके चूहे को आशीर्वाद दिया कि बिडालो भव, तू बिलाव हो जा। वह बिलाव हो गया। अब बिलावसे बिलाव क्या डरे? अब आया कुत्ता सो उस बिलावको आशीर्वाद दिया कि श्वानभव। तू कुत्ता हो जा। सो वह कुत्ता हो गया। फिर निकला व्याघ्र, सो साधु ने उस कुत्तेको आशीर्वाद दिया कि व्याघ्रो भव। व्याघ्र हो गया, तेंदुवा हो गया। उस पर झपटा सिंह तो आशीर्वाद दिया कि सिंहो भव। अब सिंह सिंहसे क्यों डरे? उसे लगी भूख। सो सोचा कि अब क्या खायें, यही महाराज तो अच्छे पवित्र बैठे हैं, इनसे बढकर अच्छा मांस और कहां मिलेगा? सो सिंहके मनमें आया कि इन साधु महाराजको खा जाऊँ। ज्यों ही झपटा झट साधु ने कहा कि पुन मूषको भव, तू फिर चूहा बन जा। वह फिर चूहा बन गया।

आत्मदेवकी अकृतज्ञताका फल— इसी तरह यह जीव कुछ आत्मदेव

के प्रसादको पाकर निगोदसे निकला, विकलत्रय हुआ, पचइन्द्रिय हुआ, मनुष्य हुआ, पुण्यवान् हुआ, समर्थ हुआ। अब इतना समर्थ होकर यह मनुष्य इस ही आत्मदेव पर हमला कर रहा है। खोटा परिणाम किया, विषय-कषाय किया, कुबुद्धि जगी, रागद्वेष मोह किया, किसी को अपना माना, किसीको पराया मान लिया, यह सब इस आत्मदेव पर हमला किया जा रहा है। सो आत्मदेवको जरा ही तो आशीर्वाद देना है कि पुनर्निगोदो भव। फिर निगोद हो जावो। इतने ऊँचे उठकर फिर निगोदमे चला गया, तो अब क्या हाल होगा? किसी चीजका भरोसा नही है। पूरा भरोसा तो अपने आत्मदेवकी एक बार झलक हो जाय उसका भी नहीं है। बार-बार उसकी भावना हो, उसके ही भीतर रुचि हो, उसका ही पुरुषार्थ हो, तब जाकर सिद्धि होती है।

मार्गफल निर्वाण— मार्गका फल है अपुनर्भव। फिरसे भव न मिलना, इसका नाम है अपुनर्भव। इस अपुनर्भवका ही नाम निर्वाण है, अर्थात् वह सब ऊधम शात हो जाना जो ससारमे तरग उठाकर हो जाया करते थे। इसीका नाम अपुनर्भव है। धर्म, अर्थ, काम ये तीन वर्ग जहां अपगत हो जाते हैं, दूर हो जाते हैं उसका नाम है अपवर्ग। इस ही मार्ग फलका नाम है मुक्ति, छूट जाना। संसारके संकट और सकट नामकरण मे जो द्रव्यकर्म और भावकर्म हैं उनका छूट जाना, इसका नाम है मुक्ति अथवा मोक्ष। तो यह है मार्गका फल। ये दो प्रकारके मार्ग और मार्गफल हैं। ये परमवीतराग सर्वज्ञदेवके शासनमे चार ज्ञानोके ध्यानी आचार्योंने गणधरोसे बताया है।

मार्गका अर्थ— मार्ग किसे कहते है? जो खोजा जाय वह मार्ग है या जिस पर गमन करके इष्ट स्थान पर पहुचा जाय उसे मार्ग कहते हैं। इस मार्गका नाम आजकल क्या रखा? सड़क। शब्द अशुद्ध है। सड़क नही बल्कि सरक। अब देखो कि सरकता तो आदमी है और उस रास्तेका नाम सरक रखा। जहा आदमी सरकते हो उसका नाम सरक है। तो जिस के आधारसे पथिक सरकते हैं उसका नाम है सरक। जिसके आधारसे यह संसारी जीव इस बनसे सरककर ऊपर पहुचे उसका नाम है सरक। तो यह है मार्ग, पथ अपने आपके विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वरूपी आत्मतत्त्वका यथार्थ श्रद्धान् होना और ऐसा ही उपयोग बनाए रहना, उसमे ही रत रहना यही अभेदरत्नत्रय है। मार्ग और इसका फल है मोक्ष। एक शब्दमे मोक्षका उपाय कहे तो कह लीजिए परम निरपेक्ष होकर एक निज सहज स्वभावका उपयोगमें तन्मय होना यही है मोक्षमार्ग।

शान्तिका ज्ञानसे मेल— निजपरमात्मतत्त्वका सम्यक् श्रद्धान्, परिज्ञान और उसका ही अनुष्ठान होना ही निश्चय रत्नत्रयरूप मोक्षका उपाय और उस शुद्ध रत्नत्रयका फल स्वात्माकी प्राप्ति होना है। बात बड़ी सीधी है, मगर लग रही है बड़ी कठिन। इतना सीधा काम कुटुम्बका पालन नहीं है। आप दूकानको चलाते नहीं हैं, वहा अपना अधिकार ही कुछ नहीं है। कोई आए या न आए। परिवारके लोग आज्ञा माने, न माने, फिर ये समग्र परवस्तु हैं। उन परवस्तुओका कुछ भी परिणमन हो कदाचित् तुम्हारे मनके द्वारा भी परिणमन हो तो भी शान्ति तो मिल ही नहीं सकती, क्योंकि शांतिका मेल परपदार्थकी दृष्टिके साथ नहीं है, किन्तु इस ज्ञान तो ज्ञानस्वरूप ही बसे तो उस ज्ञानवृत्तिके साथ ही शांतिका मेल हो सकता है।

विशुद्ध ज्ञानार्जनका पुरुषार्थ— भया! अब क्या काम करना है? ऐसा काम करो कि जिस पर सारी दुनिया पागल कहेगी। लोगोंकी समझ मे चाहे आए नहीं। लो घर छोड़ दिया, चल दिया, इतना कमाया, मकान बनवाया, दूकान बनवाई और अब आरामके दिन थे, सो कैसी कुबुद्धि हुई कि सब कुछ त्याग दिया। अब आए थे आरामके दिन और आरामके दिनोंमें लात मारकर घर छोड़कर चल दिया—ऐसी भावनाए मोही पुरुषोंकी हैं, पर इस एक ज्ञानीको तो सारा जगत् पागल दिख रहा है और सारे जगत्को यह ज्ञानी पागल दिख रहा है। अब निर्णय यह हुआ कि जिसमे अपना उपयोग शांतिमे फिट बैठे वही अपना काम करना है और उसका उपाय है ज्ञानार्जन। स्वाध्याय करके, विद्याध्ययन करके तत्त्वचर्चा करके, ध्यान करके एक इस ज्ञानका अर्जन करना, शुद्धज्ञानवृत्ति को जगाना ये एक काम है, इसे करते जाइए।

पुरुषार्थका आवश्यक कर्तव्य— भैया! ऐसा लगेगा बहुत दिन तक कि सफलता नहीं मिली, पर सफलता मिलनेका बुद्धिपूर्वक उपाय तो यही है। अब और क्या करें, यह बतलाओ? यहा कुछ ऐसा नहीं है कि इस रोजगारमे फायदा नहीं दिखता है तो दूसरा रोजगार करो। अब सर्राफा में दम नहीं रहा तो बजाजा करे। अब बजाजामें दम नहीं रहा तो आढ़त का काम करें। सो अदल बदलकर रोजगार करें। जिस आत्मामे मोक्षमार्गका काम नहीं है कि अरे ज्ञानार्जनसे कुछ लाभ नहीं होता है, अब मनभर लड़कोंसे मिल ले, अब खूब धन सम्पत्तिके ही बीचमें बैठ लें। उसका तो एक ही फैसला है, उसको तो दूसरा कोई रोजगार है ही नहीं। चाहे सफलता मिलती हो अथवा न मिलती हो, कार्य करते जावो, यह

फिट बैठेगा।

उद्यम— एक बाबू साहबने एक कुम्हारको पायजामा दिया, किन्तु पहिना हुआ होने पर भी नयासा था। कुम्हार उस पायजामेको पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। सो कुम्हार उस पायजामेका उपयोग करने लगा तो सिर पर बाधे तो फिट न बैठे, क्योंकि उसकी सियन ही ऐसी थी। कोई सीधासा कपड़ा हो तो सिरमें बाधने पर बंध जाए। सिरमें न फिट बैठा तो कमर में बांधे, वहा भी फिट न बैठे, क्योंकि ऊपरका जो पोर्सन था वह ढीला-ढाला रहता है। वहा ठीक न बैठा तो हाथोंमे डाले, जब हाथमे भी फिट न बैठा तो उसने एक पायचेमें एक पैर डाल दिया और दूसरे पायचेमे दूसरा पैर डाल दिया तो फिट बैठ गया। अब वह कहता है कि ओह, अब फिट हो गया। यह पायजामा यहीं पहिननेकी चीज है। जानते हो पायजामा किसे कहते हैं ? जिसमें पाव जम जाए, वह पायजामा है। जिसमे पांव लात जम जाएं, उसका नाम है पायजामा। सो इसी तरहसे ज्ञानार्जन के काममे बैठे रहें। अगर आज फिट न होंगे तो कभी तो फिट हो ही जायेंगे।

प्रतिभाशून्यतामें विडम्बना— अपने आपमें फिट न होनेका कोई दूसरा उपाय नहीं है, इसके लिये बड़े मित्रकी आवश्यकता है। भाई कुछ भी चीज नहीं है, पर जो धर्ममे लगाये, वह मित्र सब कुछ है। मित्र योग्य हो तो ठीक है। ऐसी दशा न हो जाये कि एक गुरु महाराज थे। उन्होने एक शिष्यको पढ़ाया। शिष्य पढ़नेमे चतुर था, मगर प्रतिभा कुछ न थी, विद्या रटंत थी। शिष्य पर गुरुजी प्रसन्न हो गये तो उसी शिष्यको अपनी ही लड़की ब्याह दी। अब वह शिष्य दामाद बन गया। वह लडकी बहुत ही रूपवती थी, सो शिष्य एक दिन सोचता है कि "भार्या रूपवती शत्रुः।" स्त्री रूपवान् हो तो वह शत्रु होती है। सो उसने दोष मिटानेके लिए चक्कू से उसकी नाक काट डाली। अब शत्रु न रहेगी, मित्र बन जायेगी। उसकी बेवकूफी पर गुरुजीको नाराजगी हो गयी और दामादको घरसे निकाल दिया।

यह शिष्य जब घरसे चला तो साथमें कलेवा ले लिया। कलेवा जानते हो किसे कहते हैं ? क मायने शरीर और वह जिसे लेवे, उसे कलेवा कहते हैं अर्थात् जिसे खाया जाये। अब सोचा कि किस दिशामें जाऊ ? उसे जल्दी ही स्मरण हो आया कि "महाजनो येन गतः स पन्था।" जिस रास्तेसे बड़े बडे आदमी जा रहे हों, वही रास्ता चलना चाहिए। सो किसीके घरका कोई आदमी मर गया था, उसके संगमे बहुतसे आदमी

मरघट जा रहे थे। सो वह उन्हींके पीछे पीछे चला गया। सो वे तो वहां से फूंक फांककर चले आए, अब उसने सोचा कि साथमें कलेवा है इसे खा लें, पर ख्याल आया कि अकेले कलेवा न खाना चाहिए, बंधुवोंके संगमें खाना चाहिए। 'बंधुभि' सह भोक्तव्यम्।' बंधु कौन, 'राजद्वारे श्मशाने च य तिष्ठति स बान्धव।' सोचा कि कचेहरीमें और मरघटमें जो साथ दे वही बंधु होता है। सो मरघटमें एक गधा बैठा था। कहा कि यही मेरा भाई है, सो कलेवा खोलकर बैठ गया, गधको भी पासमें बिठा लिया। सो गधा भी खाता जाय और वह भी खाता जाय। सोचा कि ग्रन्थमें लिखा है कि बंधु धर्मेण योजयेत्। बंधुको धर्मके साथ जोड देना चाहिए। यह हमारा बंधु है गधा, सो इसे धर्मके साथ जोडे। अब धर्म क्या है? ढूंढा तो मिल गया श्लोक— 'धर्मस्य त्वरिता गतिः।' धर्मकी गति बडी तेज होती है। सो वहां बडी तेजीसे ऊँट जा रहा था, जिसकी तेजगति हो, जल्दी-जल्दी जाय उसका नाम धर्म है। मिल गया धर्म। अब बंधुको उस धर्मसे जोड़ना चाहिए। सो रस्सी से गधेको ऊँट के गले में जोड दिया। धर्ममें लगा दिया बंधु को। सो ऐसी अटपट विद्या सीख लेने से ज्ञान आत्मामें फिट तो नहीं बैठता।

ज्ञानकलाका जागरण— भैया! कितना ही अध्ययन करलें सबकी प्रायोजनिक जाननकी पद्धति भूतार्थ पद्धति है। सब पर्यायोंको जानें, किन्तु इस पर्यायका स्रोत क्या है? इसे भी जाने। वह स्रोत है शक्ति। कोई शक्ति है तो उस शक्तिका मूल क्या है, जहां ये सब अभेदरूप एक हो जाते हैं। वह है द्रव्य और वह द्रव्य क्या है, वस्तु क्या है? स्वभाव और स्वभावका मतलब क्या है? स्वस्य भवन, स्व का होना। बस इस प्रकार सहज स्वभाव पर पहुंच बने वही है ज्ञान, वही है धर्म और उसमें अपने को जोडना चाहिए, फिट बैठालना चाहिए। बस यही हुआ शुद्ध रत्नत्रय और शुद्ध रत्नत्रयका फल है निज आत्माका आलम्बन अर्थात जैसा सहज ज्ञायकस्वरूप यह भगवान् आत्मा है वैसा स्वरूप उपयोग में और परिणमनमें यथार्थ प्रकट हो गया है, यही है मार्गका फल। इस प्रकार इस गाथामें मार्ग और मार्गके फलका निरूपण किया जा रहा है।

जीवोंका खोजयत्न— जगतके जीव कोई स्त्रीके प्रेमजन्य सुखकी तलाशमें डोलते हैं तो कोई धनके अर्जन और रक्षणमें अपनी बुद्धिको भ्रमाते हैं, तो कोई जिनेन्द्रदेवके प्रणीत मार्गको पाकर अपने आत्मामें रत होनेका यत्न करते हैं। जो आत्मरतिका यत्न करते हैं वे ही पण्डित हैं। पण्डित अर्थात् विवेक बुद्धिको जो इत हों, अर्थात् प्राप्त हों उन्हें पण्डित

कहते हैं। जगतमें खूब छानकर देख लो—जैसे कि कहते है संसारभावना में कि "दाम विना निर्धन दु खी तृष्णावश धनवान, कहूं न सुख संसारमें सब जग देख्यो छान ॥"

जगतकी छान-- जैसे कहीं सूई अंधेरेमें गिर जाय तो खूब छान-छान कर देख लो रत्ती-रत्ती जगह को टटोलकर देख लो पर पता नहीं चलता कि सूई कहा गिरी है ? इसी तरह संसारमें खूब छान कर देख लो कहीं सुख नही दिखता। जो निर्धन है या जिसके पास दाम कम है वह निर्धनताका ख्याल कर करके दु खी हो रहा है और जिसके पास धन है वह तृष्णा बढाकर और अधिक धन हो, इस विकल्पसे दु खी हो रहा है। जिसके पुत्र नहीं हुए वह पुत्रोंका ध्यान बनाकर दुःखी हो रहा है और जिसके पुत्र है उसे वही तमाम आपत्तिया नजर आ रही हैं। जिसकी इज्जत नही हुई वह इसी बातसे दु खी रहता है कि मेरी इज्जत नहीं है। मेरी कोई पूछ नही है और जिसकी इज्जत है वह उस स्थितिके विकल्प बनाकर दु खी हो रहा है।

विकल्पसे क्लेशजाल— एक सहपाठी ने चर्चा करते हुए कहा कि देखो हम बताएं अपने त्यागी महाराजो को गुस्सा क्यो आ जाता है ? कहा अच्छा बतावो। तो उन्होंने कहा कि कोई त्यागी महाराज अपने आपमे ऐसा निर्णय करलें कि मै इतनी ऊंची पोजीशन का हू और मेरा इतना अधिक सम्मान हो ऐसा मेरा पद है, यह तो निर्णय कर चुके अपने दिलमें। अब दूसरेकी परिणति तो उनके आधीन है नहीं। कोई चाहेगा, कोई न चाहेगा, कोई कहना मानेगा, कोई न मानेगा, तब अपनेमे किए हुए निर्णयमे कुछ कमी रह जाय तो ये गुस्सा होते हैं। ऐसा क्यों नहीं हुआ इसने विनयपूर्वक क्यो नहीं बैठाया, नमस्कार क्यों नहीं किया ? अरे ये जगत्के जीव है, उनकी परिणति उनके आश्रित है।

शान्तिका कारण यथार्थ ज्ञान— भैया ! शाति तब मिलेगी जब त्यागी महाराज यह जान जायें कि यह पर्याय तो मेरी आफत लगी है। मैं तो एक शुद्ध चैतन्यस्वरूप हू। यहा तो सारा बखेड़ा लगा है। हमारा काम तो जंगलमें रहने का था, कंकरीली जमीन पर लोटनेका था। कोई शत्रु आए, दुःख दे तो वहा समता भाव करने का था। यहां तो सारी सुविधाएँ है। किस बात पर इतराना ? यह बात नहीं समाती है जब और अपनी पोजीशन का ख्याल रहता है—मै इतना ऊचा उठा हुआ पुरुष हू, बस इसीसे दुःखी हो जाता है। तो कौन है इस संसारमें सुखी ? सब जग छानकर देखलो अथवा जैसे छलनीसे राख छानकर उसमे से कुछ छांट

लिया जाता है इसी तरह अपनी विवेकछलनीमें सारे जगत्को छान लो और देख लो कि इसमें कोई सुख है ? कहीं सुख न मिलेगा। केवल कल्पना करके विकल्प बनाकर समय काट रहे हैं।

परसे अनुरागकी आशाकी व्यर्थता— भैया ! मनुष्यभवका इतना अमूल्य भव छोड़कर फिर कल्याण करनेका मौका कहा मिलेगा ? अनन्त कालके समयोंमें ४०-५० वर्षका यह समय कुछ गिनती भी रखता है क्या ? नरजीवनके ये क्षण यो ही विकल्पोंमे व्यतीत हुए जा रहे हैं। इस जिन्दगी का क्या भरोसा ? सारे जीवन परकी सेवा करे, पर विघटना होता है तो एक क्षणमे ही सब बिगड़ जाता है। कई वर्षों तक किये हुए प्रयत्नकी कृतज्ञता कोई नहीं मान सकता क्योंकि कषाय है ना। एक बात बिगड़ जाय तो चाहे कितना ही उपकार किया हो, दूसरेका वह सब भूल जाता है। और फिर यह कह देते है कि देखो हमे पिता ने कहा पाला, अजी पिताने हमे कहा पैदा किया ? उसने तो कषाय करके अपने विषयको पुष्ट किया और पाला पोषा भी हमे कहा ? विकल्प ही बनाया। यह तो उदयकी बात है। खैर कुछ हो।

इस जगतमे कितना ही किसीके लिए श्रम करे, पर वस्तुस्वभाव तो न बदल देंगे प्रत्येक द्रव्य केवल वह खुदमे ही रहता है, परिणमता है। क्या उनका स्वरूप बदला जा सकेगा ? जीवकी खोज अनेक प्रकारके विषयोंमें सुखके लिए होती रहती है, पर पडित चतुर वही है जो जिनवरके मार्गको प्राप्त करके अपने आत्मामे रत होता है। मुक्तिको प्राप्त वही होगा। अब नियमसार शब्दका अर्थ बताते हुए नियमसारमे क्या बात वर्णनमे आयेगी, इसका सक्षेपमे दिग्दर्शन कराते हैं।

णियमेण हि ज कज्जं तंणियम णाणदसणचरित्ता।
विवरीयपरिहरत्थं वयण सारमिदि भणिम ॥३॥

नियमसार— जो नियमसे करने योग्य है उसको नियम कहते है। वह नियम है ज्ञान दर्शन और चारित्र। नियम शब्दका अर्थ है विशेषरूप से जहां यम हो, फिट बैठता हो, स्थिरता हो उसको नियम कहते हैं। तो, इस जीवका परम कल्याण रूप एक यही स्थिरता का पद है कि अपने उपयोग द्वारा उपयोग स्वरूपको ग्रहण करे और ऐसा ही ग्रहण करता हुआ निरन्तर बर्ते। यही नियम है। नियम और नियमसार, इनमे कुछ अन्तर तो नहीं है। उसीका ही नाम नियम है, उसीका नाम नियमसार है, पर थोड़ी और विशेष दृष्टि ऐसी डाल ली गयी कि उस नियममे सार तत्त्व होना है। परमार्थ होना, विपरीत नहीं होना, विपद्-कष्ट य रूप नही होना

मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्या चारित्र रूप नहीं होना और व्यवहारधर्म
क्रियाकी अटक करके उस ही में अपने कर्तव्यकी इतिश्री न जाना जाय,
इन सब बातोंसे अपनेको सुरक्षित रखने के लिए सार शब्द दिया है ।

नियमसार शब्दका वाच्य स्वभावरत्नत्रय— जैसे समय और समय-
सार । वही समय है जो शुद्ध आत्मतत्त्व है, सहजस्वरूप है । अब समयको
सामान्य कहकर कि सभी आत्मा हैं, उसमें सार जो ध्रुव तत्त्वभूत है सो
समयसार है । नियम शब्दका अर्थ हुआ रत्नत्रय और उसमें सारभूत
लगाने से अर्थ हुआ स्वभावरत्नत्रय स्वरूप । जैसे सिद्धकी पूजामें पढ़ते हैं
ना "समयसार सुपुष्प सुमालया सहजकर्म करेण विशोधया । परमयोग
बलेन वशीकृत सहज सिद्धमहं परिपूजये ।।" मैं इस सहजसिद्धको पूजता
हूं । पूजता हूं इतना ही नहीं, परिपूजता हूं, अर्थात् सर्व ओरसे अभि-
समन्तात्में इसे पूजता हूं । पूजना, भजना, अर्चना, चर्चना—ये सब एका-
र्थक शब्द हैं । मैं इस सहजशुद्धको पूजता हूं । वह सहजशुद्ध कौन है ? तो
इसमें दोनों ओर दृष्टि जाती है, सिद्धभगवान् अथवा शुद्ध ज्ञायकस्वरूप ।

सहजसिद्ध स्वरूप— यह सिद्ध है, अर्थात पूरा बना हुआ है और
सहज सिद्ध है, सहज पूर्ण है, उस शुद्ध ज्ञायकस्वरूपको मैं पूजता हूं ।
काहे के द्वारा ? समयसाररूपी पुष्पमालाके द्वारा किसको पूजता हूं ?
समयसारको । किसके द्वारा पूजूं ? समयसारके ही द्वारा । यह पुष्पमाला
कैसे बनायी जाय ? माला तो लोग हाथसे गूंथ लेते हैं । तो यह माला
किस तरह गूंथें ? तो सहज जो कर्म है, परिणमन है, सहज क्रिया है वही
हुआ हाथ । उन हाथोंके द्वारा बनायी गयी है । ऐसे मालाके द्वारा परमयोग
बलसे वशीभूत इस सहज सिद्धको मैं पूजता हूं । ऐसा स्वभाव रत्नत्रय
अथवा निश्चय रत्नत्रयका स्वरूप इस नियमसारमें बताया गया है ।

सहज परमपारिणामिक भाव— जो सहज परमपारिणामिक भाव
में स्थिति है, स्वभाव अनन्त चतुष्टय स्वरूप है । ऐसा जो शुद्ध ज्ञान चेतना
का परिणाम है उसे नियम कहते हैं । प्रत्येक पदार्थमें सहज पारिणामिक
स्वरूप होता है । जिसमें स्वरूप तो वही शाश्वत रहता है और जो स्वरूप
की रक्षा के लिए उसके अनुरूप उसमें निरन्तर परिणमन चलता रहता है
उन सब परिणमनोंकी स्रोतभूत जो शक्ति है उसे पारिणामिक भाव कहते
हैं । यह शुद्ध ज्ञान चेतना परिणाम परमपारिणामिक भाव स्वरूप है ।
सर्वसे विविक्त केवल स्वरूप मात्र भावको शुद्ध ज्ञान चेतना परिणाम कहते
हैं । यह स्वभाव अनन्तचतुष्टय रूप है, प्रभु सिद्ध भगवान् व्यक्त अनन्त
चतुष्टय रूप हैं और यह सहज सिद्ध आत्मतत्त्व स्वभाव अनन्तचतुष्टय-

रूप हैं।

स्वभाव और शुद्ध परिणमनके वर्णनकी एकता— भैया! शुद्ध विकास और सहज स्वभाव इन दोनोंका स्वरूप एक होता है। जैसे निर्मल जल और जलका स्वभाव इन दोनोंका वर्णन तो करिये। जितना वर्णन आप निर्मल जलका कर सकेंगे उतना ही वर्णन आप जलका कर सकेंगे। सिद्ध भगवान्का जो व्यक्त स्वरूप है उसका जो कुछ वर्णन है वही वर्णन आत्माके सहज स्वभावका है। उनमें व्यक्त अनन्त चतुष्टय है तो सर्वजीवों का स्वभाव अनन्त चतुष्टय है। न हो तो प्रकट कैसे हो? सिद्ध प्रभु कुछ नई चीज नहीं बने हैं किन्तु जो थे वही केवल रह गये हैं। इसीको सिद्ध भगवान् कहते हैं। केवल रह जाना इसीके मायने प्रभुता है।

प्रभुकी प्रभुता— देखो भैया! इस प्रभुकी प्रभुता जैसे कोई बड़ा आदमी प्रसन्न हो तो बड़ी बात कर सकता है, और अगर बिगड़ जाय तो बिगाड़ करनेमें भी सामर्थ्य चाहिए ना, सो बिगाड़ कर देता है। यह प्रभु जब प्रसन्न होता है निर्मल होता है तो सर्वज्ञताका व्यवहार करता है। यही प्रभु जब बिगड़ता है तो यह भी क्या कम प्रभुता है कि पेड़ बन जाय, डाली-डाली, पत्ते-पत्ते बन कर फैल जाय, पतले-पतले तनोंमें प्रदेश फैल जाएँ, हरा भरा बना रहे, यह इस बिगड़े हुए प्रभुकी प्रभुता है। जो कुछ संसारमें गुजर रहा है, कोई पशु है कोई कीड़ा है, कोई पेड़ है, ये सब बिगड़े हुए इस प्रभुकी प्रभुता है। उसमें भी बड़ी सामर्थ्य चाहिए ना। कर दे कोई वैज्ञानिक ऐसी प्रभुताका काम तो हम भी समझें। बना तो दे कोई वैज्ञानिक इस चेतना को।

हितकारिणी प्रभुता— यह ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा इस संसार में अपनी प्रभुता विकाररूपमें बना रहा है पर इसमें क्लेश ही है, इसमें सार नहीं है। जब इसे ज्ञान होता है कि मैं अपनी प्रभुताका दुरुपयोग कर रहा हूं, प्रभुता तो अपूर्व है, अपने स्वरूपचतुष्टयको पहिचाने तो फिर उन विषयकषायादिक परिणामोंसे उपेक्षा करके अपने स्वरूपका श्रद्धान करना, ज्ञान करना और आचरण करना, इससे रत्नत्रयस्वरूप प्रकट होता है। यही है मार्ग, यही है नियम, यही है नियमसार। इस नियमके द्वारा नियमके आश्रयसे नियमसे जो कार्य किया जाय, वही प्रयोजन स्वरूप है, वही नियमसार है, अर्थात् ज्ञानदर्शन और चारित्र है।

निजपरमात्मत्वका परिज्ञान— ज्ञान किसे कहते हैं ?—परद्रव्योंका आलम्बन न करके सर्व प्रकार अन्तर्मुख अपनी योगशक्ति लगाकर, अन्तर्मुख उपयोगी होकर जो निज-परमात्मत्वका परिज्ञान होता है, जो

कि उपादेयभूत है वही है ज्ञान। इस लक्षणमे ज्ञान पानेकी तरकीब भी बता दी गयी है। इसको दो बातोमे जान लीजिए। एक तो परद्रव्योका आलम्बन छूटे और दूसरे अन्तमुर्ख अपना उपयोग जाय, दो ही तो ये बातें है।

आत्मत्वपरिज्ञानके दो मुख्य उपायोका विवरण— इन दोनों बातों को और सरल भाषामे यो समझियेगा कि एक काम तो यह है कि समस्त परद्रव्योंको भिन्न जानकर, असार जानकर, अपना दुर्लभ अवसर बिगाड़ने ही वाला जानकर उन समस्त परद्रव्योंको अपने उपयोगसे हटा दो। तुम्हारे उपयोगमे जो आता हो, कोई विकल्प आता हो, कोई धन प्राप्त करनेका उपायरूप विकल्प आता हो उन सबके प्रति यह तो ध्यान करिये कि ये सब असार बातें हैं, भिन्न हैं, अहितकी बाते हैं। कुछ न रहेगा अंतमे, खाली विकल्प करके जैसा यह पातकी बना वही रह जायेगा। कैसा भी विचार बनाओ वहा नियत स्वलक्षण देखो, स्वरूपास्तित्त्व देखो, सबको भिन्न जानो, असार जानो, अहितरूप जानो। किसी भी परद्रव्यमे उपयोग न दो। कोई कहेगा कि परद्रव्यमे उपयोग न देनेकी बात तो साहब कठिन है। इतना करा दो फिर हम आगे तो बढ लेंगे। अरे इसे खुद कर लो, कोई दूसरा आकर न करायेगा।

निज परमात्मत्वपरिज्ञानका द्वितीय मुख्य उपाय— दूसरा काम करना यह है कि जो अपने मे जानता हुआ रहता है ना सदैव वह जानना क्या है? किस स्वरूपका है, जाननेकी शकल क्या है, जाननेका रूपक क्या है? उस जाननेके स्वरूपके ही जाननेमे लग जाये, चीजोंके पीछे न पडें, परचीजोको जानते हैं तो परके पीछे न पड़कर उसका जो जानन हो रहा है वह जानन किस ढगका है, उसका क्या स्वरूप है? इसके जानने मे लग जाये। और आप आत्माका भी जानन कर रहे हो तो वहां भी आप आत्माके पीछे न लगे किन्तु वहा भी वह जानन किस तरहका हो रहा है? उस शुद्ध जाननका क्या स्वरूप है? जहां मात्र जानन ही जानन की बात हो उस जाननके स्वरूपको ही जाननेमे लग जायें, ये ही दो बातें यहा कही गयी हैं। तो इस उपायके द्वारा निज परमतत्त्वका परिज्ञान होता है।

निजपरमात्मत्वके परिज्ञानमे अन्त:पुरुषार्थकी आवश्यकता— इस निजतत्त्वके परिज्ञानमें अत:पुरुषार्थ करना होता है। मात्र ऊपरी दृष्टि रखकर दूसरोंको समझाना दूसरोंको उपदेश आदिकी कोई दृष्टि रखकर जो जाननका यत्न होता है उससे निज परमतत्त्वका परिज्ञान नहीं होता

है, किन्तु परद्रव्योका परिहार करके सर्वयत्नसे अपने आपके अन्तर्मुख होकर ज्ञान परिणमन करने से निज परमतत्त्वका ज्ञान होता है। इस ही ज्ञानको यहा नियमसारमे कहा गया है।

सम्यक्त्वका आधार स्थान— नियमसार सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रको कहते है। जिसमे सम्यग्ज्ञानका स्वरूप तो सक्षेपमे बता दिया गया था। अब सम्यग्दर्शनका स्वरूप कह रहे हैं। निज शुद्ध जीवास्तिकायसे जो निज सहज स्वभावका परम श्रद्धान है उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। इस आत्माको चार प्रकारसे दिखाते है— जीव पदार्थ, जीव द्रव्य जीवास्तिकाय और जीवतत्त्व--ये चार प्रकारकी देखनेकी पद्धति हैं—द्रव्य क्षेत्र, काल, भावका आश्रय करना। जब द्रव्यका आश्रय करके जीवको देखा जाय तो यह जीवपदार्थके रूपमे देखा जाता है। जब क्षेत्रका आश्रय करके इस जीवको देखा जाय तो जीवास्तिकायके रूपमें देखा जायेगा और कालकी दृष्टिसे जीवको देखा जाय तो जीवद्रव्यके रूपमे देखा जायेगा। और जब भावकी प्रमुखतासे इस निजको देखा जायेगा तो जीवतत्त्वके रूपमें देखा जायेगा। चूँकि श्रद्धान् आदिक अवस्थाएँ इस जीवभूमिमे होती है, अतः शुद्ध जीवास्तिकायमे समुत्पजनित परमश्रद्धान् ही सम्यग्दर्शन है, यह कहा गया है।

द्रव्यदृष्टिसे जीवकी परख— जब द्रव्यकी दृष्टिसे देखा तो इस जीव को जीव पदार्थ कहते हैं 'गुण पर्यायवत् द्रव्यम्।' गुणपर्यायका पिण्ड द्रव्य होता है। द्रव्यकी दृष्टिमे चैतन्य द्रव्यात्मक निरखा जाता है और व्यवहारमे भी समन्वय हुआ, इस तरह द्रव्यदृष्टिसे तो पुद्गल पकड़ा जाता है मुख्यतया, क्योंकि वह पिण्डरूपमे साफ नजर आता है। हाथमें लेकर बता सकें कि यह है घड़ी, यह है स्कध, यह है पुद्गल। तो यद्यपि ये चार दृष्टियां सभी पदार्थोंमे है, फिर भी व्यवहारिकतामे द्रव्यदृष्टिसे पुद्गलका निहारना स्पष्ट होता है। और क्षेत्रदृष्टिसे आकाशद्रव्यका समझना स्पष्ट होता है और कालदृष्टिसे कालद्रव्यका निहारना स्पष्ट होता है और भावदृष्टिसे जीववस्तुका निहारना स्पष्ट होता है—ये चारों सभी वस्तुओं में हैं, पर प्रमुखताकी बात कही है। गुणपर्यायका पिण्ड यह जीववस्तु है, ऐसा जब देखा तो जीव पदार्थ दीखा। पदार्थका शब्दार्थ है, पदका अर्थ है जो जीव पद कहा गया है उसका वाच्यभूत पिण्ड जो है उसे पदार्थ कहते हैं। तो एक पिण्डरूप नजर आए यह जीव अनन्त शक्तिका पुञ्ज है, अनन्त परिणमनका पुञ्ज है और जीवमे पुञ्ज नहीं निरखा जाता है पर समूहात्मकताको पिण्ड कहते हैं। यो द्रव्यदृष्टिसे यह जीव पदार्थ देख

गया है।

क्षेत्रदृष्टिसे जीवकी परख— क्षेत्रदृष्टिसे देखो तो विस्तार विरंभ प्रदेश फैलाव यह दृष्टि बनेगी। क्षेत्रदृष्टि करके हम जीवको देखें और राग-दिख जाय, ऐसा न होगा या ज्ञानात्मक कोई गुण दिख जाय, ऐसा न होगा क्योंकि दृष्टि लगायी है क्षेत्रकी। इस दृष्टिमें तो असंख्यातप्रदेश हैं, इतने विस्तार वाला है, इतना फैला हुआ है, यह दिखेगा और इस दिखनेसे यह जीव अस्तिकाय नजर आयेगा। अस्तिकाय कहते हैं उसे जो है और परिणमता है। जीवमें बहुत प्रदेश है, यह बात क्षेत्रदृष्टिसे ग्रहणमें आयेगी।

कालदृष्टिसे जीवकी परख— जब कालदृष्टिकी प्रमुखता करते हैं तो यह न नजर आयेगा कि जीव इतना लम्बा चौड़ा फैला हुआ है। क्योंकि कालदृष्टिकी प्रमुखतासे जीवको निहारने जा रहे हैं। वहां जो परिणमन होगा, रागरूप, द्वेषरूप विवेकरूप, ज्ञानरूप वह नजर आयेगा। पर्याय प्रमुख हो जायेगी और पर्यायकी प्रमुखतासे जीवका नाम है जीव-द्रव्य। द्रव्य उसे कहते हैं, अदुद्रवत् द्रवति द्रोष्यति पर्यायान् इति द्रव्यम्। जिसने पर्यायोको उत्पन्न किया, ग्रहण किया, पर्यायोंको कर रहा है, पर्यायोंको करेगा वह द्रव्य कहलाता है। जीवद्रव्य कहनेसे परिणमनकी प्रमुखता आती है।

भावदृष्टिसे जीवकी परख— जब भावदृष्टिको मुख्य बनाते हैं तो भाव मायने शक्ति ध्रुव गुणस्वभाव। उस दृष्टिको प्रमुख करके अपने आपको देखेंगे तो यह जीवतत्त्वके रूपमे विदित होगा।

अन्तस्तत्त्वविलासकी भूमि— जहां श्रद्धान परिणमन हुआ वह है शुद्ध जीवास्तिकाय। शुद्ध, जिसमे परकी लपेट नहीं, केवल जीव ही जीव फैला हुआ है, ज्ञान ज्योतिस्वरूप शुद्ध जीवास्तिकायमे उसही का श्रद्धान होना सो सम्यग्दर्शन है। यह जीवास्तिकाय, आत्मभूमिका शुद्ध अन्तस्तत्त्व के विलासका जन्मभूमिस्थान है। यह शुद्ध अन्तस्तत्त्व अर्थात् ज्ञायक-स्वभाव विकसित कहासे होता है, वह है यही शुद्ध जीवास्तिकाय अर्थात् आत्मभूमि। उसमे उसही का श्रद्धान् हुआ।

सम्यक् श्रद्धानका अधिकारी— यह श्रद्धान किसके होता है? जो भगवान् परमात्मदेवत्वके सुखका अभिलाषी हो अर्थात् जो शुद्ध आत्मीय आनन्दका प्रयोजक हो, ऐसे भव्य जीवके श्रद्धान् होता है। जैसे मोटे रूपमे यही परखिये। जिसने अपने जीवनमे यह उत्सुकता बनायी है कि मै इन मनुष्योंके बीचमे कुछ शानसे रहू, इनमें महान कहलाऊं, मेरा किसीसे

अपमान न हो, मेरे अनुसार सब चलें, जिसकी ऐसी दृष्टि होगी, जिसने ऐसा जीनेका लक्ष्य बनाया होगा उसको यह बात आ पड़ेगी ही कि वह अच्छा महल बनवाए, धनको बढाये, सरकारमें अपनी पैठ बनाए, ये सब उसकी तृष्णायें जगेंगी।

ज्ञानीकी संवेगभावना— जिसके अन्तरमें यह भावना जागृत हुई है कि इस मायामय जगत्में मायामय प्राणियोंसे हम अपने लिए क्या कहलाएँ ये भिन्न हैं, अपने परिणमनसे परिणमकर समाप्त हो जाते हैं, इनसे मेरे हितका कोई सम्बन्ध नहीं है, न इन पर मेरा सुख दुःख निर्भर है, ये सब मेरी ही तरह अथवा मेरेसे भी मलिन परिणामों सहित अपना जीवन गुजार रहे हैं, ये भी अपने क्लेश भोग रहे हैं, ऐसे क्लेश भोगने वाले मायामय मनुष्योंसे मुझे क्या कहलाना है ? आज मनुष्य हैं, थोड़े ही समय बाद मरकर कहींके कहीं पहुंच गए, तब फिर मेरे लिये कहा क्या है ? अगर अपना जीवन इन्हीं लल्लोचप्पोंके ही करनेमें बिता दिया, प्रेम करके बिता दिया, अपना आत्मसमर्पण करके बिता दिया तो फिर अपने कल्याण का अवसर और कहां मिल सकेगा ? यह समय भी गया। अपना यह दुर्लभ नरजीवन अज्ञानी बनकर ही बिता दिया तो उससे कुछ भी लाभ न होगा। बाहरमें मेरे लिए कोई कुछ नहीं है। न मेरे लिए शरण हैं, न सहाय हैं।

संतोषकारी वृत्ति-- भैया ! यह सारा जगत जिसे असार विदित हुआ है उसके लिए तृष्णाकी क्या गुञ्जाइश है ? उसका उत्साह ही उस ओर न जगेगा। रही गुजारेकी बात। जहां पुण्यके उदयमें ऐसा श्रेष्ठ भव पाया है, कुल पाया है, धर्म संगति प्राप्त की है वहां गुजारेकी क्या जरूरत? रही एक मनके ऊधमकी बात। कोई कहे कि भाई ४ रुपया तो रोज हमारे बीडी, सिगरेट, पानके लिए हो, तो इस ऊधमका तो कोई इलाज नहीं है मगर गुजारेके लिए कोई कितनी ही महंगाईका जमाना हो पर टोटा नहीं है। अगर समझते हो कि गुजारेका टोटा है तो जरा अपनेसे हीन परिस्थिति वाले और बहुकुटुम्बियों पर दृष्टि दो तो देखो कि वे भी जिन्दा हैं कि नहीं। वे भी गुजारा करते हैं कि नहीं। इस जीवनका लक्ष्य क्या है ? बड़ी ठाठबाट आरामसे जीवन गुजारना ही लक्ष्य बनाया है क्या ? यह जीवन बुझ जायेगा फिर क्या होगा आगे ? सो स्पष्ट है।

सुयोगके दुरुपयोगका फल-- हमने यदि अपने आपका अनुराग न किया, आत्मदेवका स्पर्श न किया और बाहरी आश्रयभूत विषयोंका ही ध्यान बनाया तो परिणाम स्पष्ट है कि अब कुछ आगे न मिलेगा। मनका दुरुपयोग किया, दूसरेका बुरा विचारा, तो कर्म भी यह कहेगा, कि इस

जीवको मनकी जरूरत नही है क्योंकि मन दिया तो उसका उपयोग नही किया, इसलिए अब क्या जरूरत है इस मनको मन की। तो यह मन बिना बिलवुल असञ्ज्ञी बन गया। इन कानोका दुरुपयोग किया, राग भरी बाते सुनी, नाच गाना हुआ तो वहा बहुत जल्दी मन लग जाय। उसके लिये कही टिकट लेने जाना पडे तो घटोसे खडे रहे। कानोका दुरुपयोग किया तो (अलंकारमे कह रहे हैं) यह विधि सोचता है कि इस भैयाको कानकी जरूरत नहीं है, यह तो बिना ही कानके ठीक रहेगा, तो बनेगा चौइन्द्रिय। आखोंका दुरुपयोग किया, रागदृष्टिसे सुहावनी वस्तुवोको देखना और दुरुपयोग करना, यो आखोका दुरुपयोग किया तो आखोकी भी अब क्या जरूरत है ? सो तीनइन्द्रिय ही रहना ठीक है।

धिक किनको ? एक सभा जुडी हुई थी, बरातकी महफिल थी, सो उसमे गाने नाचनेको एक वेश्या बुलाई गयी। खूब लोग जुडे हुए थे। मृदग हारमोनियम, मजीरा सब ठाठबाट थे। उस समयके ठाठबाटको एक कवि ने बताया कि मिरदग कहे धिक है धिक् है, मजीर कहे किनको किनको, तब वेश्या हाथ पसार कहे इनको, इनको, इनको। क्या कहा कवि ने कि महफिलमे मृदग बज रहा था तो वह यो ही बोलता है ना कि धिक् है, धिक् है, तो उसकी आवाज आती थी कि धिक्कार है, धिक्कार है। तो मंजीरा पूछता है कि किनको धिक्कार है ? ऐसी ही तो आवाज किन को किनको की निकलती है मजीरासे, तब वह मृदंग तो जवाब नहीं देता लेकिन जो वेश्या नाच रही थी सो मानो वेश्या कह रही है इनको-इनको इनको--इनको। चारो दिशावोमे बैठे हुए लोगोकी तरफ हाथ फैला-फैला कर मानों कह रही है कि इनको धिक्कार है। तो रागभरी इस तरहकी बाते सुननेमे इन मोही जीवोका उपयोग लग रहा है। सो क्या जरूरत हैं कानोकी और आखोकी अन्य कर्मठ इन्द्रियोंकी, सो सब सपाट होकर फैसला निगोदका ही मिलेगा।

विवेकपूर्वक चाहकी छांट— तो भैया ! यह निर्णय करो कि तुम्हें क्या चाहिए ? पहिले चाहकी खूब छाट कर लो। फिर मिल जाना बहुत जल्दी होगा। पहिले चाह ही ठीक बना लो--क्या आत्मसुख चाहिए या वैषयिक सुख चाहिए। वैषयिक सुखके पीछे बड़ी आकुलताएँ सहनी पड़ती परपदार्थोंकी बड़ी रक्षा करना पडती है कि मन माफिक इनका परिणमन हो और इतने पर भी विघ्न आएँ तो उनको दूर करनेमे युद्धसा मचावो, सारी परेशानी करके तो मिलना है वैषयिक सुख, तिस पर भी, सुख भोगने कालमे भी शांति नही किन्तु आकुलतासे ही उपभोग होता है। और इत-

ही नहीं, उपभोगके पश्चात् महान् पछतावा और आकुलता होती है। क्या चाहिए तुम्हें ? पहिले उस चाहकी छांट कर लो।

एकस्वरूपी जीवोंमे भी भेद बैठाकर कठिन पक्षपात— जगत मे अनन्त जीव हैं, उन अनन्त जीवोंमे से घरमे पैदा हुए दो चार जीवोंको अपना मानना और शेष सब जीवोंको पराया मानना, इसको कितना बडा अंधेर और अज्ञान कहा जाय ? ऐसी क्या आफत आयी कि उन झूठे भिन्न समस्त जीवोंकी ही तरह अपने ही स्वार्थमे रहने वाले अपने ही विषय-कषाय खुदगर्जीमे रहने वाले उन दो चार जीवोंको अपना सब कुछ मान लेना और उनके लिए तन, मन, धन, वचन सब समर्पण खुशीसे कर रहे हैं। बाकी जीवोंमे ये भी जीव हमारी ही तरह हैं ऐसा हृदयमें नहीं सोचते। इसे कितना बड़ा अज्ञान माना जाय ? फिर और अज्ञानपर अज्ञान चले। घरके बाल बच्चोंका तो खैर थोडासा भार है, लेकिन ये मेरी समाजके है, ये मेरी बिरादरीके हैं—ऐसा मानना कितना बड़ा अंधेर है ? अच्छा और जाने दो। जिस त्यागीका प्रथम परिचय हुआ उसे मानते कि यह तो दूसरे के त्यागी हैं। इसे कितना भ्रम और अज्ञान कहा जाय ? अपने पर दया नहीं आती।

आत्महितकी आत्मामे खोज— भैया ! अपने स्वरूपको तो समझो, सर्व जीवोंपर सही निगाह तो बनावो। मिलेगी जो कुछ अपनेको कल्याण की बात वह अपने द्वारा अपने में ही मिलेगी। अन्यत्र कितनी ही टकटकी लगाकर प्रतीक्षा करे, केवल क्लेश ही है, लाभ कुछ नही है, यह तो हुई सम्यग्दर्शनकी बात, अब चारित्रकी भी बात देख लो। निश्चय ज्ञान दर्शनात्मक जो कारणपरमात्मा है उसमे अविचल रूपसे स्थित हो जाना इसका नाम है चारित्र।

आत्मतत्त्वकी त्रिरूपता— भैया ! परमात्मतत्त्वको ३ प्रकारसे निहारिये—द्रव्यरूप कारणपरमात्मतत्त्व, पर्यायरूप कारणपरमात्मतत्त्व और कार्यपरमात्मतत्त्व। कार्यपरमात्मतत्त्व है अरहंत और सिद्ध जिसका सहजस्वरूप निरपेक्ष स्वय जैसे तत्त्वको लिए हुए है वैसा ही प्रकट हो गया उसे कहते हैं कार्यपरमात्मा और इस कार्यपरमात्मा होनेसे पहिले जो शुद्ध आत्मतत्त्व है उसे कहते हैं पर्यायरूप कारण परमात्मा और जो प्रत्येक आत्माका सहज स्वभाव है उसे कहते है ओघ कारणपरमात्मा।

परमार्थशरण कारणपरमात्मतत्त्व— यह कारणपरमात्मतत्त्व इस द्रव्यरूप कारणसमयसारके लिए अध्यात्मशास्त्रमे प्रयोग किया जाता है क्योंकि इस समस्याका समाधान यह कारणपरमात्मतत्त्व ही है। किस

समस्या था ? कि हम किसका आश्रय करें जिससे हमारी शुद्ध परिणति बने, परपदार्थका तो यह आत्मा निश्चय ही नहीं कर सकता, क्योंकि अपने जीवास्तिकायको छोड़कर अन्यत्र इसके गुणोंकी गति नहीं है। चाहे प्रभु अरहतदेव हैं, सिद्ध देव हैं, उनके इस गुणकी गति नहीं है। यह आत्मा अपने जीवास्तिकायमें रहते हुए ज्ञान द्वारा ऐसा ग्रहण करता है कि जिसमें अरहंत और सिद्धके स्वरूपका विषय होता है पर आश्रय नहीं कर सकता। आश्रय तो यह स्वयका ही कर सकता है, सो स्वय है वर्तमानमें अशुद्ध और अनादिसे ही चला आया है यह अशुद्ध। तो क्या इस अशुद्धके आश्रयसे शुद्ध परिणति बनेगी ? यह भी बात सम्भव नहीं है। तब यह निर्णय करना कि अपने आपका जो अपने आपके सत्त्वके कारण सहजस्वरूप है चित्स्वभाव, चित्प्रकाश, कारणपरमात्मत्व है उस शुद्धस्वरूपका आश्रय करें तो शुद्ध वृत्ति जगेगी।

ज्ञानकी अबाध गति— यह कारणसमयसार चाहे परिणमनमें अशुद्ध है पर ज्ञानकी ऐसी पैनी दृष्टि होती है कि यह ज्ञान अशुद्ध अवस्थामें भी अशुद्धमें न अटक कर, अशुद्धको छोड़कर भीतर गमन करता है और शुद्धको ग्रहण कर लेता है। जैसे हड्डीका फोटो लेने वाला यत्र कपड़ोको चमडे को, खूनको, मासको न ग्रहण करके केवल हड्डीका फोटो ले लेता है। जैसे आपकी कोई कीमती चीज तिजोरीमें बक्सके अन्दर पोटलीमें बधी है, मोती हीरा कुछ भी हो, आप यहा बैठे-बैठे एकदम उपयोगसे हीराको ज्ञानसे पकड़ जाते हैं। घरके किवाड लगें हो तो आपका ज्ञान दरवाजे पर न अटक जायेगा कि किवाड़ खुले तो हम भीतर जाएँ। तिजोरीके फाटकमें न अटक जायेगा सीधा वही पहुच जाता है। इसी प्रकार इस अशुद्ध अवस्थामें भी भेदविज्ञानके बलसे अपने नियत लक्षणका आलम्बन करके यह उपयोग उन सब परिणमनोंको छोड़कर अत शुद्ध चैतन्यस्वरूपको ग्रहण कर सकता है। इस शुद्ध चित्स्वभावके आश्रयसे शुद्ध परिणति होती है।

ज्ञानीकी नियमसारकी भावना— ऐसे निश्चयज्ञान दर्शनात्मक कारणपरमात्मतत्त्वमें अविचलरूपसे स्थित होना इसको ही कहते हैं चारित्र। इस प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र यही नियमसार कहा है और सार शब्दको लगाने से यह जानना कि इस स्वरूपसे अतिरिक्त और जो कुछ बात है, परिणमन है वह नियमसार नहीं है। ऐसे नियमसाररूप अपने आपकी वृत्ति जगानेके लिए कुन्दकुन्दाचार्य देवने इस नियमसारग्रन्थको बनाया है। ज्ञानी जीव रत्नत्रयके स्वरूपको जानकर यह भावना करते हैं कि मैं

विपरीत आशयरहित सम्यग्दर्शनको, विपरीत ज्ञानरहित सम्यग्ज्ञानको और विपरीत परिणतिरहित सम्यकचारित्रको प्राप्त करके मैं आत्मीय आनन्दको प्राप्त होऊँ। अब इस ही रत्नत्रयका वर्णन जाननेके लिए रत्नत्रयका भेदपूर्वक वर्णन कर रहे हैं।

णियमं मोक्ख उवायो तस्स फलं हवइ परमणिव्वाणं।
एदेसिं तिण्हं पि य पत्तेयपरूवणा होदि ॥४॥

मोक्ष और मोक्षोपाय— मोक्ष नाम है ऐसे अपूर्व महान् आनन्दके लाभका जो कि सहज स्वाधीन है और समस्त कर्मोंके विध्वंस हो जानेके निमित्तसे प्रकट हुआ है, ऐसे सहज परिपूर्ण आनन्दके लाभका नाम है मोक्ष और महान् आनन्दकी प्राप्तिका उपाय है निरतिचार रत्नत्रयकी परिणति। आत्मश्रद्धान्, आत्मज्ञान और आत्मरमण हैं महान आनन्दके प्राप्त करनेका उपाय, इसीका ही नाम मोक्ष है, सर्वसंकटोंसे छुटकारा हो जाना और स्वाधीन सहज शाश्वत आनन्दका लाभ होना। ज्ञान, दर्शन, चारित्र इन तीनोंका अब जुदा-जुदा प्ररूपण करते हैं।

परमार्थतः वस्तुकी एकरूपता— भैया ! यद्यपि किसी भी पदार्थमें उसका स्वरूप एक है और प्रतिसमय परिणमन एक है। उस वस्तुमें न कोई गुणभेद है और न उस वस्तुमें पर्यायका भेद है। एक समयमें एक वस्तुका एक ही परिणमन होता है और वह जिस रूप है उस ही रूप है, पर-व्यवहारमें उसकी समझ करने के लिये पर्यायका भेद किया जाता है और पर्यायभेदके माध्यमसे गुणभेद किया जाता है और इसी कारण किसी द्रव्यमें जब कोई बात विलक्षण मालूम होती हो तो झट एक गुण और मान लेते हैं। जब गुणभेद किया जाता है तो कुछ भी विलक्षणता प्रतीत हुई कि उसकी ही आधारभूत शक्ति और मान लो।

चित्स्वभावकी त्रिशक्तिरूपता— यहां प्रयोजनभूत शक्तिको तीन भागोंमें बांटा है—ज्ञानशक्ति, दर्शनशक्ति और चारित्रशक्ति। चूंकि प्रत्येक जीव इन तीनों बातोंमें मिल रहा है। कुछ न कुछ वह ज्ञान करेगा और कहीं न कहीं उसका विश्वास होगा, और किसी न किसी जगह वह रमेगा। ये तीनों बातें प्रत्येक जीवमें पायी जाती हैं, चाहे ऐकेन्द्रिय हो चाहे पचइन्द्रिय हो, प्रत्येक जीवमें ये तीन प्रकारकी वृत्तियां पायी जाती हैं और कार्य भी तब होता है जब तीनोंमें भोग रहता है।

ज्ञान, श्रद्धान, आचरण बिना कार्य न होनेके कुछ उदाहरण— दुकानका काम क्या विश्वास, ज्ञान और आचरणके बिना हो सकता है ? नहीं हो सकता है। दुकानके लायक ज्ञान होना चाहिये, विश्वास हो-

चाहिए और फिर उसको करने लगे तो दुकान का काम बनता है। किसी को कोई बडा संगीतज्ञ बनना है तो उसके चित्तमे कोई एक बड़ा संगीतमे जो निपुण हो उसका नाम रहता है, उसकी श्रद्धा है, इस तरह हम बन सकते हैं। अपने आपमे यह श्रद्धान है उसे कि हम संगीत सीख सकते हैं और फिर संगीतकी विधियोका वह ज्ञान करे और फिर बाजा लेकर उस पर हाथ चलाने लगे तो अभ्यास करते-करते संगीतज्ञ हो सकता है। छोटा छोटा अथवा बड़ा काम कोई भी हो, श्रद्धान, ज्ञान और चारित्रके बिना नहीं होता।

धर्मकार्यके लिये श्रद्धान ज्ञान आचरणका विश्लेपण— यह धर्मका भी काम, मोक्षका काम, संकटोसे छूटनेका काम श्रद्धान ज्ञान और चारित्र बिना नहीं होता। इसका नाम है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र। तो वस्तु एक है, आत्मा एक है और वह परिणम रहा है जो कुछ सो परिणम रहा है। अब उसकी समझ बनानेके लिए उसमे यह भेद किया जा रहा है कि यह तो ज्ञान है, यह दर्शन है और यह चारित्र है। तो उन दर्शन, ज्ञान, चारित्रोंका लक्षण अब अगली गाथावोंमें शुरू होगा। वस्तुत' मोक्षका उपाय आत्माकी निर्दोपता होना है। अब उस परिणतिको हम भेदकल्पना करके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रके रूपमे जानते हैं, यह अनुकूल कल्पना है, वस्तुस्वरूपके अनुसार है, इसलिए यह वस्तुके स्वरूप तक पहुचाने वाला कथन है। भेदकल्पना करके जो वर्णन किया जाय वहा भेदकल्पनामे अटकने के लिए वर्णन नही है किन्तु वह तो एक संकेत है।

आत्माकी अभेदरूपताके परिचयका फल— वस्तुतः ये तीनो भिन्न नहीं हैं। ज्ञानस्वरूप आत्मा है, आत्माको छोडकर अन्य कुछ ज्ञान नहीं है। दर्शन भी आत्मा है, आत्माको छोडकर दर्शन अन्य कुछ नही है और चारित्र भी आत्मा है। ऐसे इस आत्मस्वरूपको जो जानता है और उसमे ही रमण करता है वह फिर जन्म नहीं लेता। इसको किन्हीं शब्दोंसे कह लो। माताके उदरमें फिर नही पहुचता, फिर माताका दुग्धपान नहीं करता अर्थात् जन्म नहीं लेता, निर्वाणको प्राप्त होता है। करके देखो तो बात मालूम होती है कि क्या शांति है? क्या आनन्द है? वह तो करे बिना अनुभवमें नहीं आता है। और करना भी बड़ा सुगम है दृष्टि हो जाय तो। बाहर तो सब जगह आफत ही आफत है। किस पदार्थमे हितका विश्वास करें? कौन शरण है, किसकी शरण गहें?

जीवोंके प्रति व्यापक उदारदृष्टिकी प्राथमिकता— भैया! जैसे

जगतके सभी जीव भिन्न हैं, अपने स्वरूपको लिए हुए हैं इसी प्रकार गोष्ठी में और कुटुम्बमें जो दो चार जीव हैं वे भी मुझसे अत्यन्त भिन्न हैं। वे अपने स्वरूपको लिए हुए हैं। कितना मोहका गहरा अंधकार है कि उनके पीछे अपने आपको बरबाद किए जा रहे हैं। उनका पालन पोषण करना यह खुदके हाथकी बात नहीं है। और करे कुटुम्बके पोषणका काम व विकल्प, किन्तु उनके अतिरिक्त अन्य जीवोंको कुछ भी न देखना, न उनमें कुछ दया आए, न उनके साथ न्यायवृत्ति रखे, यह तो महामोह है। भैया! किसी जीवपर अन्याय तो न रखे, न पोषण कर सके हम दूसरोंका, कुटुम्बको छोड़कर तो उस जातीयताके नाते कि ये भी जीव हैं उन पर अन्याय तो न करें, इतनी बुद्धि नहीं जगती, यह मोहका बड़ा अंधकार है।

अब उन तीन तत्त्वोंमें प्रथम सम्यक्त्वका वर्णन करते हैं।

अत्तागमतच्चाणं सद्दहणादो हवेइ सम्मत्तं।
ववगयअसेसदोसो सयलगुणप्पा हवे अत्तो ॥५॥

निष्पक्ष आप्तस्वरूप— आप्त आगम और तत्त्वके श्रद्धान होने से सम्यक्त्व होता है। यह व्यवहार सम्यक्त्वका स्वरूप कहा जा रहा है। आप्त कहलाता है जो शंकारहित है। मोह रागद्वेष आदिक सर्व शंका और दोष जिसके दूर हो गए हैं, ऐसे निर्दोष वीतराग सर्वज्ञदेवको आप्त कहते हैं। उनका यथावत् श्रद्धान होना चाहिए। देव वह है जिसमें किसी प्रकार का दोष न हो और अपने ज्ञानादिक गुणोंका परिपूर्ण विकास हो गया हो, वह देव है। नामसे क्या मतलब? नामकी बात तो यह है कि नाम लेकर यदि देवों को पुकारेंगे तो नामका सम्बन्ध होने से जो दृष्टि बनती है उस दृष्टिमें देवका दर्शन नहीं होता है और जिस दृष्टिमें देवका दर्शन होता है उस दृष्टिमें नाम नहीं रहता है। देव किस नामका होता है? कोई आत्मा यदि निर्दोष है और गुणोंके चरम विकासको प्राप्त है वही हमारा देव है।

देवकी आदर्शरूपता— देव क्या है? आदर्श है। हमें भी ऐसी स्थिति चाहिए, ऐसा जिस पर लक्ष्य जाय उसीका नाम देव है। स्त्री सहित पुत्र सहित, शस्त्र सहित देवका स्वरूप माना जाय तो उसका अर्थ यह है कि उसको ऐसी स्थिति चाहिए कि ऐसी स्त्री मिले, ऐसा पुत्र हो, ऐसा वाहन हो, ऐसा हथियार हो। तो जो जैसा बनना चाहता है वैसा जिसका स्वरूप है वही देव है उसके लिए। जैसे संगीत शिक्षार्थीके लिए देव कौन है? जो देशभरमें संगीतमें निपुण हो। जो उदाहरण बने, आदर्श बने वह उसके लिए देव है। कोईसा भी काम सीखो तो उस काममें जो सर्वाधिक निपुण हो ऐसा कोई भी कहींका हो, वही उस सीखने वाले के लिए देव है।

तो जिन्हें निर्दोष और गुणोसे परिपूर्ण बनना है उनका देव ऐसा ही होगा कि जो निर्दोष हो और गुणोमे परिपूर्ण हो। ऐसी आप्तकी श्रद्धा होनेसे सम्यक्त्व जगता है।

आगम और तत्त्वार्थ— आगम आप्तके मुखारविन्दसे जो कुछ दिव्यध्वनि निकले, जो समस्त विभावोंका वर्णन करनेमें समर्थ हैं ऐसा जो वचनसमूह है उसका नाम आगम है। आगममें जो बात लिखी है उसका वाच्य है, प्रयोजनभूत तत्त्व है उसकी श्रद्धा बनती है। एक आगम की श्रद्धा और एक तत्त्वकी श्रद्धा, आगमकी श्रद्धा पहिले है, तत्त्वकी श्रद्धा का उसके बादका विकास है। बहिरात्मत्व, अन्तरात्मत्व और परमात्मत्व के भेदसे ये तत्त्व तीन तरहके हैं। जीवमे या तो बहिरात्मापन पाया जाता है या अन्तरात्मत्व मिलता है। सर्व जीव इन तीन भागोमे बँटे हैं और इन तीनों अवस्थावोंमे अन्वयरूपसे रहने वाला एक कारण परमात्मत्व है।

अन्तस्तत्त्व व अन्तस्तत्त्वके तीन रूपोंका विश्लेषण— इन्हीं चार स्वरूपोंको जागृति, सुषुप्ति, अतःप्रज्ञ और तुरीयपाद शब्दोंसे कहा गया है। जागृति बहिरात्मपनको कहते है, जो व्यवहारमे खूब जगे उसे कहते हैं जागृति, यही है बहिरात्माकी दशा। और सुषुप्ति सो गया, छिप गया भीतरमें उसे मानते हैं अंतरात्माकी दशा। सुननेमे ऐसा लगता है कि सोया हुआ बुरा होता है, जगा हुआ अच्छा होता है मगर उस सिद्धान्तमे जगा हुआ माना गया है अज्ञानी को और सोया हुआ माना गया है ज्ञानी के। सोये हुएकी पद्धति तो देखो वह अपने आपमे छिपा हुआ है। यों ही अन्तरात्मा अपने आपके ज्ञानमे छिप गया है और अतःप्रज्ञ दशा है परमात्माकी। प्रज्ञ हो गया है प्रकर्ष ज्ञानी हो गया है और उन तीनों अवस्थावोंमे जो एक स्वरूप है उसे कहते हैं तुरीयपाद याने चौथा चरण। उसके लिए कुछ नाम नही मिला। यदि नाम रखोगे उसके ही नामका कोई विशेषण रख दिया जायेगा। वस्तु पकड़मे न आयेगी इसलिए तुरीयपाद कहा गया हैं।

विशेषकत्वरहित शुद्ध नामोका अभाव— आप कोई ऐसा नाम बतावो जो तारीफ करने वाला न हो और सिर्फ वस्तुका नाम भर हो जैसे चौकी। तो क्या यह चौकीका नाम है? चौकी उसे कहते हैं जिसके चार कोने हो। इस शब्दने तारीफ कर दिया है, नाम नहीं बताया है। घड़ी— जो घड़कर बनायी गयी हो उसका नाम घड़ी है। इस शब्दने तारीफ की है, नाम नही बताया है। छत। इसका शुद्ध शब्द है क्षत—जो ठोक पीट कर बनायी जाय, जो क्षतविक्षत करके बनायी जाय उसका नाम छत है।

तो शब्दने नाम नही बताया किन्तु तारीफ करदी—चौखट चारो तर्फ जिसमे खट हो जो ऊपर सिरमे खट्टसे लग जाय, नीचे सोये तनिक लेटे लेटे सरक दे तो नीचेकी देरी खट लग जाय, अगल बगल सिकुड़ कर न जाय तो डडा लग जाय सो जिसमे चार तरफ खट हों सो चौखट है। तो इस शब्दने भी तारीफ ही कर दी। कौनसा नाम है ऐसा जो वस्तकी विशेषता न बताता हो। जैसे दरी। शुद्ध शब्द है देराई। जिसके बिछाने मे देर लगे उसे दरी कहते हैं। बडी मुश्किलसे बिछाए। सिकुडें पड जाये फिर उसे सुधारे, फिर गुडी पड जाय फिर सुधारे। इस तरह जिसके बिछानेमे देर लगे उसका नाम दरी है। तो इसमे भी शब्दने तारीफ करदी है। चटाई--जो चट आए सो चटाई। आई, झट डाल दिया—उसका नाम है चटाई। तो दुनियामे किसी वस्तुका नाम ही नही है, सब तारीफ करने वाले शब्द है।

आत्मपदार्थके भी विशेषकत्वरहित शुद्धनामका अभाव— अच्छा आत्माका नाम बतावो जो ठीक नाम बैठे तारीफ न करे। मुझे तारीफ करने वाला शब्द न चाहिए, क्योकि जो शब्द तारीफ करेगा वह हलकी बात कहेगा, पूरी बात न कहेगा, एक अशकी बात कहेगा। आत्माका नाम बतावो। जीव--जो प्राण धारण करे सो जीव नाम कहा हुआ? आत्मा सतत अनति इति आत्मा, जो निरन्तर ज्ञानरूप परिणमता रहे उस का नाम है आत्मा। नाम कहां हुआ? तारीफ उसकी कर दी। ज्ञाता जो जाननहार है सो ज्ञाता। नाम तो नही हुआ। उसके कई गुण बताये हैं ज्ञायक यह भी ज्ञाताकी ही तरह है। जो जाने सो ज्ञायक। तो कोई ऐसा शब्द नहीं है जो आत्माका शुद्ध नाम हो। अश नहीं बताये, पूर्ण अशोंको बता दे ऐसा कोई नाम नहीं है, इसलिए कहते हैं तुरीयपाद। -

सकल आत्मावोका त्रिविधतामे विभाजन— समस्त जीव इन तीन तत्त्वोमे बटे हैं। बहिरात्मा किसे कहते हैं, जो बाहरकी बातों को जाने उन्हे ही अपना आत्मा माने उसका नाम है बहिरात्मा। अपने आत्मासे बाहर जो कुछ भाव है, जो कुछ पदार्थ हैं उसको आत्मरूपसे अंगीकार करना उसे कहते हैं बहिरात्मा। अन्तरात्मा—जो अपने अन्तरकी बात अन्तरके स्वरूपको ही आत्मा माने उसका नाम है अन्तरात्मा। ज्ञानानन्द स्वभावमात्र जैसा कि सहज स्वरूप है उसको आत्मा मानना उसे कहते हैं अन्तरात्मा और परमात्मा कहते हैं उसे जो परम आत्मा है परमका अर्थ है—परमा लक्ष्मी विद्यते यत्र सह परम'। जहा उत्कृष्ट ज्ञान लक्ष्मी पायी जाय उसका नाम है परम और परम आत्माका नाम है परमात्मा।

परमात्मा कितने होते हैं ? अनन्त। और अतरात्मा कितने मिलेंगे ? अनन्त नही। अनन्तसे बहुत कम याने असंख्यात और बहिरात्मा कितने मिलेंगे ? अनन्तानन्त।

परमात्मा शब्दमे वर्तमानतीर्थङ्कर सख्यासूचक सुयोग— वैसे प्रसिद्धि ऐसी है कि भगवान् २४ होते है। अभी बच्चोसे कहो कि चौबीसो भगवान्के नाम बतावो तो वे झट बोल देगे। अर्थात् जो २४ तीर्थंकर हुए हैं, उनको कहते हैं कि भगवान् चौबीस है। औरो ने भी भगवान्के २४ अवतार माने हैं। तो अब एक चीज जरा देखो। परमात्माकी ऐसी लिखावट है कि उनके अंकोका जोड़ २४ होता है ? प यो लिखते हैं ५ जैसे। र यों लिखते सो २ जैसा लगता और बड़ा मां यों लिखते सो ४। जैसा लगता और फिर आधा त यो लिखते कि ८ जैसा मालूम होता और बादमे बडे या महाराज आ गए सो ४। जैसा मालूम होता। इन सबको जोड़ लो तो २४ की सख्या होती है। तो परमात्मा की लिखावटमें भी २४ की धुनि पड़ी हुई है। कुछ यहां ऐसा कार्य कारण नही लगा लेना कि परमात्मामे २४ अंक बसे हैं इसलिए २४ होते हैं। तीर्थंकर भरत ऐरावतमे २४ प्रकृत्या होते है तो परमात्मा वह है जिसमे उत्कृष्ट ज्ञान लक्ष्मी प्रकट हुई हैं। अथवा जैसे तीन तत्त्व बताये गए है, दूसरी प्रकारसे ७ तत्त्व श्रद्धाके योग्य हैं—जीव, अजीव, आश्रव, सवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष।

व्यवहार और निश्चयकी उपादेयता— इस तरह आप्त आगम और तत्त्वके श्रद्धानसे सम्यग्दर्शन होता है और इसके श्रद्धानको व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते है। अर्थात ये सब स्थितियां निश्चय सम्यक्त्वके योग्य बनानेका अवसर देती है। सबकी जरूरत है। आज कुछ जानकार हो गए, पढ लिखकर समझदार हो गए तो सबके लिए एकसी बात कही जाय कि भाई यही है निश्चय रत्नत्रय और बाकी सब हेय है, त्यागने योग्य हैं। सर्व साधारणके लिए यह उपदेश फिट नहीं हो सकता, हम ही अपनी स्थिति को विचारें, हम क्या करते थे, फिर क्या किया, फिर कैसे उन्नति हुई ? आज जान गए कि वास्तविक स्वरूप क्या है ? सो उपदेशमे यथापद योग्य उपदेश हो।

व्यवहारसम्यक्त्वमे प्रभुभक्तिकी प्राथमिकता— यह व्यवहार सम्यक्त्वका स्वरूप यहां बताया गया है जो कि निश्चय सम्यक्त्वका कारणभूत है। जिस पुरुषके अन्दर भगवान्मे तीव्र भक्ति नहीं प्रकट होती है वह पुरुष आगे बढ़नेका पात्र भी नही है पाता। वह संसारसमुद्रके बीच मे गोते ही लगाता रहता है। हम कुछ तत्त्व चर्चा करना जानते हैं या

तो शब्दने नाम नहीं बनाया किन्तु तारीफ करदी—चौखट चारों तरफ जिसमें खट हो जो ऊपर सिरमें खट्टसे लग जाय, नीचे सोये तनिक लेटे लेटे सरक दे तो नीचेकी देरी खट लग जाय, अगल बगल सिकुड़ कर न जाय तो खटा लग जाय सो जिसमें चार तरफ खट हो सो चौखट है। तो इस शब्दने भी तारीफ ही कर दी। कौनसा नाम है ऐसा जो वस्तुकी विशेषता न बताता हो। जैसे दरी। शुद्ध शब्द है देराई। जिसके बिछाने में देर लगे उसे दरी कहते हैं। बड़ी मुश्किलसे बिछाया। सिकुड़ें पड़ जाये फिर उसे सुधारे, फिर गुड़ी पड़ जाय फिर सुधारे। इस तरह जिसके बिछानेमें देर लगे उसका नाम दरी है। तो इसमें भी शब्दने तारीफ करदी है। चटाई—जो चट आप सो चटाई। आई, फट डाल दिया—उसका नाम है चटाई। तो दुनियामें किसी वस्तुका नाम ही नहीं है, सब तारीफ करने वाले शब्द हैं।

आत्मपदार्थके भी विशेषकत्वरहित शुद्धनामका अभाव— अच्छा आत्माका नाम बतावो जो ठीक नाम बैठे तारीफ न करे। मुझे तारीफ करने वाला शब्द न चाहिए, क्योंकि जो शब्द तारीफ करेगा वह हल्की बात कहेगा, पूरी बात न कहेगा, एक अंशकी बात कहेगा। आत्माका नाम बतावो। जीव—जो प्राण धारण करे सो जीव नाम कहा हुआ? आत्मा सतत अतति इति आत्मा, जो निरन्तर ज्ञानरूप परिणमता रहे उस का नाम है आत्मा। नाम कहा हुआ? तारीफ उसकी कर दी। ज्ञाता जो जाननहार है सो ज्ञाता। नाम तो नहीं हुआ। उसके कई गुण बताये हैं ज्ञायक यह भी ज्ञाताकी ही तरह है। जो जाने सो ज्ञायक। तो कोई ऐसा शब्द नहीं है जो आत्माका शुद्ध नाम हो। अंश नहीं बताये, पूर्ण अंशोंको बता दे ऐसा कोई नाम नहीं है, इसलिए कहते हैं तुरीयपाद।

सकल आत्मावोंका त्रिविधतामें विभाजन— समस्त जीव इन तीन तत्त्वोंमें बटे हैं। बहिरात्मा किसे कहते हैं, जो बाहरकी बातोंको जाने उन्हें ही अपना आत्मा माने उसका नाम है बहिरात्मा। अपने आत्मासे बाहर जो कुछ भाव है, जो कुछ पदार्थ हैं उसको आत्मरूपसे अंगीकार करना उसे कहते हैं बहिरात्मा। अन्तरात्मा—जो अपने अन्तरकी बात अन्तरके स्वरूपको ही आत्मा माने उसका नाम है अन्तरात्मा। ज्ञानानन्द स्वभावमात्र जैसा कि सहज स्वरूप है उसको आत्मा मानना उसे कहते हैं अन्तरात्मा और परमात्मा कहते हैं उसे जो परम आत्मा है परमका अर्थ है—परमा लक्ष्मी विद्यते यत्र सह परमः। जहां उत्कृष्ट ज्ञान लक्ष्मी पायी जाय उसका नाम है परम और परम आत्माका नाम है परमात्मा।

परमात्मा कितने होते हैं ? अनन्त। और अतरात्मा कितने मिलेगे ? अनन्त नही। अनन्तसे बहुत कम याने असख्यात और बहिरात्मा कितने मिलेगे ? अनन्तानन्त।

परमात्मा शब्दमे वर्तमानतीर्थङ्कर सख्यासूचक सुयोग— वैसे प्रसिद्धि ऐसी है कि भगवान् २४ होते हैं। अभी बच्चोसे कहो कि चौबीसो भगवान्के नाम बतावो तो वे झट बोल देगे। अर्थात् जो २४ तीर्थंकर हुए हैं, उनको कहते हैं कि भगवान् चौबीस है। औरों ने भी भगवान्के २४ अवतार माने हैं। तो अब एक चीज जरा देखो। परमात्माकी ऐसी लिखावट है कि उनके अंकोका जोड़ २४ होता है ? प यो लिखते हैं ५ जैसे। र यों लिखते सो २ जैसा लगता और बड़ा मां यो लिखते सो ४।। जैसा लगता और फिर आधा त यो लिखते कि ८ जैसा मालूम होता और बादमे बड़े या महाराज आ गए सो ४।। जैसा मालूम होता। इन सबको जोड़ लो तो २४ की सख्या होती है। तो परमात्मा की लिखावटमें भी २४ की धुनि पड़ी हुई है। कुछ यहा ऐसा कार्य कारण नही लगा लेना कि परमात्मामे २४ अक बसे हैं इसलिए २४ होते हैं। तीर्थंकर भरत ऐरावतमे २४ प्रकृत्या होते है तो परमात्मा वह है जिसमे उत्कृष्ट ज्ञान लक्ष्मी प्रकट हुई हैं। अथवा जैसे तीन तत्त्व बताये गए हैं, दूसरी प्रकारसे ७ तत्त्व श्रद्धाके योग्य हैं—जीव, अजीव, आश्रव, सवर, निर्जरा, बध और मोक्ष।

व्यवहार और निश्चयकी उपादेयता— इस तरह आप्त आगम और तत्त्वके श्रद्धानसे सम्यग्दर्शन होता है और इसके श्रद्धानको व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते है। अर्थात ये सब स्थितिया निश्चय सम्यक्त्वके योग्य बनानेका अवसर देती है। सबकी जरूरत है। आज कुछ जानकार हो गए, पढ लिखकर समझदार हो गए तो सबके लिए एकसी बात कही जाय कि भाई यही है निश्चय रत्नत्रय और बाकी सब हेय है, त्यागने योग्य है। सर्व साधारणके लिए यह उपदेश फिट नही हो सकता, हम ही अपनी स्थिति को विचारे, हम क्या करते थे, फिर क्या किया, फिर कैसे उन्नति हुई ? आज जान गए कि वास्तविक स्वरूप क्या है ? सो उपदेशमे यथापद योग्य उपदेश हो न

व्यवहारसम्यक्त्वमे प्रभुभक्तिकी प्राथमिकता— यह व्यवहार सम्यक्त्वका स्वरूप यहा बताया गया है जो कि निश्चय सम्यक्त्वका कारणभूत है। जिस पुरुषके अन्दर भगवान्मे तीव्र भक्ति नहीं प्रकट होती है वह पुरुष आगे बढ़नेका पात्र भी नही है पाता। वह ससारसमुद्रके बीच मे गोते ही लगाता रहता है। हम कुछ तत्त्व चर्चा करना जानते हैं या

तत्त्वचर्चाका प्रवाह यह उठा है, उसमें ही रम जायें और हममें प्रभुके प्रति तीव्र अनुराग का परिणाम न जगे जिसमें कि गुणोंके स्मरणका आनन्द रहता है और अपने दोषोंका पछतावा होनेसे विशाद जगता है, ऐसे आनन्द और विशाद दोनोंको मिश्रण कराकर पाप धोने वाली भक्ति यदि हम अपने आपमें प्रकट नहीं कर पाते हैं तो आजके समयमें तो हम आगे धर्मग्रहणके मार्गमें प्रगति नहीं कर सकते। तो व्यवहार सम्यक्त्वकी भी आवश्यकता है जो कि हमारी आगामी प्रगतिका कारण है।

प्रभुभक्तिका प्रभाव— प्रभुकी भक्तिकी प्रगतिका इस जीवनमें बहुत बड़ा आधार है। पूज्य श्री वादिराज मुनिने बताया है कि हे प्रभो! शुद्ध ज्ञान भी हो जाये, शुद्ध चारित्र भी हो जाय तो भी जब तक आपमें उत्कृष्ट भक्ति नहीं जगती जब तक मुक्तिके द्वारमें लगे हुए किवाड़ोंको खोलनेकी कुञ्जी उसे नहीं मिलती है। बुद्धिपूर्वक चलकर पुरुषार्थ तो करना है प्रभु-भक्तिका और जब प्रभुभक्तिसे हम समर्थ हो जायें तो समाधिका होना यह मेरे सहज होगा। यह प्रभु १८ दोषोंसे रहित है और अनन्त चतुष्टय आदि के सहित हैं। वे १८ दोष कौन हैं जिनसे प्रभु रहित हैं।

छुहतण्हभीरु रोसो रागो मोहो चिंता जरा रुजा मिच्चू।
स्वेदं खेद मदो रइ विम्हिय णिद्दा जणुव्वेगो॥६॥

अठारह दोषोंका प्रभुमें अभाव— १८ दोष हैं क्षुधा, तृषा, भय, रोष राग, मोह, चिंता, बुढापा, रोग, मृत्यु, पसीना, खेद, घमड, रति, आश्चर्य निद्रा, जन्म और उद्वेग। ये दोष भगवान्‌में नहीं होते हैं। अब इन दोषों का लक्षण सुनिए।

क्षुधा दोषका विवरण— क्षुधा किसे कहते हैं? असातावेदनीयके तीव्र उदयसे व उदीरणासे तीव्र मंद क्लेशके रहते हुए क्षुधा होती है, अर्थात् क्षुधा उत्पन्न करनेमें सहायक ऐसा असाता वेदनीय कर्म निमित्त हो उस समय जो शरीरमें एक विशिष्ट दशा होती है भूख जैसी, तो वहां क्षुधाकी वेदना होती है। भूखको कोई बता सकता है क्या? जैसे कोई बच्चे लोग कभी-कभी कहते हैं कि हमें भूख लगी, तो उनसे कहो कि जरा दिखाओ तो अपनी भूख, तो क्या कोई अपनी भूख दिखा सकता है? नहीं दिखा सकता है। अरे कहां भूख लग बैठी, यह कहा लगती है? भूख कहा लगती है? पेटमें। पेटके ऊपर भूख लगती है कि भीतर लगती है? पेटके भीतर लगती है। तुमने ही बता दिया कि भीतर भूख लगती है अब हम तुम्हें क्या उत्तर दें।

क्षुधा और बुभुक्षाके वाच्यका अन्तर— आप हमसे पूछें कि भूख

कहां लग रही है ? तो आपको हम क्या कहेंगे कि हमें पता नहीं कुछ भी कि कहां भूख लग रही है ? भूखकी बात पूछो तो भूखका संस्कृत शब्द है। बुभुक्षा माने भूख भोक्तुं इच्छा इति बुभुक्षा। भूखका अर्थ है भोगनेकी इच्छा, खानेकी इच्छा। अब बतावो भूख शरीरमें लगी कि आत्मामें ? अर्थ पहिले समझ लो। बुभुक्षा मायने खानेकी इच्छा। तो खानेकी इच्छा आत्मामें लगी कि शरीरमें ? भूख आत्मामें लगी। पहिले शब्दका अर्थ समझो। और क्षुधा कहां लगी ? तो क्षुधाका क्या अर्थ है ? उसका भी अर्थ है विक्लव करना आपत्ति करना। तो भूख मायने खानेकी इच्छा वह तो हुई जीवमें और शरीरमें जो हल्कापनसा है वह है क्षुधा। इसे आप बता नहीं सकते हैं। क्षुधा लगती तो भैया हमारे भी है पर हम बता नहीं सकते कि क्षुधा क्या कहलाती है ? पेटमें कुछ नहीं रहता, रीतासा रहता है। उसमें आलपीनें सी गड़ती रहती हैं। ऐसी एक विशिष्ट दशा हो जाती है वह है शरीरमें क्षुधा। इस प्रकार शरीरकी क्षुधा अवस्था होने पर खानेकी जो इच्छा जगती है वह इच्छा होती है जीवमें, जीवको वेदना होती है इच्छासे। तेज भूख लगी तो अधिक वेदना होती है और हल्की भूख लगी तो हल्की वेदना होती है। वह है क्षुधा नामका दोष।

तृषादोषका विवरण— तृषा कैसी है कि असाता वेदनीयके उदयसे तीव्रतीव्रतर और मंदमंदतर पीड़ा रूप तृषा उत्पन्न होती है। देखो—क्षुधा में तो दो जातिकी वेदना है—तीव्र और मंद और तृषा भी दो जातिकी वेदना है, तीव्र तीव्रतर और मंद मंदतर। बहुत हल्की, हल्की, तेज और बहुत तेज। ऐसी ४ वेदनाएँ होती हैं। प्यासमें और भूखमें दो तरहकी वेदनाएँ होती हैं--तीव्र और मंद। तो प्यासमें हल्कीसे हल्की वेदना और तेजसे तेज वेदना है, किन्तु भूखमें न बहुत हल्की वेदना रहती और न अत्यन्त तेज वेदना रहती। बहुतसे लोग प्याससे मर जाते हैं भूखसे नहीं मरते। इसका यह कारण है कि तीव्रतर वेदना प्यासमें होती है, भूखमें तीव्रतर वेदना नहीं होती है। किसीको जरासी भी प्यास लगी हो तो झट महसूस हो जाती है और भूख जरासी लगी हो तो पता ही नहीं रहता। तो भूख अत्यन्त हल्की कभी नहीं होती। प्यास अत्यन्त हल्की भी होती है।

क्षुधा तृषाका नरलोकव्यवस्थामें सहयोग-- ये क्षुधा तृषाकी वेदनाएँ आप्त भगवानमें नहीं हैं। ये दो बड़ी कठिन वेदनाएँ है भूख और प्यासकी। मनुष्यके भूख और प्यास न लगती होती तो बड़ा अंधेरा यहां मच जाता, फिर कोई व्यवस्था ही यहां न हो पाती। जैसे देव हैं, उनके भूख प्यास

नही लगती। मगर वहा अंधेर यों नहीं मच रहा है कि वे न दुकान करें, न रोजगार करे, न कमायीका कोई काम करे, भूख प्यासकी वेदना नहीं रही मगर फिर भी उनका बुरा हाल हो रहा है और यहां भूख प्यास तो लगे नहीं साथ पोजीशनके लिये दुकानें व्यवसाय किये ही जायें तो यहा जो अधेरा मच जायेगा उसका प्रलय जैसा रूप हो जायेगा। मनुष्य भूख प्यासके आगे घुटने टेक देते हैं।

क्षुधा तृषाका मोक्षोपायार्थियोमे स्थान— वैसे तो भैया ! जहा भूख प्यासकी वेदना होती है उस ही भवमें मुक्तिका उपाय बन सकता है। जहा जहा भूख प्यासकी वेदना होती है वहा से मुक्तिका रास्ता खुला है यह तो नहीं कह रहे किन्तु मुक्तिका मार्ग उस भवसे ही मिलता है जिस भवमे भूख और प्यासकी वेदनाएँ हुआ करती हैं। जहा भूख और प्यासकी वेदनाएँ नहीं हैं, वहा सम्यकचारित्र भी नहीं बनता। ऐसा जानना कि भोगभूमिया जीव हैं, देव व नारकी हैं इनको इस भवसे मुक्ति नहीं बतायी गयी है। अरहंतके क्षुधा और तृषाकी वेदना नहीं है किन्तु वे मुक्तस्व रूप हैं।

भयदोपमे इहलोकभयका विवरण— तीसरा दोष बताया जा रहा है भय। भय ७ प्रकारके होते हैं, इस लोकका भय, हाय मेरी जिन्दगी कैसे चलेगी, मेरा गुजारा कैसे होगा, कैसे-कैसे कानून बन रहे हैं, यह इतनी जायदाद रह सकेगी कि नहीं, आदिक नानाप्रकारकी विकल्प धाराएँ चलवाना और सामने आने वाली विपत्तियोंसे घबडाना— ये सब इस लोक के भय हैं। कितने ही भय हैं इन जीवोंमे और ये समस्त भय एक आत्मा के आश्रयसे समाप्त हो जाते हैं। भैया ! वह जीव बडा सुरक्षित है जिसमे विषय वाञ्छाएँ परिग्रह सञ्चय या यश कीर्तिका फैलाना ये परिणाम नहीं होते। वह मनुष्य नहीं है वह तो प्रभुका छोटा भाई है।

भ्रमीका बेतुकी श्रम— ये विकार परिणाम जिस जीवके होते हैं उस समय यह मूर्ख बनता, आकुलतावोंमें पड़ता और भविष्यकी आकुलताएँ भी लाद लेता है। अतमें फल क्या मिलता है ? कुछ नहीं। बाल बच्चोंके लिए, कुटुम्ब परिवारके लिए कितना-कितना श्रम करते हैं और ऐसा निर्णय करके बैठे हैं कि जितना भी धन कमाते हैं वह सब इस कुटुम्बके लिए ही है अन्य कार्यके लिए नहीं है। अपना सारा श्रम कुटुम्बके लिए ही करेंगे, औरोंके लिए नहीं। रात दिन किसी जगह बैठे हों जब मनमें चिंतन करेंगे तो कुटुम्बका चितन करेंगे। वह ऐसा है, उसे यों करना है, उसे यों सुखी करेंगे, निरन्तर चिंतन चलाया करते हैं। और प्रेमपूर्वक

अपना हृदय देकर वचन बोलनेका यदि कुछ यत्न है तो कुटुम्बके लिए है। यह दशा है मोहग्रस्त जीवोंकी। भला बतावो कि उनके हृदयमे भगवानका निवास कैसे हो ? उनके उपयोगमे प्रभुकी भक्ति कैसे आए ?

हृदयवास अथवा पूजा— जब तक हृदयमे स्वच्छता नही उत्पन्न होती तब तक प्रभुका स्मरण ही नहीं हो सकता। वैसे पूज तो रहे सब लोग निरन्तर किसी न किसीको, पर कोई भगवानको पूज रहा है, कोई किसीको पूज रहा है। हृदयमे जिसका रात दिन अधिक समय तक निवास होता हो उसको ही वह पूज रहा है। कोई स्त्रीको पूज रहा है, कोई बच्चोको पूज रहा है, कोई धनको पूज रहा है। तो कोई पंडित चतुर जिसका निकट संसार हो उसको वह पूज रहा है। पूजा बिना कोई नहीं रहता। जिसके हृदयमें जिसका अधिक समय तक निवास हो वह उसको ही पूजता है।

हितकारिणी पूजाका निर्णय— भैया ! अब यह निर्णय कर लो कि किसको पूजनेमे भलाई है, इस आत्माको कौन शांति दे सकता है ? यह उपयोग अपनी श्रद्धामे है, इससे चूककर बाहर फिरकर किसी परपदार्थका आश्रय करें वह तो भटका हुआ लिया दिया रीता उपयोग है उसमे शांति प्रकट होनेका माद्दा नही है। किसी भी परवस्तुको यदि हम अपने उपयोग मे रखते हैं तो उससे नियमसे अशांति उत्पन्न होगी। कोई न कोई प्रकार की आकुलता आ जायेगी। भगवान्की भक्ति लाभ देती है ठीक है मगर बिना कुछ आकुलताके हम प्रभुकी भक्ति भी नही कर सकते है। खैर ! पूर्ण शांतिकी अवस्थापर दृष्टि रहती है तो हमे प्रभुभक्तिसे बहुत लाभ मिलता है। जो जितना गदा हो, मलिन हो, विषयकषायोंके बोभसे लदा हो उसे प्रभुभक्ति बड़ा लाभ देती है। कितने सकट दूर हो जाये, कितने पाप दूर हो जाये तो आकुलता समाप्त हो जाती है यह प्रभुभक्तिमे गुण है।

शुभरागमे भी क्षोभका स्थान-- भैया ! फिर भी उपयोग चूँकि अपने स्वामीको छोडे हुए हो और बाहरमे किसी शुद्ध तत्त्वका भी ध्यान कर रहा हो तो विकारोंका बहिर्गमन तो बराबर है। बहिर्गमनमे ही यह कला है कि आकुलता रहती है। किसीको शिखर जी जानेकी मनमे इच्छा हुई तो उस इच्छासे अतःआकुलता हुई ना कि मुझे शिखर जी जाना है। यद्यपि और भी बहुतसे काम हैं जिनसे आकुलता होती है। यहां कुछ अच्छे ढंगकी आवश्यकता है सो बता रहे हैं। मन, वचन, कायका यत्न किसी न किसी आवश्यकता बिना नही होते हैं। कोई बुद्धिपूर्वक मनका यत्न करे,

देहका यत्न करे तो वह क्षोभपूर्वक होता है, लेकिन मलिन क्षोभको मिटाने के लिए कोई शुभ क्षोभ हो तो उस क्षोभको भला समझना।

अल्प आकुलतामें स्वस्थताका व्यवहार— जैसे किसीके १०४ डिग्री बुखार चढ़ा हो और उतरकर ९९ डिग्री रह जाए तो कहता है कि अब मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। अरे! अच्छा कहां है? वह तो १०५ डिग्री बुखारके सामने कम है। सो अपने स्वास्थ्यको अच्छा मानता है। यदि विषयकषायोंमें गया हुआ उपयोग है तो वह तो बहुत अस्वस्थताकी बात है और प्रभु या गुरु या चर्चामें लगा हुआ जो उपयोग है, वह क्या स्वस्थताकी बात नहीं है? है, किंतु परमार्थसे स्वस्थता परमार्थ प्रभु या गुरुमें उपयोग जाए वह है।

भयका मूल तृष्णा— इस जीवने अपने आपमें इस लोकका भय लगा लिया है, यह सब तृष्णाका परिणाम है। तृष्णा जगे बिना भय नहीं हो सकता। भय होता है तो समझो कि किसी न किसी प्रकारकी तृष्णा है, इस कारणसे भय होता है। इस लोकभयसे यह मनुष्य कितना ग्रस्त है? इतना तो भय पशु पक्षियोंमें भी नहीं है। पशु पक्षी निर्भय होकर यत्र-तत्र विचरते रहते हैं, उनके साथ बखेड़ा कुछ भी नहीं रहता है। परमार्थसे ऐसा नहीं कह रहे हैं, पर वर्तमान देखकर कह रहे हैं कि मनुष्यके संगमें इतना बखेड़ा लगा है कि स्वतन्त्रतासे किसी जगह भ्रमण नहीं कर सकता। किसी भी समय यह मनुष्य अपनेको अकेला नहीं अनुभव कर सकता। कितना बोझ यह मनुष्य लादे है? पैसेका बोझ है, बैंकमें हिसाब रखे हैं, दूकान करे हैं, उस पैसेकी रक्षाका बोझ लदा है, रिश्तेदारोंका बोझ है, कोई रिश्तेदार नाराज हो गया तो उसे खुश किया, उनका सम्मान किया, यह मनुष्य कितना कितना बोझ लादे है, पर पशु पक्षियोंके कुछ भी बोझ नहीं लदा है।

मनुष्यके भयकी विशेषता— भैया! भयकी भी बात देखो कि पशु पक्षियोंको कोई भय नहीं। कोई लाठी लेकर मारनेको तैयार हो या मुक्का मारे तो पशु पक्षी डरते हैं, वरना वे न डरेंगे। पर इस मनुष्यको कितना डर लगा है? सो उनकी क्या व्याख्या करें, सभी जानते हैं। यशमें फर्क पड़ जाए, किसी बातमें फर्क पड़ जाये, धनमें कमी आ जाये, इस प्रकारके कितनी तरहके भय इस मनुष्यमें लगे हैं। सो यह जीव अनेक भयोंसे दबा है। उन भयोंमेंसे एक भय इहलोकभय है।

परलोकभयका विवरण— दूसरा भय परलोकभय है।

प्रश्न— जो समझदार हैं, उन्हें ही भय लगा है परलोकका और

जो मानते ही नही, वे नास्तिक हैं। उन्हें काहेका परलोकभय ? उनके मनमे कल्पना ही नही होती कि हाय ! मै मरकर क्या बनूंगा ?

उत्तरः— जब मरणका समय आता है तब सम्भव है कि किसीको ऐसा मालूम होता हो कि हाय मै मरकर कहा जाऊं ? जो जिदगीभर परलोकको मना करता हो, प्राय. यह सम्भव है कि वह मनुष्य मरते समय परलोकके बारेमे कुछ न कुछ ख्याल करता हो और न रखता हो कुछ भी ख्याल तो भी वहां अधिक भय होता है अज्ञानके कारण। हम मर रहे है, अब क्या होगा ? अपने बारेमे कोई ख्याल, परलोक सम्बन्धी कोई ख्याल उस मनुष्यको मरते समय आ ही जाता है।

धर्मशून्य जीवन वालेका मरणकालमें शोक—जिन्होंने अपने जीवन मे धर्मकी साधना नही की, उन्हें मरते समय बहुत क्लेश होता है। यदि उजड्ड ही रहे और मर गये तो इस तरहका क्लेश हैं कि हाय मेरा घर छूटा, परिवार छूटा, स्त्री पुत्र छूटे, बस नही चलता। आखोसे दिख रहा है कि ये छूटे जा रहे है, हम मर रहें है तो उजड्ड हो तो उसके दु.ख ही रहता है और कुछ समझदारी आयी तो यह दु.ख रहता है कि हाय मैंने सारी जिदगी मान, माया लोभमे बिताया, मैंने अपना कुछ भी हित नही किया। न प्रभुभक्ति की, न अपना ध्यान बनाया, सब तरहसे उसने अपने को बरबाद किया, यों उसके क्लेश हो गया। जिसने जीवनमे धर्म नही किया, उसको मरते समय क्लेश होता है।

कृपणताकी वेदना— भैया ! जिसने अपने जीवनमे कमाई भी खूब की, दान भी खूब किया, खूब धर्मसाधना भी की, सत्सग भी किया, सर्वप्रकारसे अपने यत्नभर धर्मसाधन मे लगा, उदारतामे इसका जीवन व्यतीत हुआ मरण समयमे भी उसे शाति रहती है। ऐसे जीव जिसने न अपने लिये खाया अच्छी तरह, न कोई दान किया—ऐसे पुरुष मरते समय बहुत ही आकुलित होकर मरते हैं। कमसे कम जिसने भोग भोगा, अपने लिये खर्च किया, वह इतना तो सोचता है कि हमने कमाया है तो खर्च भी किया है, इससे कुछ संतोष होता है, किंतु उन कृपणोको जो अपने लिये खा भी नही सकते और परके लिये दे भी नहीं सकते, उन सबकी स्थिति मरनेके समयमें बडी दयनीय होती है—ऐसा कृपण का दूसरा नाम क्या है ? कजूस, सूम और मक्खीचूस।

कृपणकी प्रशंसा— कविने बताया है कि दुनियामे सबसे ऊंचा दानी पुरुष कजूस होता है। कजूसके बराबर दानी दूसरा कोई नहीं हो सकता है। अन्य लोगोंको यह कजूस पुरुष सारा का सारा धन मरणके

समय छोड़े जा रहा है जिसने कभी जरासा भी अंश दूसरोंको उसमेंसे नहीं दिया, अपने लिए खाया भी नहीं, उसे बिना छुए ही वह पूरा का पूरा धन चुकता, बिल्कुल कहो या बुलबिल कहो, मानो पूराका पूरा बिल जो बजट बना वह साराका सारा दूसरोंको दिये जाता है। तो उसके समान दाता कौन होगा, ऐसा एक कविने उसका मजाक उड़ाया है। कोई ऐसा पुरुष दानी नहीं कहला सकता है।

परलोकभय— तो इस मनुष्यको कितना भय लगा है, वह सब भय अज्ञानके और मोहके कारण है। कुछ समझदारी हुई तो उसे परलोकका भय लग जाता है। परलोकमें मेरी क्या दशा होगी? मुझे सुख, भोग मिलेंगे या नहीं, तिखंडा चौखंडा मकान मिलेगा या नहीं, उसे परलोक-चिन्तना भी बहुत बड़ा क्लेश रहता है यह भी एक भय है, कोईसा भी भय हो इस जीवको क्लेश ही पहुंचता है।

अरक्षाभयसे रहितपना— अपने आपमें रक्षा न पा सकने वाले जीवोंको एक अरक्षाका भी भय लगा है। मेरी रक्षा कैसे हो? मुझपर इतने लोग खार खाये हुए हैं, इत्यादि कितने ही विकल्प करके यह मनुष्य भय बनाता है। उन सर्वभयोंसे रहित भगवान् आप्त है।

अगुप्तिभयसे रहितपना— भगवान् सर्वज्ञदेव सर्वदोषोंसे रहित हैं, उनमें भय नामका भी दोष नहीं है। भय ७ प्रकारके हैं जिनमें ३ प्रकारके भयोंका कल वर्णन हुआ था, अब अगुप्तिभय बताते हैं। मेरी रक्षाका कोई साधन नहीं है, मेरे घर, गढ़के किवाड़ मजबूत नहीं है, सुरक्षाका साधन नहीं है, इस प्रकारका भय करना सो अगुप्तिभय है। यह भय प्रभु, अरहंतदेवके नहीं है।

मरणभयसे रहितपना— मरणभय भी आप्तदेवके नहीं है। इसके बाद कहते है आयुके क्षयका भय। आयुकर्मके क्षयका नाम निर्वाण भी है और मरण भी है। जिस आयु समाप्तिके बाद जीवन हो उसका तो नाम मरण है और जिस आयु समाप्तिके बाद जन्म न हो उसका नाम निर्वाण है। भगवान् अरहत देवका फिर जन्म नहीं होता है, इस कारण वहां मरण भय कुछ नहीं है। इन भयोंका सम्बन्ध मोहनीयके साथ है, सो मोहनीय कर्म नहीं है इस कारण मरणभय नहीं है, आयुके क्षयका भय नहीं है। प्रथम तो आयुके क्षयका नाम निर्वाण है।

आप्तके वेदनाभयका अभाव— वेदनाभय भी आप्तके नहीं होता। जो आत्मा निर्दोष हो जाता है उसका शरीर परमौदारिक हो जाता है। जीवके परिणामोंका शरीरके मिलनेके साथ निमित्त नैमित्तिक भाव भी है,

जिसका परिणाम निर्मल होता है उसे शरीर खोटा नहीं मिलता और जिसका परिणाम मलिन होता है उसका शरीर खोटा हुआ करता है। इसी आधार पर सामुद्रिक शास्त्र भी बना है, जिसके हाथ बढे बेडौल हों, रेखाएँ भी पुण्यवान् जैसी हों, तो शरीरके अंग जिसके अच्छे होते हैं उनसे अनुमान होता कि पुण्यवान है, धर्मात्मा है। तो परिणामोका शरीरके साथ सम्बन्ध भी होता है। जिस आत्मामे एक भी दोष नहीं रहा, निर्दोष हो गया, वह आत्मा जिस शरीरमे विराज रहा हो वह शरीर खोटा नहीं रह सकता। मुनि अवस्थामे कोई चोट लग गयी हो, फोड़ा फुंसी हो गयी हो तो अरहंत होनेके बाद न चोट रहती है, न फोड़ा फुंसी रहती है। वहा तो निरोग साफ स्फटिकके समान स्वच्छ परमौदारिक शरीर हो जाता है।

प्रभुकी आकस्मिक भयरहितता— आप्तदेवके आकस्मिक भय भी नही है। आकस्मिक भय उसे कहते है कि आकस्मिक कोई आपत्ति आ गयी है और उस पर डर माने, शल्य बना रहे कि हाय क्या होगा, अचानक कोई आपत्ति न आ जाय। पर भगवान्के कोई आपत्ति नही है, इसका कारण यह है कि एक तो प्रभुको तीन लोक, तीन कालके सब पदार्थ विज्ञात है। फिर उनके ज्ञानमे अकस्मात् कुछ भी न रहा। अकस्मात्की बात तो छद्मस्थ अवस्थामे होती है, जिसको कुछ पता नहीं है अपने उत्कृष्ट प्रभुका, फिर भयकी बात तो बहुत दूर है। ऐसे ७ प्रकारके भय भगवान्के नहीं होते।

भगवन्तकी विलक्षणता— भगवान् हमसे बडे और विलक्षण नहीं होते तो फिर पूजनेके लिये ही हम आप क्यो आते हैं? यदि भगवान्मे भी रागद्वेष, मोह होते तो हममे और उनमे अन्तर ही क्या था? अपने घर के परिवारके लोगोको कोई पूजता है क्या? भले ही रागमे आकर उस पूजनसे भी बहुत बढकर अनुराग करे, मगर पूजाकी जो विधि है—द्रव्य चढाना, पूजन आदि करना इस तरहसे कोई मित्रोंकी या परिजनोकी पूजा नही करता है। क्योंकि वे जानते है कि ये बड़े ही मलिन हमारी ही तरह आत्मा हैं, ऐसे ही मलिन हो गए तो हममे और उनमे विशेषता ही क्या रही? और प्रभुता भी क्या होगी? उनमे किसी भी प्रकारका भय नहीं रहा।

आप्तके रोषदोषका अभाव—रोष भी भगवान्में नहीं है। रोष कहते हैं क्रोधमे आए हुए आत्माके जो तीव्र परिणाम होता है उसको। क्रोध तो हल्के क्रोधका भी नाम है, मायने हल्का क्रोध और बड़ा क्रोध दोनोका भी नाम रोष है। कहते हैं कि हमको तो बड़ा रोष आ गया। तो रोषकी

स्थिति क्रोधसे तीव्रताको लिए हुए होती है। भगवान् सर्वज्ञदेवके रोष नामक दोष भी नहीं है।

प्रभुके रागदोषका अभाव— प्रभुके राग भी नहीं है। राग २ प्रकार के होते हैं—एक प्रशस्त राग और दूसरा अप्रशस्त राग। शुभ राग कहते हैं दान देना, शीलपालन करना, उपवास करना, गुरुजनोंकी वैयावृत्ति करना आदिक जो परिणाम हैं इनको कहते हैं शुभ राग। जो राग ऐसा पवित्र होता है कि जिसके कारण विषयकषायोंके परिणाम नहीं जगते। शुभपरिणाम, अशुभपरिणामके दूर करने का उपाय है। जहा शुभपरिणाम विराज रहा वहा अशुभपरिणाम नहीं रहता। जिसके हृदयमे प्रभुकी भक्ति रहती है उसमे विषयकषायोंका परिणाम नहीं रह सकता। विषयकषायो का परिणाम होना इस जीव पर बहुत बडी आपत्ति है। गदे परिणाम करनेसे कोई लाभ न मिलेगा। पापमय परिणाम वृत्तिसे रहना यह जीव पर बहुत बड़ी विपत्ति है। पर आज क्या अनादिसे चला ही आया है कि ससार हँस खेलकर खुशी मानकर उन विपत्तियोंमे जकड रहा है। इनके उपशमका उपाय है प्रशस्त राग। सो इन प्रशस्त रागोंमे प्रभु मौजूद नहीं है। उनके रागमल ही नहीं है।

अशुभरागका मुनि अवस्थासे ही अभाव—अशुभ राग कहते हैं स्त्री की कथा करना, अमुक स्त्री यों है, अमुक देशकी स्त्री यों हैं, राज कथा करना कि अमुक राज्य ऐसा है, वहा इस प्रकारका प्रबध है, वहा ऐसी गड़बडी है। राजावोंका या आजकल मेम्बरोंका, मिनिस्टरोंका कथन करना ये सब अशुभ राग वाली बातें हैं। जो आत्माके अपने आपमें आनेका अवसर न दे वे सब अशुभ राग हैं। चौर कथा–चोरी सम्बन्धी कथा करना अमुक जगहसे अमुक चीज ले आवो, उसको इस तरहसे बचाकर ले आवो आदि कथनी करना, उनका उपाय जानना, उनमे दिल रखना, उनकी ही बात करना, ये सब चौर कथाए हैं, अशुभ राग हैं। भोजन कथा–भोजनकी चर्चा करना, अमुक चीज ऐसी अच्छी बनी है, यों बना कर इस चीजको खायें, इस तरहसे खाने पीनेकी चीजोंकी कथनी करना ये सब कषाय भावोंमें शामिल हैं। ये सब अप्रशस्त राग हैं। इनका अभाव तो मुनि अवस्थासे ही हो जाता है। प्रभुके तो किसी भी प्रकारका राग नहीं है।

अशुभरागमे प्रकट अविवेकिता— इन विषयोंमे कुछ प्रीति करने की बातें तो दूर रहो मगर इनकी कथा भी नहीं करनी चाहिए और फिर जो बड़े पुरुष होते हैं वे बडे सतोषी होते हैं। साधुजन, त्यागीजन इन कथावों को कभी करते ही नहीं। और कथन करने लगे तो समझलो कि ये अशुभ

रागमें आ गए। किसीने कहा कि तुमने क्या खाया अजी हमने तो आज बहुत कुछ माल उड़ाया, ऐसी बातें बगराना ये सब अशुभ राग कहलाते हैं। ये सब बाते भक्त पुरुषोंमें, त्यागी पुरुषोंमे नहीं हैं। ये अशुभराग विशिष्ट त्यागी संत पुरुषोंके नहीं होते। इन विकथावोंका पालन, विकथावोंका स्वरूप या किसी प्रकारके घुल मिल करके परिणाम रहना, ये सभी बाते राग कहलाती हैं। प्रभु भगवान्के न शुभ राग है, न अशुभ राग है।

भगवानके स्वरूपका अनुमान— भगवान्के स्वरूपका कुछ अनुमान करना है तो मूर्तिसे अनुमान हो जाता है। खूब भली प्रकारसे निगाहसे देखो प्रभुमुद्रासे सभी बाते अपने आपकी ओरसे कहनेमें आने लगती हैं। शान्तमुद्रा है, रागद्वेष नहीं हैं, कहीं जानेका काम नहीं है, अपने आपमें समाये जा रहे हैं, कहीं देखनेका काम नहीं है, ऐसी बाते उस मुद्रासे मिल जाती हैं तो भगवान् प्रभु शुभ और अशुभ सर्व प्रकार के रागोंसे रहित हैं।

प्रभुके मोहदोषका अभाव— प्रभु मोहसे दूर हैं। यद्यपि मोह अशुभ ही होता है। मोहमें शुभ अशुभका भेद नहीं है, पर ऐसा जान ले कि किन्हीं आत्मावोंसे कोई स्नेह विशेष किया उसका नाम मोह है तो मुनि, आर्यिका ऋषि यति आदि ऐसे धर्मात्मा पुरुषोंमे वात्सल्य हो, प्रीति हो, उनसे सम्बन्ध हो तो यह है प्रशस्त मोह और बाकी जो परिजन है, धर्मशून्य है, दोस्त लोग हैं उनमे अनुराग करना, प्रीति बढाना, यह सब अप्रशस्त मोह है। मोह सब अप्रशस्त होते हैं, प्रशस्त नहीं होते हैं, किन्तु लोकव्यवहार की अपेक्षा प्रशस्त और अप्रशस्त मोहमे भेद किया है। किसी भी प्रकारका मोह प्रभुके नहीं होता।

प्रभुके चिन्ता दोषका अभाव— चिंता भी प्रभुके नहीं है; चिंतन कहो, चिंता कहो एक ही बात है। उस चिंतनका खोटा रूप हुआ तो उस का नाम रख दिया है चिंता और समस्त चिंतावोंका नाम चिंतन है। खोटा हो या सही हो, चिंतन कहो या ध्यान कहो इसमे धर्म्य और शुक्लरूप जो ध्यान है यह, प्रशस्त चिंतन है और आर्त व रौद्ररूप ध्यान अप्रशस्त चिंतन है। इष्टका वियोग हो जाय तो उसके चिंतनमे पड़ना यह आर्तध्यान है। अनिष्टको टालनेके लिए बड़ा चिंतन बनाए रखना, विचार बनाना आर्तध्यान है और शरीरमे कोई वेदना हो गयी, रोग बढ़ जाय, उनका ख्याल करना ये सब आर्तध्यान हैं।

निदानके आर्तध्यानपना विषयभोगोंकी वाञ्छा बनी रहना भी आर्तध्यान है। इच्छासे पीडा हुआ करती है इसलिए निदानको आर्तध्यान मे शामिल किया है। निदानको रौद्रध्यानमे नहीं लेना। कोई भोग आए,

उसकी इच्छा हुई तो इच्छाके समय मनुष्य कोई दीन हो जाता, चिंतित हो जाता और उदास हो जाता है सो निदान भी आर्तध्यान है।

रौद्रध्यान व हिंसानन्दमें रौद्रता— रौद्र ध्यान क्या है? पापमें आनन्द मानना, हिंसामें आनन्द मानना। हिंसा करते हुए खुश होना। आजकल तो जीवहिंसामें प्राय मनुष्य रंच भी नहीं हिचकते। जिसका कुल पवित्र हो, धर्म हो ऐसे कुछ विरले जीवोंको छोड़कर बाकी मनुष्योंको देखो तो जीव हिंसाका परिणमन होता है। जो मांसभक्षण करते हैं, उन्हें हिंसा करते हुए कहा संकोच हो सकता है? अपन लोग जरा धर्मात्मावोंके बीचमें अधिक रहते हैं सो ऐसा मालूम होता है कि हिंसा करने वाले और मांस खाने वाले कोई ज्यादा नहीं है, अगर गणनाका हिसाब लगावो तो ६६ प्रतिशत बैठेंगे। कुछ देश तो ऐसे हैं कि शतप्रतिशत मास खाते हैं हजारोंमें दो चार लोगोंने यदि न खाया तो वह आधा ही प्रतिशत तो कम रहा। हजारोंमें १०—५ लोग ही ऐसे हों तो हो गए ६६ प्रतिशत मासाहारी तो आजकल(तो मासभक्षणमें लोग खुश हो रहे हैं, आनन्द मनानेकी योजनादि बनाना ये सब रौद्रध्यान है।

मृषावाद, चोरी व विषयसरक्षणमें रौद्रता— खोटा बोलते हुए आनन्द माने, झूठ बोलते हुए आनन्द मान, झूठ बोलकर छका दिया या झूठ बोलकर किसी को आपत्तिमें डाल दिया। दूसरा चेतन पदार्थ तड़फ रहा है, उसकी तड़फन देखकर खुश होते रहते है। चितन--चोरीमें आनन्द मानना, विषयोंके साधनों की रक्षामें आनन्द मानना, कुशील और परिग्रह इन दोनो पापोंमें आनन्द मानना, इसका नाम है रौद्रध्यान। परिग्रहानन्द कहो, विषयसरक्षणानन्द कहो ये सब प्रभुके एक भी चितन नही है। न शुभ है और न अशुभ है।

प्रभुके जरा दोषका अभाव— प्रभुमें बुढापा भी नहीं आता। अगर कोई बूढा मुनि हो और प्राय· बूढे ही मुनि भगवान् बनाते हैं। तपस्या करे, बहुत तपस्याके बाद शुद्ध फल मिल जाय तब भगवान् बने। यह कोई नियम नहीं कह रहे हैं, ८ वर्षका बच्चा भी अरहत बन सकता है। तो बूढा मुनि भी जब प्रभु बनता है तो फिर शरीरमें बुढापा नही रहता है। उनका शरीर परमौपारिक शरीर हो जाता है युवावस्थासे सम्पन्न होता है। वैसे भी विचारो कि यदि यहा कोई बूढे भगवान् जा रहे हों, कमर टूटी हो, चल नहीं पाते हो, देखनेमें खराब लगते हो तो उनके प्रति किसी की कैसी-कैसी धारणा जगेगी? भक्ति तो तब जगेगी जब उनमें कोई चमत्कार बनेगा। भगवान्के पूर्ण निर्दोषता प्रकट हुई है, सो युवावस्थासे युक्त सुन्दर

परमौदारिक शरीर होगा उनका। मुनि अवस्थामे कोई रोग हो, टूट फूट गया हो कोई अग मुनि अवस्थामे ही ऐसी कोई भी रोग नही रहता। वहा शरीरमें किसी भी प्रकारका विकार नही रहता है। वहा तो जरा भी नही है।

जराका विवरण— जरा किसे कहते हैं? तिर्यच और मनुष्यकी अवस्था बढनेके कारण जो देहमे विकार हो जाता है, उसका नाम बुढापा है। यह बुढापा तिर्यंच और मनुष्योको ही हुआ करता है। नारकियोको बुढ़ापा नही आता और देवोको भी बुढापा नही आता। तिर्यचोको कहते है ना कि यह घोड़ा बूढ़ा हो गया, देखते ही हैं और मनुष्योको बुढापा तो सबको दिख ही रहा है। यह जरा नामका दोष भी प्रभु अरहत भगवान्मे नही होता है।

प्रभुके रोगदोपका अभाव— इसी प्रकार प्रभुमे रोग भी नहीं है। बात, पित्त, कफकी विषमता हो जानेसे जो शरीरमे विशेष पीडा होती है, उसका नाम रोग है। सब रोग वात, पित्त, कफकी विषमताके आधार पर हैं। ये रोग भी परमौदारिक शरीरमे नही हैं और प्रभुमे भी नही होते हैं।

प्रभुके मृत्युदोपका अभाव—मृत्यु भी भगवानके नही है। यह जो पर्याय है, अत्यन्त असार है, मूर्तिक है, इन्द्रियरूप है, विजातीय है अर्थात् चेतन और अचेतनके सम्बन्धसे उत्पन्न हुई है— ऐसी ये मनुष्यादिक जो व्यञ्जन पर्यायें हैं, देह पर्याय जीवसंगमसे वियुक्त हुए ना, इसका ही नाम मृत्यु है। यह दोप भी प्रभुमें नही होता।

प्रभुके स्वेददोपका अभाव— इसी तरह पसीना भी भगवान्मे नहीं है। अशुभकर्मके उदयसे जो शरीरमे परिश्रम उत्पन्न होता है, उस परिश्रम से उत्पन्न हुआ जो अपवित्र गध देने वाला, ऐसी खोटी वासना वाला जो जलबिंदुका समूह है, उसका नाम है पसीना। पसीना सभीको आता है। सो अपना अपना सब जानते हैं। क्या कोई अच्छी चीज है पसीना? अपना ही पसीना किसीको नहीं सुहाता तो दूसरेका पसीना किसीको सुहाता है क्या? तो इस शरीरके श्रम होने पर पसीना अशुभ कर्मके उदय से हुआ करता है। भगवान्के इस परमौदारिक शरीरमें पसीना नामक दोष भी नहीं है।

प्रभुके खेददोषका अभाव— खेद नामक दोष भी प्रभुमे नही है। अनिष्ट चीजके लाभका नाम खेद है। जो अपनेको इष्ट नही है और अपने पीछे पड़ गई, उस वस्तुमें खेद होता है।

प्रभुके मदनामक दोषका अभाव— प्रभुके किसी भी प्रकारका मद नहीं है। मद हुआ करता है तब जब चतुराई आए, कविता बनाना आये, सब मनुष्यके कानोंको खुश कर सके ऐसा कोई राग हो, भाषण हो, उत्तम शरीर मिला हो, उत्तम कुल मिला हो, बल मिला हो, ऐश्वर्य प्रभुता मिली हो उससे जो अहकार उत्पन्न होता है या अहकारको उत्पन्न करने वाला जो परिणाम है, उस परिणामको मद कहते हैं। देखो ना, इस ससारमें प्रायः सभीके मद पाया जा रहा है। किसीके कम किसीके ज्यादा, पर घमड बिना यहा कोई जीव नहीं मिलता है। पशु भी घमड बगराते हैं। एक पशुको दूसरा पशु मिल जाय तो बडी ऐठ करते हैं। एक बैलकी अकड़नको देखकर दूसरा पशु भी अकडने लगे तो वहां लडाई होने लगती है। बच्चोंमे भी अहकार है, मद है। किसी बच्चेको गोदमें लिए हुए खडे हों, खिला पिला रहे हों फिर भी किसी बातकी हठ करले तो गोदीसे ही कूदने लगता है और रोने लगता है क्योंकि उसे मालूम है कि हमारी बात नहीं सुनी जा रही है। या उसे गोदीसे उतार दो रोता है, वह अपमान समझता है कि मुझे नीचे उतार दिया है, बहुतसे भिखारी लोगोंको देखा होगा वे भी अपनी गोष्ठीमें कितने घमडकी बातें करते हैं ?

तो चतुराई, बल ऐश्वर्य आदिककी महत्ता मानना इन सब बातोंमें अहकार पैदा होता है। अहकार उसे होता है जो बीचकी स्थितिका है। सर्वज्ञको अहकार नहीं होता। या यो समझ लीजिए कि अधिक बुद्धि वाले को भी अहकार नहीं होता, यह नियमतः नहीं कह रहे हैं, व्यवहारसे कह रहे हैं। अहंकार वहा ही पैदा होता है जहां कुछ जानने लगे। कुछ समझने लगे किन्तु यथार्थ स्पष्ट न जाने तो प्रभु सर्वज्ञ तीन लोक तीन कालके समस्त पदार्थोंको एक साथ जानने वाले हैं। उनके ज्ञानमें कुछ भी शेष नहीं रहा। उन्हें अहंकार किस बातपर आए ? तो प्रभुके मद नामका भी दोष नहीं है।

प्रभुके रतिनामक दोषका अभाव— प्रभुके रति भी नहीं है, इष्ट वस्तुवोंसे परम प्रीतिके उत्पन्न होनेको रति कहते हैं। प्रभु सर्वज्ञके कुछ भी इष्ट या अनिष्ट नहीं है। इस तरह इस गाथामें समस्त दोषोंसे रहित प्रभुका वर्णन चल रहा है।

प्रभुके विस्मयनामक दोषका अभाव— भगवानके कोई विस्मय नहीं होता, आश्चर्य नहीं होता। आश्चर्य तब हुआ करता है जब अपने समता भावसे च्युत हो जाएँ और बाहरमें कहीं अपूर्व पदार्थ दीखे तो उससे आश्चर्य होने लगता है। पर भगवान् तो परम समतारससे पूर्ण हैं।

यहां रागद्वेषका कोई कार्य ही नहीं है और साथ ही उन्हें कोई चीज अपूर्व नहीं दिखती। जो करोड़ो खरबो वर्ष बाद बात होगी, परिणमन होगा वह उन्हें अभीसे ही ज्ञात है। तो आश्चर्य किस बातका होगा ? आश्चर्य होता है अज्ञानी पुरुषको। ज्ञानी पुरुष भी कोई आश्चर्यमें नहीं पड़ता। भले ही कदाचित् थोड़ी झलक आए पर उनके आश्चर्य यो किसी बात पर नही होता कि वे जानते हैं कि वस्तुका परिणमन इसी तरह हुआ करता है।

विस्मय करनेकी व्यर्थता-- भैया! कौनसी बात ऐसी है जो ज्ञानी के लिए आश्चर्यके लायक हो ? मान लो बडे धनका नुक्सान हो गया या कुटुम्बका बड़ा नुक्सान हो गया अथवा कुटुम्बके सब लोग गुजर गए, खाली वही एक रह गया तिस पर भी उसे आश्चर्य नही होता। वह तो जानता है कि ये सांसारिक विपत्तिया आश्चर्य चीजे नही है। रोज-रोज जीव मरते हैं, इसमे क्या आश्चर्य है, बल्कि आश्चर्य तो इस बातका है कि जो जिन्दा बने हुए है, मरनेका तो जहां चाहे ठिकाना रहा करता है। गर्भमे मर जाय, पैदा होते ही मर जाय, छोटी कुमार अवस्थामे मर जाय, रोगसे मरे, दगोसे मरे, गुण्डोकी पीडासे मरे, आगमे जलकर मरे, कदाचित् छतसे ही गिरकर मर जाय, मरनेके तो जहा चाहे अनेक आश्रय हैं, उसका क्या आश्चर्य ?

धनकी कमीमे विस्मय करनेकी व्यर्थता-- इसी प्रकार धनके नुक्सानका भी क्या आश्चर्य ? यह लक्ष्मी जब आती है तब पता ही नही पड़ता, जब जहा आनी होती है आ जाती है, पता नहीं पड़ता। व्यर्थ ही यह मनुष्य कल्पना करके लक्ष्मीकी तृष्णा करता है। उस तृष्णासे क्या लाभ है ? इस तृष्णाका फल तो आकुलता ही है। जिसका जितना उदय है उतना ही प्राप्त होता है। उदयसे अधिक किसीको भी नही प्राप्त होता है और त्याग करे, उदारता करे तो समझो कि उदयके अनुकूल उसका भरावा हो ही जाता है। उसका क्या आश्चर्य है ? क्या आया, क्या गया, क्या रहा, बड़ासे बड़ा लौकिक नुक्सान अचानक हो जाता है। किन्तु ज्ञानीको उस पर भी आश्चर्य नही होता।

पहिले से अजानकारीमे विस्मयकी सभवत.— प्रभु जो विश्वके समस्त पदार्थोंको उनके अनन्त परिणमनो सहित यथावत् जानते हैं उनको आश्चर्य क्या ? आश्चर्य तो वहा होता है जहा पूर्व बात ज्ञात न हो व अचानक जाने। जैसे किसी घरमे कोई बीमार हो, टी० बी० हो गई हो, तीन सालसे बीमारी चल रही हो और साल भरसे तो ऐसा लग रहा था कि यह तो दो ही दिनका मेहमान है। ऐसा तीन सालका रोगी, जिसको दो

वर्ष पहिलेसे ही यह जान रहे थे कि यह मरेगा जल्दी ही और वह मर भी जाय जो उस पर आश्चर्य होता है क्या घर वालोंको ? आश्चर्य नहीं होता है क्योंकि पहिलेसे ही जान रहे थे। और किसीकी अचानक ही चलते-चलते मृत्यु हो जाय, हार्टफेल हो जाय तो उसपर आश्चर्य होता है क्योंकि पहिलेसे जानाबूझा न था, अचानक जाननेमे आया इसलिए आश्चर्य होता है। भगवान सर्वज्ञदेवको अचानक कोई कुछ जाननेमे आए, ऐसा है ही नहीं। जो है वह सब जाननेमें पहले आता है।

छद्मस्थ सम्यग्दृष्टिके भी अजानकारीका अभाव— भैया ! भगवान्‌की बात तो बडी है ही, पर सम्यग्दृष्टि पुरुष भी सब बातें पहिलेसे जान रहे हैं। भले ही विवरण सहित नहीं जान रहे हैं पर जान तो रहे हैं कि सर्वपर्यायें विनाशीक हैं, जितनी भी प्रयोजनभूत बातें हो सब जान लिया। अब उसमे कोई यह कहे कि घसीटेमलके १० रुपये भी उसने जाने क्या कि जो कि उसकी जेबसे निकल जायेंगे ? अरे घसीटे-घसीटेको नहीं जाना, पर यह तो जाना कि संसार ऐसा होता है, पर्याय ऐसे मिटती है, भिन्न वस्तु यों विविक्त होती हैं। ये सब जान गया ज्ञानी जीव। ज्ञानी जीव और सर्वज्ञदेवका ज्ञान पूर्ण है। फर्क इतना है कि सर्वज्ञदेव तो प्रत्येक पर्यायों सहित स्पष्ट जानते हैं और यह ज्ञानी जीव कानून द्वारा सब जान लेता है।

आत्महितके प्रयोजनकी बात— प्रयोजनकी बात इतनी ही तो है कि पुद्गल-पुद्गल हैं, उनका परिणमन उनमें है। जीव जीव हैं, जीवके परिणमन जीवमें ही है। पुद्गलसे जीवका हित व अहित नहीं। जीवसे पुद्गलका सुधार व बिगाड नहीं। इतना जान लिया तो सब जान लिया। चाहे यहाका पुद्गल हो, चाहे अमेरिकाका पुद्गल हो, ज्ञानसे सब जान लिया। चाहे किसी जगह पुद्गल पडा हो, सामान्यतया यह तो जान लिया कि वह अजीव पदार्थ है। इसी तरह सारे विश्वको जान लिया। अब उसे भी आश्चर्य क्या ? जिसे विदित है कि सिनेमाओंमें व्यर्थकी चीजें दिखाई जाती हैं—रूप रंग, मोह, आसक्ति, प्रेम ये बातें दिखाई जाती हैं उसे सिनेमासे अरुचि है और उससे कोई कहे कि चलो जी आज सिनेमा चलें, आजका खेल बहुत बढिया है तो वह कहता है कि हमने सब देख लिया, अरे तो कहां देखा है, यह तो खेल अभी आया है। तो वह कहता है कि हमने तो सब देख लिया। फिर कहा कि अरे यह तो अभी कल ही भिण्डमें आया है, इसे कहा तुमने देखा है ? तो वह कहता है कि बस हम सब देख चुके हैं। उसमें किसी पुरुषोंकी सूरतें होंगी, स्त्रियोंकी सूरतें होंगी

स्त्रियोंकी सूरतें होंगी, वे परस्परमे वार्तालाप कर रहे होंगे, यह सब मैंने देख लिया। तो यो ही उस ज्ञानी जीवने विश्वके समस्त द्रव्योंको जान लिया।

केवल ज्ञातृत्वमे कुशलता— भैया ! जो जानने तक ही रहता है वह तो समृद्धिमें है और जो कुछ रागमे पड़ा है सो ही गिरिफ्तार होता है। यह सारा संसार अजायबघर है। अजायबघरमे दर्शकोंको सिर्फ देखनेकी इजाजत होती है छूनेकी इजाजत नही होती है। अगर कोई छूवेगा तो वह गिरफ्तार हो जायेगा। इसी तरह इस विश्वमे हम आप सब को केवल देखने तक की इजाजत है। यदि रागद्वेष करेंगे तो गिरफ्तार हो जायेंगे। हम आप गिरफ्तार होते हैं तो स्वयं ही खुशी-खुशीसे गिरफ्तार होते हैं। हम आपकी गिरफ्तारी कोई दूसरा नहीं करवा रहा है। जैसे कोई अपराधी विकट फसाव जानकर खुद ही कचेहरीमें हाजिर हो जाय कि मै ही अपराधी हू। कचेहरी जानते हो किसे कहते हैं ? कच मायने बाल, जहा बाल साफ कर दिये जाएँ उसका नाम है कचेहरी। बाल न रहने दिये जायें मायने पैसे का सफाया करा दिया जाय। बाल साफ हो जाने के मायने हैं कि पैसा साफ हो जाता है। तो इसी तरह ये ससारके जीव खुशी-खुशी गिरफ्तार हो रहे हैं। किसीसे राग किया, लो गिरफ्तार हो गए, बधनमें आ गए, अपराधी हो गए, सेवा करना होगा, अब उसके लिए वही मात्र एक प्रभु बन गया और कहीं दृष्टि ही नहीं रही। कितना बंधनमे आ गया। केवल जानने देखनेकी इजाजत है, राग करने की इजाजत नहीं है। जो भगवान्के आर्डरका उल्लघन करेगा उसे गिरिफ्तार होना होगा।

ज्ञानीकी दृष्टिमे आकस्मिक घटनाका अभाव— जो बात अपूर्व ज्ञात होती है वह विस्मयकी बात हुआ करती है। ज्ञानीको तो कुछ भी अपूर्व नहीं लगता है। ज्ञानीपुरुष कहते हैं कि जो हो सो ही भला। क्यो जी कल रंक हो जाएँ तो क्या यह भी भला ? तुम्हारा तो तुम तुम्हारे ही पास है। उसे तो कोई छीन नहीं सकता। और पहिले भी जब बडे वैभवका सेठ था तब भी अपना ही काम करते थे, परवस्तुका कुछ भी काम न करते थे। अब भी हम अपना ही काम करते हैं। सब भला ही तो है। और क्यों जी नरक जाना पडे तो यह भी भला है ? हां यह भी भला है। जो खोटे कार्य कमाये थे, पाप कमाये थे उनका निखार तो वहां हो जायेगा। तो सर्वत्र ज्ञानी जीव देखता है कि ये सब न्यायके काम हो रहे हैं। अन्याय कहीं नहीं होता है ? किसी भी वस्तुमे अन्याय नहीं है। जो जैसा करता है वैसा

भरता है।

जो होता है उसकी युक्तता— एक राजा और मंत्री जंगलमें शिकार खेलने गये सो परस्परमें बातें भी करते जायें। सो मंत्री तो शिकारकी रुचि वाला न था, पर राजाके संगमें जाना पड़ा। मंत्रीकी ऐसी आदत थी कि हर बातमें वह यही कहे कि बड़ा ही अच्छा हुआ। सो राजाने कहा पूछा कि मंत्री तुम यह बतलावो कि हमारे हाथमें छः अंगुली हैं, लोग हमको छंगा छंगा बोलते हैं तो यह कैसा हुआ? सो मंत्री बोला कि बड़ा अच्छा हुआ। राजाको गुस्सा आया कि एक तो मैं छंगा हूं, अच्छा नहीं माना जाता और यह कहता कि अच्छा हुआ। सो मंत्रीको कुवेंमें ढकेल दिया। अब वह राजा आगे बढ़ गया, सो दूसरे देशमें हो रहा था नरमेध यज्ञ। जहां एक अच्छे सुन्दर मनुष्यकी बलि देनेकी जरूरत थी। सो वहांसे चार पंडा छूटे। सो राजा सुन्दर तो था ही, उसे पकड़कर ले गए। जब होमने को १० मिनट बाकी थे तब एक पंडा उसके पास आया। उस पंडेको एक हाथमें ६ अंगुलियां दिख गयीं। बोला अरे-अरे यह तो छंगा पुरुष है इसको होमकर यज्ञ क्यों खराब करते हो? सो दो चार थप्पड़ मार कर राजा को वहांसे भगा दिया। राजा खुश होकर चला आ रहा था। यह सोचता हुआ कि मंत्री ठीक ही कहता था कि जो हुआ है सो भला। अगर मैं छंगा न होता तो आज अग्निमें होम दिया जाता। तो खुश होता हुआ वह कुवेंके पास आया मंत्रीको निकाला। सारा किस्सा कह सुनाया। कहा कि मंत्री तुम ठीक कहते थे कि छंगा हो तो ठीक है। यदि मैं छंगा न होता तो यों फंस गया था। पर मंत्री! यह तो बतावो कि तुम्हें जो कुवेंमें ढकेल दिया। सो कैसा हुआ? मंत्री कहता है कि यह भी भला हुआ। राजाने पूछा कैसे? तो मंत्री ने कहा कि महाराज यदि मैं कुवेंमें न गिर गया होता तो तुम्हारे संगमें मैं भी पकड़ा जाता, आप तो बच जाते छंगा होनेकी वजह से और मैं ही आगमें होम दिया जाता।

अन्तर भला तो सब भला— भैया! किस बातको बुरा देखते हो। सभी जगह भला ही भला है। जो होता है सो भला है। वस्तु है, वस्तुका परिणमन है। परिणमन कहां रुक जायेगा वह तो होगा ही, जैसा हो तैसा हो। क्या आश्चर्य करना? असलमें पूछो तो जैनधर्मकी अगर भक्ति है तो एक निर्णय यह करलो कि काम तो इतना ही करना है। एक आजीविका चलाना और एक आत्माका उद्धार करना। इसके अलावा कोई तीसरा भी काम करनेको है क्या? कल्याणकी, सुखकी, शांतिकी कोई तीसरी भी बात है क्या? जब दो बाते हैं तो आजीविकाका कर्तव्य तो

यो निभावो कि आजीविका करते हुएमे जितनी प्राप्ति होती है उसके ही विभाग बना लो कि इतना खर्च करना है, इतना दानके लिए निकालना है, इतना किसी अवसरके लिए सचय रखना है, उसका हिसाव बना ले और उस बजटमे जो बांटमे पडता हो उसमे गुजारा करे अन्यथा कुछ कर ही नहीं सकते। न वर्तमानमे सुख मिलेगा और न उद्धारका काम होगा। अब रही यह बात कि हम थोडेमे कैसे गुजारा करेंगे तो औरोके उदाहरण ले लो—बहुतसे लोग ऐसे हैं जो थोडेमे ही गुजारा करते हैं। अजी उनकी चल जाती होगी। हमारी तो समाजमे पोजीशन है, बड़ी धाक है। अरे तो समाजके लोग देशके लोग जो ससारके मुसाफिर हैं, मायामय है, तुम से अत्यन्त भिन्न है उनमें तुम अपनी पोजीशन मान रहे हो, यह तो अपराध कर रहे हो और यह जब अपराध कर रहे हो तो दु:खी होना प्राकृतिक बात है।

नामकी चाहका महापराध— भैया ! तुम जितना आज चाहते हो उतना भी मिल जाय तो भी सुख नही हो सकता, क्योकि यहां तुमने एक जबरदस्त अपराध किया है उस अपराधका दण्ड तो जीवन भर मिलेगा। क्या अपराध किया है ? यह अपराध किया है कि असार मायामय इस जगतमे भ्रम करके अपना नाम रखने का भाव बना रहे हो, यह महान् अपराध करते हुए तुम शांतिकी आशा रखते हो। तो शाति मिल जाय यह कभी नहीं हो सकता है। भगवान्‌का हुक्म मानते जावो तो अशातिकी शका नही है। भगवान्‌का हुक्म है कि तुम सब पदार्थोंका प्रयोजनभूत परिचय प्राप्त करो। दूसरा हुक्म यह है कि तुम गृहस्थावस्थामे हो तो अपना कर्तव्य निभावो। दुकान करते हो तो दुकान पर जावो। समय पर वहा बैठो, उद्यमका काम करलो, कोई सर्विसका काम है तो सर्विस का काम ईमानदारीसे करलो। जो जो भी आपके आजीविकाके कार्य हो उन्हें ईमानदारीसे डटकर करलो। अब उसमें ही जो कुछ आय हो उसके विभाग बनालो और अपना गुजारा करो। पैसेकी ओर दृष्टि नहीं लगाना है, क्योकि वह तो आने जाने वाली चीज है, रहने वाली चीज नही है। आखिर मरते समय तो छोडना ही पडेगा।

व्यामोहका रंग— एक भैया हमसे कह रहे थे कि ये मोही जीव जिन्दामे तो कुछ छोड नही पाते। जिन्दामें तो घर नहीं छोड सकते। हा जिसका घर छूट जाय वह बात अलग है। कैसे घर छूट गया कि कोई कमायी नही रही या घरके लोग गुजर गए, अकेले रह गए, तो वह घरका छूटना नही कहलाता। जिन्दामे तो कोई घर छोडना ही नहीं चाहता।

और मरने पर भी कोई घर छोड़ देता है क्या ? मरने पर तो घरमें जमकर पड़ रहता है, फिर तो जरासा भी नहीं हिलता। जिन्दामें तो घर छोड़कर भिन्डसे चले भी जाते हैं पर मरने पर घर नहीं छोड़ा जाता है सो अकड़कर पड़ जाते हैं। तब घर वाले लोग उसे बांधकर जबरदस्ती मरघट में डालकर फूंक आते हैं। यह एक उनकी अलंकारकी बात कही जा रही है। ज्ञानी जीवको किस बात पर आश्चर्य है ? है क्या उसके आश्चर्य करनेके लायक कोई चीज ? कुछ भी नहीं है। वह तो जानता है कि मेरा मैं हू और जो कुछ बीत रहा है उस पर भी समझ उसकी बनी रहती है। उसे किसी बात पर आश्चर्य नहीं है और जो बाहरमें बीत रही है उस पर भी उसे कुछ आपत्ति नहीं है। प्रभुमें विस्मय नामका भी दोष नहीं है।

प्रभुके जन्मनामक दोषका अभाव— प्रभुके जन्म नामका भी दोष नहीं है। यह जीव नरक तिर्यञ्च मनुष्य और देव इन चारों गतियोंमें जन्म ले लेकर इस विश्वमें भटक रहा है। इन गतियोंमें जन्म क्यों होता है, किन परिणामोंसे होता है, कैसे होता है ? इस बातको आचार्योंने स्पष्ट बताया है तीव्र अशुभ परिणाम हो तो नरक गतिमें जन्म हो, शुभ परिणाम हो तो देवगतिमें जन्म हो, मायारूप परिणाम हो तो तिर्यञ्चगतिमें जन्म हो और मिलाजुला शुभ अशुभ परिणाम हो तो मनुष्यगतिमें जन्म हो। और खुलासा सुन लो।

नरकगतिमें जन्म लेनेका उपाय— बड़ा आरम्भ परिग्रह हो, जिसे कि लोग कहते हैं बिजी है बहुत और ऐसा शब्द कहनेमें वे महत्त्व भी समझते हैं—अजी मैं बहुत बिजी हू। बहुत बिजी हू कहो या आरम्भमें लगा हू कहो, एक ही बात है। जो बहुत आरम्भ व परिग्रहमें रत है उसको नरक आयुका आश्रव होता है, नरकमें जाना पडता है। काम सब ढंगसे चल रहा है पर एक मिल और खुल जाय, और दसों जगह काम करले, तो बहुत आरभपरिग्रहवाला ऐसा व्यक्ति नरकमें ही जायेगा।

न्यायार्जित वैभवके दानका महत्त्व— कोई यह सोचे कि बहुत धन अगर जोड़ लेंगे तो बहुत दान करेंगे। तो उससे नाम होगा तो कितना ही दान कर लिया जाय पर विश्वमें नाम हो ही नहीं सकता। यह तो झूठ बात है कि विश्वभरमें नाम होगा। हा किसी गावमें नाम हो गया पर सारे विश्वमें नाम नहीं होता। और मरने के बाद यहाके नाम लेने वाले क्या मदद कर देंगे ? यह दानकी बात तो तब है कि न्यायसे काम कर रहे हैं, पुण्यका उदय फूट रहा है, तो क्या करना है ? आवश्यकतासे अधिक आ रहा हो, न्यायसे रहता हो तो इसको परोपकारमें लगावो, दान करो, पर-

सेवा करो। तो इस धन का कुछ सदुपयोग भी हुआ। और धनका सदुप योग यह नहीं है कि अनेक प्रकारकी माया, अन्याय- भाव करके धन इस लिए जोड़ा कि हम खूब दान करेंगे तो हमारा नाम होगा।

सञ्चयके पापकी दानसे शुद्धि— दान तो पापोंका प्रायश्चित्त है। इसके मायने कोई यह न समझ ले कि हम कंजूस हैं, दान नहीं देते तो हम को बड़ा अच्छा कह दिया कि दान है पापका प्रायश्चित्त। हम तो पाप नहीं कर रहे, फिर हमें दान देनेकी क्या जरूरत? अरे सभी पाप कर रहे हैं। अपनी स्वभावदृष्टिसे चिगना और परकी ओर लगना यह पाप है कि नहीं अथवा धनसचयके अनेक जरिये बनाना, हिसाब लिखना और-और बातें ये सब पाप हैं कि नहीं? पाप हैं। अपने स्वरूपसे चिगकर बाहरमें लगे तो वहा पाप ही है। पाप हमारा कैसे छूटे? इसका उपाय है दान, त्याग। तो कर्तव्य यह है कि हम न्यायपूर्वक आजीविका करें और वहा जो प्राप्त हो उसमें ही भोगके, दानके, सचयके हिस्से बनाएँ और उसके माफिक अपने कार्योंको करें। शेष समय ज्ञानार्जनमे, तत्त्वचिंतनमें, चर्चामें, परसेवामें व्यतीत करें। और वचनालाप करें तो ऐसा करे कि जिससे दूसरोंका हित हो और सबको प्रिय लगे। यही है भगवानका हुक्म। इसे मानोगे तो सुख रहेगा और इसे न मानोगे तो क्लेश ही रहेंगे।

वचनालापकी शुद्धि जीवनसुखका प्रधान कारण— भैया! जीवनको सुखी करनेके लिए यह भी एक बहुत बड़ी बात है कि हमारा वचनालाप विशुद्ध हो। लोग व्यर्थ ही अयोग्य वचनालाप करते हैं तो उससे दुखी होना पड़ता है। दूसरोंकी दृष्टिसे भी वह मनुष्य गिर जाता है, जिसका वचनालाप विशुद्ध न हो वह स्वय भी आपत्तियोंमें पड़ जाता है। यह मन मिला है, इससे ही अगर सबका भला सोच लें तो हानि ही क्या है? हमें अगर किसीसे कष्ट पहुंचता हो और हम चुपके-चुपके जान रहे हों कि इसने हमें कष्ट पहुंचाया तो आपकी दृष्टिसे वह कष्ट देने वाला पुरुष गिर गया। जहां आपने अपने भावोंको प्रदर्शित कर दिया कि मैं तो इतना स्वच्छ हू, दूध का धोया बैठा हू और मुझे अमुकने ऐसा कष्ट दिया, यह बात जब चार लोगोंको मालूम पड़ जाती है तब इसके मनमें उससे प्रतिक्रिया करनेका संकल्प हो जाता है। अमुकने कष्ट दिया ऐसा हम ही जान रहे हैं, दूसरे नहीं जान रहे हैं, चलो क्या बिगाड़ हुआ? अपना मन अपने पास है, थोड़े समयको तो अपना शुद्ध विचार बनाकर अज्ञानजन्य दुःखको दूर करलो, शांतिमें आ जाओ और जिसके निमित्तसे आज कष्ट हुआ है उससे भला बोल लो। बुरा मत बोलो। उसका विचार बदल जायेगा। फिर

तुम्हारे कष्ट करनेका निमित्त भी न बनेगा। गुपचुप अपने आपमें शुद्ध विचार बनाकर विवेकका काम करलो। वचनालाप हमारा विशुद्ध हो तो कहीं भी आपत्ति नहीं है।

विपरीतवृत्तियोंमें माध्यस्थ्यभाव— अब रही अपनी बात कि जहां दूसरे लोग विपरीत हों उनसे न राग करो न द्वेष करो, उनसे समता कर लो। बड़े आदमी अब भी ऐसे हैं और पुराने होते थे कि रास्तेमें चले जा रहे हैं, किसी गुन्डेने अपमानभरी बात बोल दिया तो सेठ जी इस ढंगसे चले जायेंगे कि मानो दुर्वचन कहने वाले की बातको उन्होंने सुना ही नहीं। ऐसे-ऐसे विवेकी पुरुष होते थे। यदि किसीके द्वारा अपने को कष्ट पहुचे तो उसका प्रथम उपाय है कि यह प्रदर्शित न करो कि मुझमें अमुकके द्वारा यह कष्ट पहुचा। यह उससे बचनेके उपायका सबसे पहला उपाय है और उसके बाद थोड़ी देरमें अपनेमें ज्ञान जगावो कि यह तो दुनिया है, अज्ञानी जन हैं, कषाय भरे प्राणी हैं, उनका ऐसा ही परिणमन होता है। उन बेचारोंका क्या दोष है? कर्मके प्रेरे हैं अपनेमे बुरे भाव न लाए और अपने दुखको अपने ज्ञानजलसे धो डालें। जहां तक हो सके प्रिय वचन बोल लो, आगे फिर कोई आपत्ति न रहेगी। अपना लोटा छान लें, अपने को क्या करना है? ऐसा निर्णय करके न्यायनीतिसे रहें इसमे भलाई है। ज्ञान करो और ज्ञानप्रकाश बढ़ाकर अपना कल्याण करो।

चारों गतियों, जन्मके कारणोका सक्षेपमे वर्णन— केवल अशुभ कर्म ही कोई करे याने बहुत आरम्भ करे, बहुत मूर्छा रखे और खूब लेश्याके परिणाम रखे ऐसे परिणामोंसे नरकगतिमें जन्म होता है और शुभ परिणाम ही केवल हो, दान, पूजा, शील, उपवास हो तो इस शुभ परिणाम के निमित्तसे ऐसे पुण्यका बध होता है जिसके विपाकमें देवगतिमें जन्म होता है। मायाचारका परिणाम रखे, छल, कपट, धोखा करे तो तिर्यञ्च-गतिमे उसका जन्म होता है, और मध्यम परिणाम रहे, कुछ शुभ हो, कुछ अशुभ हो तो उन परिणामोंके फलमे मनुष्यगतिमें जन्म होता है। ये चारों गतियोंके जन्म हेय हैं। ये दोष प्रभु अरहंत देवमे नहीं होते, परमात्मामें नहीं होते।

प्रभुके निद्रानामक दोषका अभाव— एक निद्राका दोष है। निद्रा ऐसी अवस्था है कि जहां बेहोश हो जाते हैं। यह नींद भी दोष है। जागृत दशाकी अपेक्षा निद्रामे पापकर्मका बध अधिक होता है और रातकी अपेक्षा दिनमें नींद ले तो उसमे विशेष बध कहा है। तो यह निद्रा नामक दोष भी परमात्मामें नहीं है।

प्रभुके उद्वेग नामक दोषका अभाव— उद्वेग इष्टका वियोग हो जाय तब विक्लव प्राप्त होता है उसे उद्वेग कहते हैं। सभी जानते हैं, इष्ट चीज न मिले तो उसको कितना उद्वेग हो जाता है। अन्याय करके, चोरी डकैती करके जो चीज मिल सकती है ऐसी कल्पनाकी बात आ जाय और फिर न मिले तो उसमें भी बड़ा विक्लव होता है? और न्यायसे किसी भी प्रकार जो इष्ट मिल सकता है, जिसमे इष्टपनेकी कल्पना करली गयी, वह न मिले तो उद्वेग होता है। सबसे अधिक विपत्ति जीव पर इच्छाकी ही तो है और कोई विपत्ति ही नहीं है। इच्छा है उससे ऐसा प्रसग उसे अनिष्ट लगता है जहां इच्छाका विघात होता है और दुखी होता है। विश्वमे खूब निगाह डाल लो।

तृष्णासे वर्तमान समागमके आरामका भी उच्छेद— इच्छा और तृष्णाके होने से उन करोड़ों पुरुषों पर दृष्टि नही पहुचती कि जिनसे हम अच्छे है, किन्तु जिनसे होड लगाते हैं ऐसे बडो पर दृष्टि होती है। कोई लखपति आदमी है। एक हजारका टोटा पड जाय तो ९९ हजार अभी उसके पास हैं मगर वह दु.खी रहता है। उसकी उस एक हजार पर ही दृष्टि है। वह ९९ हजारका सुख भी नहीं भोग सकता है। और कोई पुरुष जो रोज मजदूरी करता है, खोमचा लगाता है, उसका किसी तरह एक हजार रुपया जुड जाय तो वह सुख मानता है। और जिसके ९९ हजार रखे हैं वह दु खी है। जो पासमे है उसका भी सुख वह नही भोग सकता। यह हाल है इच्छा और तृष्णाके सम्बन्धसे।

इष्टवियोग होनेपर कल्पनाकी दौडमें विडम्बना— इष्टका वियोग होने पर जो विक्लवता होती है उसे उद्वेग कहते है। कभी लाख दो लाख का जब टोटा पड जाता है तो सेठ जी कोमल गद्दे पर पडे-पडे करवटे बदलते हैं, चैन नही पडती है। डाक्टर आते है, नाड़ी देखते हैं, इन्जेक्शन लगाते हैं पर वह कैसे ठीक हों? उनके तो हजार दो हजारके टोटेकी बीमारी लग गयी है। वैसे मिटे उस रुपयेकी विवलवता। यदि वह विक्लवता दूर हो जाय तो अभी बीमारी मिट जाय। ज्ञानदृष्टि यदि जगे कि क्या है? यह एक अकेला ही तो था। अकेला ही रहेगा। इसका ससार में यही मात्र है। इसका वैभव यही मात्र है। इस मुझको तो इस लोकमे कोई पहिचानने वाला भी नहीं है। किसको क्या दिखाना है? किसे क्या करना है? ज्ञान जगे और समझे कि दुर्लभ नरकाय मिली है तो एक आत्मदर्शनके लिए मिली है और बाते बेकार हैं। आता है, जाता है, रहा तो क्या, न रहा तो क्या? तब कहीं शाति मिल सकेगी।

कल्पित हानि लाभमें कल्पित हर्षविषाद— घरमें ५०–१०० तोला सोना रखा है, पहिननेके गहने हैं, उन्हें कभी बेचना नहीं है, पहिननेकी चीजें हैं पर भावमें घटाबढी हो जाय तो अपनेको गरीब या धनी मानने लगते हैं। कहीं १५० का भाव हो गया तो खुश हो रहे हैं और यदि भाव गिरकर ६० रु० में रह गया तो दु:खी हो रहे हैं, हाय मैं तो लुट गया। लो बेचैन हो रहे हैं। अरे उसमें क्या कम हो गया या क्या बढ गया, उसे तो कभी बेचना नहीं है, पहिननेकी चीजें हैं। तो ऐसे जो विह्वल भाव होते हैं उसे उद्वेग कहते हैं। इन सर्वदोषोंसे प्रभुका आत्मा अलग हो गया है, इन समस्त दोषोंसे मुक्त यह वीतराग सर्वज्ञ हैं।

दोष और ऐंठकी दोस्ती— अब देखो भैया! ऐसे दोषोंसे अपन भरे हुए हैं और ऐंठ बगरा रहे हैं सारी दुनियाकी। तनिक-तनिक सी बातोंमें लड़ाई हो जाय, अभिमानसे भरे हुए दुनिया भरकी ऐंठ बगरा रहे हैं। हम आप सभी दोषोंसे भरे हुए हैं। कोई एक दोष हो तो उसके दूर करने का यत्न करे। सर्वत्र दोष ही दोष भरे हैं। दोषोंका ही संसार है। यहां किस बातका अभिमान करना? किस पर पक्ष, किसका विरोध, किस पर अन्याय? जरा ज्ञानदृष्टि जगाओ, सर्व जीव एक स्वरूप हैं। जैसे धर्मके नाम पर बोल लें तो यह है सामायिक आदिकमें कि एकेन्द्रिय जीव क्षमा करें, दो इन्द्रिय जीव क्षमा करें, सब जीव क्षमा करें, किसीको भी मुझसे बाधा न हो—इस तरहका समताका पाठ पढ गए कि सब जीव एक समान हैं, पर इतनी भी गम न खायेंगे कि चलो जितने जो भी धर्मको पालने वाले हैं वे सब तो एक समान हैं। जो धर्मको मानते हैं उन सबमें तो कोई अन्तर नहीं है। वे धर्मके नाते से तो सब एक ही हैं। सो एक बात नहीं अनेक बातें भरी पड़ी हैं जिससे सन्मार्ग नहीं मिल पाता। जब धर्मको धारण करें, पालन करें उस समय अपनेको ऐसा बनाना चाहिए कि मेरे लिए सर्व जीव एक स्वरूप हैं।

प्रभुदर्शनमें रागकी ओटकी बाधा— भैया! तिलकी ओट पहाड़ ढकता है। तिल छोटा होता है और पहाड़ बडा होता है पर आंखके आगे तिलकी ओट आ जाय तो सारा पहाड़ ढक जाता है। इसी तरह किसी भी प्रकार का राग हो तो उस रागसे यह परमात्मा ढक जाता है। दृष्टिमें न आयेगा। कोई कहे कि हमने तो सब राग छोड़ दिये, सिर्फ स्त्री भरका राग है या एक पुत्रका राग है, और कोई राग नही है। तो वहां यह हिसाब नहीं बैठता कि सर्वजीवोंका राग नही है तो थोड़ा सम्यग्ज्ञान तो हो जाने दो। एकका राग रह गया, एक ही जीवमें तो उसकी विपरीत श्रद्धा है

बाकी जीवोंको पर मानता है सो ऐसा नहीं होता है कि तिलकी ओट पहाड़ न ढके।

प्रगतिमे दयाका महत्त्व— धर्म तो वहां होता है जहां दया होती है। स्व दया और पर दया। स्वदया निश्चयरूप है, परदया व्यवहाररूप है। परदयाकी परदयामे भी निश्चयधर्मका सम्बन्ध है, और निश्चयधर्मके रहते हुए परदयाकी योग्यता है। सम्बन्ध है इसलिए अपना जीवन, अपनी दयारूप भी बने परकी दया रूप भी बने ये सब करनेकी बातें हैं। अपने आपको थोडा कष्ट हो इसको स्वीकार करलें, परजीवोंके लिए हम कुछ काम आए, उनको शान्ति संतोषसे मार्गके लिए कुछ काम आएँ—ऐसी भावना रखनी चाहिए। कारण यह है कि हम आपकी विजय केवल भावो से है, परिणामोसे है। जैसे पशु पक्षी ये सब अकेले विचरते हैं। इसी तरह हम आप भी अपने आपमे केवल अकेले विचरते है। यहां भी अकेले हैं और कोई नहीं है। तब उत्कर्षके लिए उन्नतिके लिए अपने आपके भावों की सावधानी होना यही एक खास उपयोग है। यह तो है एक धर्मका प्रायोगिकरूप, जिसके प्रसादसे हम मार्गमें अपनी प्रगति कर सकते है और जिसका प्रारम्भ भी यहींसे होता है। दयाहीन पुरुष व्रत भी करें, तपस्या भी करे तो भी उनकी खोटी ही गति होती है।

निर्दय हृदयमे व्रतका अप्रवेश— छुवाछूत बहुत करलें, अपने सारे टाइमोको निभानेकी बड़ी फिकर रखे पर दूसरे धर्मात्माका भी करुणा न रखे। हमने तो एक घटना सुनी है कि एक साधु महाराज बीमार हो गए, उनको कै होने लगी, विकल्प होने लगा, और सगमे रहने वाले जो ब्रह्मचारी थे वे उनको न छूवे। तो एक गृहस्थने आकर सब सेवा की और पूछा कि ब्रह्मचारी जी तुम तो इनके साथ रहते हो, कमसे कम पीठमे, सिर में हाथ फेर देते, तो वे कहते है कि हमारे सामायिक का टाइम हो रहा था, यदि छू लेते तो फिर सामायिक करनेके लिए स्नान करना पड़ता। तो भाई सामायिकका टाइम निभा लो ठीक है पर जहा चित्तमे दयाभाव नहीं है, कठोरता बढ़ती जा रही है वहा सामायिक बिराजेगी कहा? और सामायिक यह नहीं देखती है कि त्यागी जी सिरसे पैर तक अच्छे धोये बैठे हैं, देवतासे बैठ जाये तो वहा सामायिक आकर बिराजेगी, ऐसा नहीं है।

निर्मोह उपयोगमें धर्मका आवास— एक बुन्देलखण्डका किस्सा है कि एक स्त्रीके बच्चा हुआ और बच्चा होते ही स्त्रीकी तबियत बहुत खराब हो गयी। सो दो ही दिनके बाद वह मरणहार हो गयी। सो पति आया

और स्त्रीके समीप खड़ा होकर जरासा रोने लगा। तो स्त्री कहती है कि अरे तुम काहे को रोते हो। हमारे मरने के बाद तुम्हारी और शादी हो जायेगी। रोवें तो ये जो दो तीन बच्चे हैं वे रोवें, पता नहीं इनका अब क्या हाल होगा ? उसे अनुराग विशेष हुआ तो प्रतिज्ञा भी कि अच्छा हम नियम लेते हैं कि दूसरी शादी न करेंगे। स्त्री बोली कि यहां तो हम हैं तुम हो और भगवान् हैं, और कोई तो साक्षी नहीं है। तुम्हारी प्रतिज्ञा अडिग है ना। पुरुष बोला कि अडिग है अब तुम क्या चाहती हो, जो चाहो सो हम करनेको तैयार हैं। तो स्त्री बोली कि अब तो यही इच्छा है कि यहांसे तुम चले जावो, मै समाधिपूर्वक मरण करूँगी। हमारे सामने न आना। वह पुरुष चला गया। उस स्त्रीने समाधिपूर्वक मरण किया। बच्चा पैदा होनेके २ दिन बाद तक बाह्यमें कुछ पवित्रता नहीं रहती होगी, मगर उसी हालतमे वह ध्यान लगाकर बैठ गयी, मनमें णमोकार मत्रका जाप किया, अन्य जगजालको त्याग दिया और प्राण छोड दिया। कोई कहे कि समाधिमरण कैसे हुआ, चार पाच दिन हो जाये बच्चा पैदा होने के तब समाधिमरण हो। अरे तो क्या समाधिमरण यह देखता है कि अभी चार पाच दिन हो जाने दे। वह तो अपने अन्तरंगमें पवित्रता लाकर अपने आत्मामें समा जानेकी बात है। पर जो कर्तव्य है वह तो अपने अवसरमें किया ही जाना चाहिए।

दयाशून्य जीवन अवनतिका स्रोत— जिसका हृदय दयासे शून्य है वह बडा व्रत करे, तप करे, सयम करे पर यदि परसेवाका भाव नहीं बन सकता, अपने ही मतलबकी फिकरमे रहे जाय अपने अपने आरामकी धुनि लगी हो, हमारे ख्यालसे वह तो त्यागी नहीं, व्रती नहीं, सयमी नहीं। हा कोई मदकषायी हो कि अपनी भी परवाह न हो, अपनी भी गरज न रहे, ऐसी हालतमें परसेवा न रहे तो दोष नहीं। पर जहा खुदगर्जीका पूरा प्रोग्राम रहता हो, विषयसाधनका अपने खानपान का और परके सम्बन्धमे दया न आती हो, सेवा न की जा सकती हो तो समझना चाहिए कि अभी योग्यता इसकी उचित नहीं हुई। यह बात दूसरी है कि नहीं है कषाय इस योग्य तो जिस योग्य हो उस योग्य बर्ताव करे। पर कोई धर्मकार्य सामने आए, कोई धार्मिकपुरुष हो, उसकी सेवा न करके केवल अपनी इच्छा मानी हुई बातोंमे लगे रहे तो उसमे अन्तरमे प्रगति नहीं है।

स्वदयाका सुफल— स्वदयाके बिना तो धर्ममे प्रारम्भ ही नहीं है। अपने आपके सहजस्वरूपका जब तक परिचय नहीं है तो शाति कहा पावोगे ? किसमे लेना है शाति, किसको देना है शाति ? उसका ही पता

न रहे और चिल्लाते रहें शांति शाति तो वह शांति कहां विराजेगी ? जैसे किसीने किसी बच्चेको बहका दिया कि देख तेरा कान कौवा लिये जा रहा है, लो अब वह कौवेके पीछे दौड लगाये जा रहा है। अरे बच्चे तू कहा दौडा जा रहा है ? तो बचा कहता है कि बोलो नही। हमारा कान कौवा लिए जा रहा है। अरे पहिले अपने कान टटोल तो ले। कान टटोला तो देखा कि अरे कान तो यहीं है, कौवा नही लिए जा रहा है। इसी प्रकार शांतिके लिए लोग बाहर-बाहर दौडते भागते रहते हैं— यहां शांति मिलेगी, वहां शाति मिलेगी, तीर्थमे शाति मिलेगी, वदनामे शाति मिलेगी, इस तरह से उस शांतिकी खोजमे बाहर-बाहर दौड़ते रहते हैं, कोई ज्ञानी पुरुष कहता है कि अरे सुनो तो सही शांति किसका नाम है और किसको देना है, उस स्थानको तो पहिले टटोल लो। शाति तो आत्माका सहजस्वरूप है।

तुच्छ लाभके मोहमे बड़ी निधिका अलाभ— भैया ! जिसे इस सहजस्वरूपका परिचय हुआ उसे शातिका मार्ग शीघ्र मिल सकता है। तो क्या उद्यम करना होगा ? इन विषयवाञ्छावोको दूर करना होगा। जैसे किसी करोड़पति सेठके नाबालिक लड़केकी जायदाद गवर्नमेन्टने कोर्ट आफ वोर्ड कर लिया है और उसके एवजमे १०००) रुपये महीना बाध दिया है। अब वह बालक सरकारके गुण गाता है। देखो कैसा घर बैठे सरकार १०००) रुपये महीना देती है। जब वह बालक २० वर्षका हो गया तब सरकारको नोटिस दे देता है कि हमे तुमसे १०००) रुपया मासिक न चाहिये। हमारी जो जायदाद कोर्ट आफ वोर्ड कर ली गई है उसे वापिस कर दिया जाय, क्योंकि अब हम बालिक हो गए है। और ऐसा न करे, १०००) रुपये मासिकका ही आदर रखे तो उसको उसकी करोड़ोंकी जायदाद कहासे मिले ?

विषयसुखके लोभमे सहजानन्दका अलाभ— इसी प्रकार इस अनन्त आनन्दकी निधि इन कर्मोंने (निमित्त दृष्टिसे) जप्त कर ली है और कर्मोंने विषय-सुखका प्रलोभन दे दिया है, जो खर्च है वह इन्द्रियोके विषयसुखोका है। सो विषय सुखका प्रलोभन मिला, तो यह नाबालिग मिथ्यादृष्टि कर्मोंके गुण गाता है, खूब साधन मिले है, खूब विषय भोग मिले हैं। और जिस दिन यह बालिग बन जाता है, ज्ञानी बन जाता है सो पुण्यसरकारको नोटिस दे देता है कि हमें ये विषयोंके सुख न चाहिये। अब मैं बालिग हो गया हूं। मुझे तो मेरा ज्ञानानन्दस्वरूप चाहिए। वह यदि विषयसुखोंके प्रलोभनमे ही रह जाय तो अनन्त आनन्द फिर कैसे मिल सकता है ? सो इन विषयसुखोंको दूर किया जायेगा तब अनन्त आनन्द प्राप्त होगा। इन्हीं

पुरुषार्थोंके बल से जो परमात्मा हुए है उनके अन्तरमें ये १८ प्रकारके दोष नहीं हैं।

आप्तकी भक्ति कृतज्ञताकी प्रेरणा— जिसमें एक भी दोष न हो और ज्ञानानन्दस्वरूपका चरम विकास हुआ हो वही हमारा देव है। जिस आत्मामे दोष एक भी न रहा हो उसके ही गुणोंका चरम विकास होता है, वही हमारा देव है, उसकी ही मात्र भक्ति हो। आप्तने हमारा बड़ा उपकार किया। क्यो ? हमे मालूम पड़ गया कि हमारा इष्ट स्वात्मगुणोपलब्धि है। यही सिद्ध है, यही निर्वाण है। ज्ञानानंद स्वरूपका लक्ष्य ही हमारा इष्ट है और इस इष्टके प्राप्त करनेका उपाय है सम्यग्ज्ञान। और सम्यग्ज्ञान मिलता है सत् शास्त्रोंसे और इन सब शास्त्रोंकी उत्पत्ति होती है आप्त भगवान्से। इस कारण ये आप्त भगवान् मेरे परम उपकारी हैं। जो सज्जन होते हैं, साधु पुरुष होते हैं वे किए गये उपकारको कभी नहीं भूलते। मेरा महान् उपकार हुआ परमआप्तदेवकी कृपासे, इस कारण हे प्रभु ! तुम्हारे गुणोंकी भक्ति मेरे हृदयमे विराजे, जिसके प्रसादसे हम अपने धर्ममे आगे प्रगति कर सकते हैं।

जिस आप्तकी श्रद्धासे सम्यक्त्व उत्पन्न होता है उस आप्तके विवरण में, अभी यह बताया गया है कि जिसमे १८ प्रकारके दोष नहीं होते हैं वे आप्तदेव हैं। ये भगवान् शत इन्द्रकर पूज्य हैं। जिनके ज्ञानका राज्य समस्त लोक अलोकमें फैला हुआ है, जिसके चार घातिया कर्म विनष्ट हो गए हैं, ऐसे ये आप्त भगवान् हम सबके उपकारके मूल कारण हैं। ऐसा आप्तदेवके सम्बन्धमें और विशेष वर्णन करने के लिए कहते हैं।

णिस्सेसदोसरहिओ केवलणाणाइपरमविभवजुदो।
सो परमप्पा उच्चइ तव्विवरीओ ण परमप्पा ॥७॥

उत्कृष्ट व्यवहारशरण भगवद्भक्ति— जो समस्त दोषोंसे रहित हैं, जिनके समस्त चारघातिया कर्म दूर हुए, जो दोषरहित है वही हम सबका आराध्य आप्तदेव है। अनादि प्रवाहसे मायामे बसे हुए हम आप लोगों को कोई शरण नहीं है। सो परमार्थकी बात तो ठीक ही है कि अपने ज्ञायकस्वरूपका आलम्बन शरण है। परन्तु जो इस स्वरूपमे स्थिर नहीं हो पाते या इस ज्ञायकस्वरूपकी पुनः पुनः दृष्टि होनेमे महीनोंका भी अन्तर आ जाता है। तो इस ज्ञायकस्वरूपके शरणमें जो नहीं ठहर पाते हैं उनको बाह्यमें शरण क्या है सो तो बतावो। यही परमात्मदेव की भक्ति ही शरण है। यह हमारी ज्ञानानन्दस्वरूपकी ज्योति दबी हुई है। इसको उघाड़नेमे समर्थ परमात्मभक्ति है। मूल उपाय मूल बात जिसके बाद फिर

सब कलाएँ आती हैं और परमार्थ शरणकी वृद्धि होती है वह है मूल भगवद्भक्ति।

निधिलाभके प्रसगमें आनन्दका उद्रेक— जैसे किसीके घरमे जमीन के नीचे गड़ी हुई निधि हो और उसे पता न हो कि हमारे घरमे निधि गड़ी है तो वह अपनेको दीन हीन मानता है और दीनतासे अपना समय गुजारता है। यदि उसे किसी प्रकार विदित हो जाय, वहियोमें लिखा हो या उसको कोई लोग पता दे दें, किसी भी प्रकार विदित हो जाय कि इस जगह पृथ्वीमे नीचे निधि गड़ी हुई है तो इतनी ही वात जानकर उसका हर्ष उछल आता है, श्रद्धा वन जाती है कि हम तो वड़े धनिक पुरुष हैं। निधि हमारे यहा पड़ी हुई है। परन्तु व्यवहारमे अभी दीनता दरिद्रता ही उसकी दिखती है पर अन्तरमे वल वढ जायेगा। यह जान लेनेसे कि इस जगह निधि गड़ी हुई है। अव वह कुदाडी लेकर जमीन खोदता है, जमीन खोदता है। जमीन खोदने पर उसे कुछ आसार नजर आते हैं तो उसे संतोष होता है और उसकी निधि जब मिल जाती है तब अपने मे विचित्र परिवर्तन करता है और अनुपम गौरव अनुभव करता है।

भगवद्भक्तिके प्रतापसे आत्मनिधिकी समृद्धि— इसी प्रकार यह आत्मज्योति इन भावकर्मो, द्रव्यकर्मो कर्मपटलोसे तिरोहित पड़ी हुई है, इस अज्ञानीको पता नही है सो अपनी दीनता और दरिद्रताका गुजारा करता है। परवस्तुवोकी ओर आकर्षित होकर दुख मानना यह दरिद्रताका गुजारा नही है तो क्या है? क्या कोई ऐश्वर्यकी वात है? ऐसी दीनता और दरिद्रताका गुजारा करने वाला यह अज्ञानी यदि किसी प्रकार जान जाय कि मेरे स्वरूपमे ही अनुपम ज्ञान और आनन्द दवा हुआ है। शास्त्रो मे वहियोमे लिखा हुआ मिल गया या किन्ही पुरुषोने वता दिया कि अमुक आत्ममहलके अन्दर यह ज्ञानानन्दकी अपूर्व निधि पड़ी हुई, थोडा विश्वास हो जाय तो इसे वहुत हर्ष उत्पन्न होता है क्योंकि दीनता दरिद्रताका भार अव उसके उपयोगसे हटता है और सर्व प्रथम ही प्रभुभक्तिरूपी कुदालीसे और उसीसे ही सम्वन्धित अपनी प्रतीति द्वारा उस भाव कर्मकी पटलको दूर करते हैं, ये रागादिक मेरे नहीं हैं। मै इन रागादिकोंमे तन्मय नहीं हो सकता। ये मुझे वरवाद करने के लिए आये हैं। मेरी प्रभुताके ये विभाव वैरी हैं। उनमे तन्मय न होऊँ, और इस ज्ञान वैराग्यसे सनी हुई प्रभुभक्ति रूप कुदालीके द्वारा खुदाईके प्रतापसे इस अरहद् भक्तिके प्रतापसे यह भाव कर्म ये आवृति जब दूर होती हैं तब ज्ञानानंद निधिका आसार मिलता है, इससे शांति होती है और विशेषकर उत्साहके साथ ज्योतिको और निकाल

लेने के लिए अन्तःप्रयत्न करते हैं। जब यह ज्ञानानन्द ज्योति अनुभवमे आती है तब आनन्दका ठिकाना नहीं रहता।

मूढ़तावश खुशी-खुशी विपद्गर्तमे पतन— हे प्रभु! परपदार्थोंकी ओर आकर्पण मेरा मत हो। जैसे जो चीज अपनेको हितकी जंचती है तो उदार पुरुष यही कहते हैं कि यह चीज सबको ही प्राप्त हो, कोई मेरा वैरी हो उसे भी प्राप्त हो। अर्थात् परम अभीष्ट वस्तुसे कोई वञ्चित न रहे। परदृष्टि करनेके बराबर, अज्ञान के बराबर कोई बैरी नहीं, कोई पाप नही। जैसे एक विवाहका दोहा बना रखा है कि—"तुलसी गाय बजायके देत काठमे पाव। फूले-फूले वे फिरैं होत हमारो व्याव।।" यह व्यवहार की बात है। यहा यह बात लगावो कि इन विषयसुखोंको पाकर, इस पुण्यके वैभवको पाकर ये अज्ञानी जीव फूले फूले फिर रहे हैं, मैं बड़ा महान् हू, मेरेको इतना वैभव मिला है, मेरी लोगोमे इतनी इज्जत है। अरे क्या फूले फूले फिरते हो, तुम हँस हँसकर विपत्तियोके गड्ढोंमे, पापो के गड्ढोमें, जन्ममरणके चक्कर लगाते रहनेकी आपत्तियोंमें खुश होकर जा रहे हो। यहा कुछ शरण नहीं है। एक भी कोई जीव आपके लिए शरण नहीं है। आपको शरण आपके ज्ञानका विधिवत् ठिकाने बना रहना बस यही एक शरण है।

व्यवहारशरणत्रय— भैया! आपने ज्ञानके ठिकानेकी स्थिति जब नहीं मिलती है तो हम किसकी छायामें जायें? तो वे छाया आपको तीन ही हैं शरणभूत। एक देव जिसका कि प्रकरण चल ही रहा है, दूसरा शास्त्र— ये भी धोखा न देंगे, ये सन्मार्ग ही बतायेंगे, और तीसरा गुरु। जो तत्त्वके जानने वाले हैं और प्राणियोके हितका भाव रखते हों उन्हें गुरु कहते हैं।

भगवान् व आप्त तथा साधु व गुरुका विश्लेषण— जैसे भगवान् और आप्त एक ही बात है, फिर भी भगवान्के कहनेमे वह बात नहीं झलकती जो आप्तके कहनेमे हमारे उपकारसे सम्बन्ध रखने वाली बात झलकती है, अर्थात जो हितोपदेशी हो, वीतराग हो, सर्वज्ञ हो वह है आप्त और जो वीतराग हो, सर्वज्ञ हो वह हैं भगवान्। सब भगवान् हितोपदेशी हुआ करते हो यह बात नहीं है। भगवान् हैं, आदर्श हैं, पर हमारे उपकारका ताता आप्तसे शुरू होता है। यद्यपि आप्त भी भगवान् हैं, भगवान् भी भगवान् हैं फिर भी उपकारका सम्बन्ध आप्तके नाते से है, भगवान्के नातेसे नहीं, आप्तपनेके नातेसे है। इसी तरह गुरुमे और मुनिमे भी भेद नहीं है। सब मुनि गुरु नहीं होते। यद्यपि गुरु भी वही, मुनि भी वही लेकिन जिसके

प्रसंगमे रहकर, जिसकी आनमे रहकर, जिसकी वैयावृत्तिमे रहकर अपने कल्याणका उद्धारका मार्ग पाये उसे कहते है गुरु, और जो विषयोंकी आशा से रहित हैं, ज्ञान, ध्यान, तपस्यामे जो लवलीन हैं वह मुनि साधु है ही। वह भी गुरु है मगर गुरुताका नाता हमारे उन मुनियोंसे होता है जिन मुनियोंके सगसे, स्मरणके सम्बन्धसे हमें हितकी प्रेरणा मिलती है। तो हम जब किसी सकटमे आ जायें तो कहा भागें? भगवान् आप्तकी स्मृतिमें, स्वाध्यायमें, सत्शास्त्रोंकी सेवामे और गुरुवोंके सत्संगमे।

कार्यपरमात्मा आप्तका निर्देश— उनमे से यह आप्तदेवका वर्णन चल रहा है। प्रभु आप्त समस्त दोषोंके ध्वस होनेसे दोषरहित है। ये १८ प्रकारके जो दोष कहे गये हैं उन महादोषोंको खण्डित करनेसे वे दोष निर्मुक्त हैं और ये देव केवलज्ञानादिक परम वैभवसे युक्त है, कैसे हैं ये केवलज्ञानादिक वैभव कि समस्त लोकोका जाननहार निर्मल केवलज्ञान, निर्मल केवल दर्शन और परमवीतरागस्वरूप आनन्दादिक अनेक वैभवोंसे समृद्ध हैं, ऐसा प्रभु कार्य परमात्मा है।

कार्यपरमात्मा होनेका साधन— कैसे हुआ है वह कार्यपरमात्मा? निज कारणपरमात्माकी निरन्तर भावनासे वह कार्यपरमात्मा हुआ। अपने स्वभावकी निरन्तर दृष्टि और भावना रहे तो यह पुरुष कार्य-परमात्मा हो सकता है। जैसी जो भावना करता है उसको वैसी ही प्राप्ति होती है।

भावनानुसार कार्य होनेका एक लोकदृष्टान्त-- एक पथिक था। गर्मीके दिनोंमे नगे पैर विना छतरीके वेचारा गरीव जा रहा था। धूपके संतापसे तप्त होकर वह विचार करता है कि मुझे कोई छायावाला वृक्ष मिल जाय तो बड़ा अच्छा हो। रास्तेके निकट एक छायावान वृक्ष मिला और वृक्षके नीचे पहुच गया। मानो वह वृक्ष था कल्पवृक्ष। पर उस पथिक को इसका पता न था। उस वृक्षके नीचे पहुंचा तो सोचता है कि छाया तो अच्छी मिल गयी, पर थोड़ी हवा चल जाती तो बड़ा आनन्द आ जाता। सोचते ही हवा चलने लगी। फिर सोचता है कि हवा तो अच्छी मिली पर थोड़ा पानी भी मिल जाता, प्यास बुझा लेते तो अच्छा होता। ऐसा सोचते ही सामने पानीसे भरा लोटा आ गया। फिर सोचा कि पानी तो आ गया, पर कुछ खानेको होता तो अच्छा होता। भोजनसे सजी सजायी थाली भी उसके सामने आ गयी। अब वह सोचता है कि यह क्या मामला है कि जो चाहो, सभी चीजें हाजिर हो जाती हैं। कहीं यहा भूत तो नहीं है। तो भूतका ख्याल कर लेने से भूत आ गया। फिर सोचता है कि यह

उपेक्षा करके परिवार जनोंको आप बचाएँ तो धनकी अपेक्षा परिवारके लोगोंकी भक्ति ज्यादा हुई और परिजन और अपनी जान—इन दोनों पर कोई आक्रमण करनेका उद्यमी हो तब परिवारको छोड़कर अपनी ही जान बचानेका उद्यम करे तो अपनी जानकी भक्ति विशेष हुई ना, परिजनकी अपेक्षा। अभी यहासे एक चूहा निकल भागे तो पासमे ही आपके दो तीन लड़के पड़े हों तो उनके ऊपर पैर रखकर आप बड़ी तेजीसे भागेंगे। चाहे लड़केके ऊपर पैर पड़ जाय। जानकी प्रियता इतनी होती है और किसी समय जान पर और ज्ञान पर दोनों पर आक्रमण हो, जैसे ज्ञानीसंतोंके किसी स्थितिमें शेर ने आकर उपद्रव किया दुश्मनने आकर आक्रमण किया तो उस स्थितिमें जानपर तो आक्रमण है ही, मगर किसी रूपसे ज्ञान पर भी आक्रमण है, क्योंकि यह घबड़ा जाने का अवसर है। ऐसी स्थिति में जानकी उपेक्षा करके ज्ञानकी कोई रक्षा कर सकता है तो समझ लो कि उसकी ज्ञानमें शक्ति है।

भक्तिकी कस— यहां कोई घर पर भी आक्रमण हो और धर्मायतन पर भी आक्रमण हो तो धर्मायतनकी उपेक्षा करके घर बचानेकी कोशिश करते हैं। तो यह धर्मायतनमे भक्ति हुई या घरमें भक्ति हुई? मुकाबलेतन दो चीजे रख लो, दोनोंका विनाश हो रहा हो। उनमें से जिस एकको बचानेकी कोशिश हो समझो कि भक्ति उसकी है। बस इस कसपर कसते जाइए कि तुममें प्रभुभक्ति विशेष है या घर परिवारमें या धनमें भक्ति विशेष है।

दृष्टिके अनुसार वृत्ति— भैया! जैसी दृष्टि होती है वैसी ही वृत्ति बनेगी। कैवल्य पाने के लिए इस निज कैवल्यकी दृष्टि होना आवश्यक है। जो त्रिकाल निरावरण है निज ज्ञानानन्द स्वभावमात्र है, ऐसा जो निज कारण परमात्मतत्त्व है उसकी भावनासे कार्यपरमात्मत्व प्रकट होता है। देखो स्वभाव यद्यपि व्यक्त नहीं है इस समय और विभाव परिणमन चल रहा है, फिर भी स्वभाव सदा निरावरण रहता है, आवरण होकर भी सदा निरावरण रहता है क्योंकि स्वभावमें भी आवरण हो जाय, स्वभावका भी कोई मोड़ बदल जाय तब फिर स्वभाव ही क्या रहा? स्वभाव तो एक शक्तिरूप है। अब शक्तिमें भी कोई बाधा आ जाय तो द्रव्य ही क्या रहा? ऐसे निज कारणपरमात्मस्वरूपकी भावनासे यह कार्यपरमात्मत्व प्रकट होता है। ऐसा यह भगवान अरहंत परमेश्वर है।

सुदेवकी भक्ति व आज्ञाकारितामें शान्तिलाभ— भगवान परमेश्वर के स्वरूपके विरुद्ध जितने परिणमन हैं उन सहित जो अन्य जीव हैं,

भूत कहीं मुझे खा न जाये, सो वह उसे खा भी गया याने जान भी ले ली। जो सोचा वही हुआ। दृष्टांतमें केवल यह जानना है कि जैसे वह कल्पवृक्षके नीचे बैठा हुआ पुरुष जो सोचता था वही होता था, इस ही प्रकार चैतन्यस्वरूपमें तन्मय यह पुरुष अथवा चेतनाको लिए हुए यह आत्मपदार्थ जैसी दृष्टि बनाता है वैसी ही बात प्राप्त करता है।

आत्मभावनानुसार आत्मपरिणमन— जो अपनेको इस संसारमें नानापर्यायों रूप अनुभव करता है वह इसी तरहका बनता चला जाता है और जो अपनेको केवल देख रहा है तो क्या उसमें कैवल्य प्रकट न होगा? होगा। केवलज्ञान कहो, कैवल्य कहो, बिल्कुल अकेला रह जाना कहो इस ही का नाम निर्वाण है। किसीके घरमें सब आदमियोंका वियोग हो जाय तो यह कहते हैं कि हाय मैं अकेला रह गया। अरे भाई तुम अकेले रह गए होते तो तीनों लोक तुम्हारे चरणोंमें झुक जाते। अभी तो अकेले कहा हो? इन अनन्त शरीर स्कंधोंका बोझ लदा है, अनन्त कार्माण वर्गणावोंका बोझ लदा है और अनन्त अनुभाग सहित असंख्यात प्रकारके इन भाव कर्मों का बोझ लदा है। अभी तो तेरे पास इतना कुटुम्ब पड़ा है और तू कहता है कि हाय मैं तो अकेला रह गया।

केवलकी पूजा— भैया! अकेला जो हो जाता है उसकी मूर्ति भी पूजी जाती है। अकेला हो जाना यही, निर्वाण है, कैवल्य है। कैवल्य कैसे प्राप्त हो? जब अपने को केवल देखना प्रारम्भ कर दे और केवलका ही आलम्बन लें तब तो कैवल्य प्राप्त होगा। उस कैवल्यकी दृष्टि भी न करे और कैवल्य रह जाय, यह कैसे हो सकता है? असली मायनेमें जैन वह है कि जिस किसी भी परिस्थितिमें रहता हो उस ही परिस्थितिमें विरक्त रहे, जो कुछ भी उस पर गुजरता हो उसमें वह वियोग बुद्धि रखे। इतनी बात यदि हो सकती है तो हम जिनभक्त होनेका दावा कर सकते हैं। प्रभुकी भक्ति यह नहीं है कि प्रभुभक्तिके लिए शाम सुबह बड़ा जलसा मनायें, बाजे बजायें, बड़ी क्रियायें करें पर हृदयसे धन वैभव लक्ष्मीका बोझ नहीं उतरता और कुटुम्ब परिवारकी ममतामें अन्तर नहीं आता तो ऐसी स्थितिमें प्रभु के भक्त तो नहीं हुए। हृदयमें जो बसा हो उसके ही भक्त हैं।

अनुरागका परीक्षण— भैया! सामने दो चीजें मुकाबलेतन आ जायें और उनमें से दोनों ही नष्ट होनेको हों तो एक छोड़कर दूसरेको बचायेंगे। तो जिसको छोड़कर जिसको ग्रहण किया उसकी ही पूजा दिल से लगी समझो। धन वैभवपर और अपने कुटुम्ब जनों पर इन दोनों पर कोई आक्रमण कर दे, विनाश करने पर उतारू हो जाय तो धन वैभवकी

उपेक्षा करके परिवार जनोको आप बचाएँ तो धनकी अपेक्षा परिवारके लोगोकी भक्ति ज्यादा हुई और परिजन और अपनी जान—इन दोनो पर कोई आक्रमण करनेका उद्यमी हो तब परिवारको छोड़कर अपनी ही जान बचानेका उद्यम करे तो अपनी जानकी भक्ति विशेप हुई ना, परिजनकी अपेक्षा। अभी यहासे एक चूहा निकल भागे तो पासमे ही आपके दो तीन लड़के पड़े हो तो उनके ऊपर पैर रखकर आप बड़ी तेजीसे भागेगे। चाहे लड़केके ऊपर पैर पड जाय। जानकी प्रियता इतनी होती है और किसी समय जान पर और ज्ञान पर दोनो पर आक्रमण हो, जैसे ज्ञानीसतोके किसी स्थितिमे शेर ने आकर उपद्रव किया, दुश्मनने आकर आक्रमण किया तो उस स्थितिमें जानपर तो आक्रमण है ही, मगर किसी रूपसे ज्ञान पर भी आक्रमण है, क्योकि वह घवड़ा जाने का अवसर है। ऐसी स्थिति मे जानकी उपेक्षा करके ज्ञानकी कोई रक्षा कर सकता है तो समझ लो कि उसकी ज्ञानमे भक्ति है।

भक्तिकी कस— यहा कोई घर पर भी आक्रमण हो और धर्मायतन पर भी आक्रमण हो तो धर्मायतनकी उपेक्षा करके घर बचानेकी कोशिश करते है। तो यह धर्मायतनमे भक्ति हुई या घरमे भक्ति हुई? मुकाबले-तन दो चीजे रख लो, दोनोका विनाश हो रहा हो। उनमें से जिस एकको बचानेकी कोशिश हो समझो कि भक्ति उसकी है। बस इस कसपर कसते जाइए कि तुममे प्रभुभक्ति विशेप है या घर परिवारमे या धनमे भक्ति विशेष है।

दृष्टिके अनुसार वृत्ति— भैया! जैसी दृष्टि होती है वैसी ही वृत्ति बनेगी। कैवल्य पाने के लिए इस निज कैवल्यकी दृष्टि होना आवश्यक है। जो त्रिकाल निरावरण है निज ज्ञानानन्द स्वभावमात्र है, ऐसा जो निज कारण परमात्मतत्त्व है उसकी भावनासे कार्यपरमात्मत्व प्रकट होता है। देखो स्वभाव यद्यपि व्यक्त नही है इस समय और विभाव परिणमन चल रहा है, फिर भी स्वभाव सदा निरावरण रहता है, आवरण होकर भी सदा निरावरण रहता है क्योकि स्वभावमे भी आवरण हो जाय, स्वभावका भी कोई मोड बदल जाय तब फिर स्वभाव ही क्या रहा? स्वभाव तो एक शक्तिरूप है। अब शक्तिमे भी कोई बाधा आ जाय तो द्रव्य ही क्या रहा? ऐसे निज कारणपरमात्मस्वरूपकी भावनासे यह कार्यपरमात्मत्व प्रकट होता है। ऐसा यह भगवान् अरहत परमेश्वर है।

सुदेवकी भक्ति व आज्ञाकारितामे शान्तिलाभ— भगवान् परमेश्वर के स्वरूपके विरुद्ध जितने परिणमन है उन करि सहित जो अन्य जीव है,

यदि वे देवत्वके अभिमानसे दग्ध हैं तो वे कुदेव शब्दसे व्यपदिष्ट होते हैं। वे ससारी जीव हैं। हम और आप भी रागी द्वेषी हैं किन्तु हम आपका नाम कुदेव नहीं है। यदि हम आप देवपनेको जाहिर करने लगें, प्रसिद्ध करने लगे और कुछ हो भी इस लायक शकलके दो चार ऐसे भक्त भी मिल जाये, जो हम आपको देव कहकर पुकारने लगे तो हम आपका भी नाम कुदेव बन जायेगा। जिनमें देवका स्वरूप तो दिखता नहीं और देवत्व को प्रसिद्ध करते हैं उन्हें कुदेव कहते हैं। वे संसारी ही तो हैं। उनकी ओर भक्ति न रखकर जो वीतराग सर्वज्ञ हितोपदेशी हैं ऐसे आप्तकी भक्ति रखो और उनके बताए हुए मार्गपर चलकर शातिलाभ लो।

निर्दोषताका शरीरपर प्रभाव— भगवानके जब तक शरीर रहता है तब तक उनके शरीरकी स्थिति सर्वोत्कृष्ट होती है। अर्थात न वहा कोई रोग है, न भूख है, न प्यास है और बहुत उत्कृष्ट कातिमान् शरीर होता है। सूर्य और चन्द्रसे भी अधिक प्रतापी शरीर बन जाता है। जो वीतराग है, निर्दोष है उनके द्वारा अधिष्ठित शरीरकी कौन प्रशंसा करे ? अभी यों ही देखो— कोई कैसा ही बीमार हो, यदि परिणामोंमें निर्दोषता जगती है तो बीमारीमे अन्तर आ जाता है। जिस किसी का बुखार मिटनेको होता है उससे पहिले उसकी सभी बातोंमे अन्तर आने लगता है। निर्मल परिणामोंका ही तो यह प्रताप है कि जीवको योग्य अच्छा शरीर मिलता है। जिसके परिणाम खोटे होते हैं उसका इस भवमें चाहे शरीर न बिगड़ पावे पर अगले भवमें बिगडा कुत्सित शरीर प्राप्त होता है। प्रभुका तेज, उनकी दृष्टि, उनका ज्ञान, उनकी ऋद्धि सुख ऐश्वर्य सब कुछ उत्कृष्ट होता है और तीन लोकमे जिसका माहात्म्य फैले ऐसा उनका प्रताप होता है।

वीतरागताका आकर्षण— प्रभु भगवान् होनेके पश्चात् हम और आप लोगोंकी तरह बीचमे बैठे हुए नहीं मिलते हैं कि कुछ भी उनसे बातें करले। वे इस पृथ्वी तलसे कितनी ही दूर ऊपर आकाशमें अधर विराजते हैं। उनका विहार होता है तो आकाशमें ही होता है। जहा वे स्थित होते हैं वहा देवेन्द्र क्षण मात्रमें विशाल रचना करा लेते हैं जिसका नाम है समवशरण। सम् अव शरण, जहा पहुचने पर जीवको भला शरण प्राप्त होता है उसे कहते हैं समवशरण। वहा मनुष्य क्या, देव क्या, तिर्यञ्च क्या, सभी समझदार विवेकी प्राणी आकर्षित होते चले आते हैं। वीतरागताका निर्दोषताका सत्य प्रभाव दूसरों पर पड़ता है, दुर्गाजियों का, विषयी कषायीका, मलिन पुरुषोंका प्रभाव दूसरो पर नहीं पड़ता। प्रभुकी वीतरागताके कारण तीनो लोकके प्राणी उनकी शरणमें आते हैं और

उनके गुणानुरागके बलसे अपने आपके भव-भवके कमाये हुए पाप धो डालते हैं।

दिव्य भाव, दिव्य प्रभाव, दिव्यदेह, दिव्य उपदेश— प्रभुका शरीर इतना स्वच्छ है कि अपनी कान्तिके द्वारा दसो दिशावोंको स्नान करा देते हैं। इतना स्वच्छ जिनका रूप है कि आकर्षक और प्रिय बनकर मनुष्योंके दिलको चुरा लेता है अर्थात् उनकी ही ओर यह मन आकृष्ट होता है। जिनका दिव्यरूप इतना पवित्र हितकारी होता है कि सुनने वालोंके मनमें मानो अमृतसा झरता हुआ अनुपम आनन्द प्रदान करता है। जिनके शरीरमें, जिनके अवयवोंमे शुभ लक्षण विराज रहे हैं ऐसी दिव्यकाय प्रभु अरहत देवकी हो जाती है। वे चाहे मुनि अवस्थामे हो, बूढ़े हो, कोई अग कुछ टूट गया हो, लचक गया हो, तकलीफ भोग चुके हो, कोढ हो, कुछ भी रोग हो, पर परमात्मत्व प्राप्त होनेके बाद वह शरीर युवावस्था सम्पन्न जैसा कान्तिमान् पुष्ट हो जाता हैं। यह भी सब उस वीतरागताका प्रताप है।

चमत्कारके मूलकी दृष्टि— जैसे मंदिरोंमे बड़ी सजावट हो, कीमती स्वर्ण रत्नोंके आभूषणोंसे बड़ी सजावटकी गयी हो तो उस सजावटको देखकर उस सजावटकी आलोचना नही करना है किन्तु वीतरागताकी ओर ध्यान देना होता है कि धन्य है वह वीतरागताकी महिमा कि वीतराग प्रभुके चरणोंमे बडे-बडे धनिक देव इन्द्र अपना सर्वस्व लगाकर ऐसी शोभा और शृङ्गार किया करते हैं। ऐसा आप्तदेवका वर्णन करके अब शास्त्रका लक्षण कहते हैं, तत्वार्थका लक्षण कहते है।

तस्स मुहग्गदवयणं पुव्वावरदोसविरहियं सुद्धं।
आगममिदि परिकहियं तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था ॥८॥

शरणभूत परमागम— आप्तदेवके मुखसे निकले हुए जो वचन हैं ध्वनि है जो गणधरदेवके द्वारा झेली जाती है, जिनके वाच्य अर्थमे पूर्वापर कोई दोष नहीं रहता है, ऐसा जो शुद्ध उपदेश है उसका नाम आगम है। उस आगमके द्वारा कहा हुआ जो कुछ तत्त्वार्थ है उसके श्रद्धानसे सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। उस परमेश्वरके मुख कमलसे निर्गत चतुरवचनों की रचनावोंका समूह जो कि पूर्वापर दोषसे रहित है वह आगम है। उस भगवान्के रागका अभाव होनेसे कोई अशुद्ध पाप क्रियाका पोषक वचन नही निकलता है किन्तु हिंसा आदिक पाप कार्योंका परिहार करते हुए शुद्ध वचन होते है और वे वचनसमूह परमागम कहलाते है। उस परमागमरूप मे अमृतको भव्यजन अपने कानोंकी अजुलिसे पीकर अपने आपमें शुद्ध-

तत्त्वका दर्शन किया करते हैं।

अमृतपान— भैया ! जैसे कहते हैं ना अमृतपान करो, वह अमृत कहासे पिया जाय ? मुँहसे पिया जाय क्या ? मुँहसे नहीं पिया जाता है। विलक्षण अमृत है। कानोंसे पिया जाता है। कोई ऐसी दवा नहीं समझना कि जैसे कोई दवा कानमें डाल देते हैं, किन्तु अमृत नाम है ज्ञानभावका। जो न मरे वह अमृत है। यदि मुखसे कोई चीज खा ली जिसे अमृत कहा करते है तो वही चीज यदि नस गयी तो वह दूसरेको क्या अमर करेगी ? अमृत नाम है ज्ञानका। जो न मरे, सतत हो उसका नाम है अमृत। मेरे लिए मेरा अमृत ज्ञानभाव है। विपत्तिया चारों ओरसे घेर रही हों उस समय जरा ज्ञानभावको सभाला कि सब विपत्तिया दूर हो जाती हैं। यह आत्मा अमर है, कभी मरता नहीं है ऐसा ज्ञान जग जाय तो यह अमर हो गया और जहा यह संशय लगा है कि कहीं मैं मर न जाऊँ तो ऐसे सशय वाला तो मरा हुआ सा ही है। ज्ञान ही परम अमृत है। जिसके ज्ञान होता है वह कहीं जाय, किसी समय हो, किन्हीं घटनावोंमे हो वह ज्ञानबलसे अपने आपमे प्रसन्न रहा करता है।

अमृतरूप हुआ ज्ञान कहते किसे हैं ? अपना ज्ञानस्वरूप अपने ज्ञानमे आए तो उस ज्ञानवृत्तिका नाम ज्ञान है, यही अमृत है और अज्ञान स्वरूपको अपने ज्ञानमे आत्मरूपसे ग्रहण करे तो उसका नाम अज्ञान भाव है। शुद्ध लौकिक ज्ञानको ही जब लक्ष्यमे लिए होते हैं तो उसकी भी बड़ी महिमा विदित होता है, फिर अलौकिक ज्ञानका तो कहना ही क्या है ?

ज्ञानबलका एक लोकदृष्टान्त— एक वृद्ध ब्राह्मण था। सो वह और उसकी बुढ़िया पत्नी, लडका और बहू—ये चारो प्राणी किसी गावको जा रहे थे। चलते-चलते एक गावसे निकले और एक मील जाकर एक जगल में से गुजरने लगे। वहा लोगोंने कहा कि आप लोग अभी लौट जाइए, एक मील पीछे गाव है, इसके बाद ६—७ मील तक गाव नहीं है, और यह एक भयानक जगल है जिसमे एक प्रेत रहता है। सो वह प्रेत पहिले प्रश्न करता है। उसका उत्तर यदि देते न बने तो वह मार डालता है। तो सबने सलाह की कि अब चल दिये तो चल दिये पीछे मुडनेका काम नहीं है। जो होगा देखा जायेगा। वे आगे बढते ही गए। [illegible]

हुए और बुड्ढेसे प्रश्न किया—एको गोत्रे, यह व्याकरणका एक सूत्र है, शब्द सिद्धिमें यह काम देता है। पर वहा तो कोई शिक्षाप्रद बात कही जाय तो योग्य उत्तर होगा। तो वह बूढा तुरन्त कविता बनाता है— 'एको गोत्रे भवति स पुमान् यः कुटुम्ब बिभर्ति।' जो सर्व कुटुम्बका भरण पोषण करना है वही कुटुम्बमे श्रेष्ठ पुरुष होता है। शिक्षारूप उत्तर सुनकर प्रेत प्रसन्न हुआ और मारना तो दूर रहा कोई आभूषण इनाममे दे गया। इसके बाद दूसरे प्रहरमे बुढिया जगी। उससे भी प्रेतने प्रश्न किया—'सर्वस्य द्वे' यह भी व्याकरणका सूत्र है। इसका भी अर्थ करना चाहिए। तो वह तुरन्त कविता बनाती है 'सर्वस्य द्वे सुमति-कुमति सपदापत्तिहेतू।' सब जीवो को ये दो बाते, कौन-कौन—सुमति और कुमति ये सम्पदा और आपदाके कारण होती है। सुमति तो सम्पदाका हेतु है और कुमति आपदाका हेतु है। ऐसे शिक्षाप्रद उत्तरको सुनकर प्रेत प्रसन्न हुआ और उसे भी कुछ इनाम दे गया। अब तीसरे प्रहरमे जगा लडका। प्रेत आया तो उससे भी प्रश्न करता है 'वृद्धो यूना' यह भी व्याकरणका एक सूत्र है। इसे भी शिक्षारूपमे लेना है। तो लडका उत्तर देता है— 'वृद्धो यूना सह परिचयात्त्यज्यते कामिनीभि' उसके उत्तरको भी सुनकर वह प्रेत इनाम दे गया। किसी स्त्रीका वृद्ध पुरुष हो तो किसी युवकसे स्नेह होने पर कामिनी उस वृद्धको त्याग देती है। अब चौथे प्रहरमे जगी वह बहु। प्रेत उसके पास आया और उससे प्रश्न किया। 'स्त्री पुंवत' यह भी एक सूत्र है। इसका भी शिक्षारूपमे उसने अर्थ लगाया। 'स्त्री पुवत प्रभवति यदा तद्धि गेहं विनष्टम्।' स्त्री जिस घरमे पुरुषकी तरह स्वच्छन्द चलाने वाली हो जाती है वह घर नष्ट हो जाता है। प्रेत इस प्रकारका उत्तर सुनकर उसे भी कुछ इनाम देकर चला गया। सुबह हुआ, चारो के चारो अपने इष्ट स्थान पर पहुच जाते हैं।

विद्याधनकी विशेषता— मनुष्यका धन एक विद्या ऐसा धन है कि जिसको परिवारके लोग बाट नही सकते, डाकू चोर चुरा नहीं सकते, गवर्नमेंएट कुछ टैक्स नहीं लगा सकती। पर और सब धन ऐसे है कि जिनका कलका भी विश्वास नही होता विद्या ही निर्बाध धन है और उन विद्यावोंमें आत्मविद्या एक ऐसी विलक्षण विद्या है कि जिसकी होड किसी भी अन्य विद्यासे नहीं हो सकती। परीक्षा हुआ करती है योग्य पुरुषोकी। अयोग्यकी परीक्षा क्या ? कष्ट आया करते है तपस्वीजन और सयमीजनो पर, असयमीके लिए कष्ट क्या? क्या असंयमियोको कष्ट नही है ? उनको जब कष्ट आते है तब एकदम बेहद ही कष्ट आते है, पर जिसे लोग मानते

है इस मनुष्य जीवनमे कष्ट वे कष्ट असयमियोंको नहीं होते। जैसे भूखे प्यासे रहना, ठंड गरमी सहना ये कष्ट असयमीजनोको कहा है ? जब भूख लगे तब खा लें, जो ओढनेको दिल चाहा ओढ लिया। तो परीक्षा तो सयमी, योग्य पुरुषोंकी ही हुआ करती है।

प्रगतिमे ही परीक्षा— यहा यह जानना है कि भाई जो आत्मविद्या मे रत होते है, जिन्हे धर्मसे प्रेम होता है, सत्य, अहिसा, अपरिग्रह जिस को प्रिय है ऐसे लोगोंकी तो आजकी दुनियामे कुछ अच्छी दशा नहीं दिखती, इन्हे आपत्ति आती है, कोई विशेष पूछता भी नहीं है, यों लोगो को आशका रहती। सो भाई यह तो एक परीक्षा है। ज्ञान हमें कितना प्रिय है, धर्म हमे कितना प्रिय है ? इसकी यह परीक्षा है। हम थोडे लाभमें आकर धर्म और ज्ञानको खो बैठे, बस यही तो परीक्षाकी बात है। इस ससारमे कौन मेरा प्रभु है, किसको क्या दिखाना है, किसकी निगाहमें हम भले बन जायें हमारा उद्धार हो जाय, ऐसा कोई लाकर खडा कर दीजिए फिर उसकी ही हम गुलामी करते रहेंगे। कोई ऐसा दूसरा नहीं है कि जिसको हम अपना समर्पण करदें, जिसकी हम शरणमे जायें तो मुझे दु ख रहित कर दे। ऐसा दुनियामे कोई दूसरा नहीं है।

अपने परिणामोके सभालकी प्रथम आवश्यकता— भैया! अपनी ही श्रद्धा, अपना ही ज्ञान, अपना ही आचरण यदि उत्तम रहता है तो समझ लीजिए कि मुझको दुखी करने वाला कोई दूसरा नहीं हो सकता है। सुखी भी वह स्वय अपने आपके उत्तम आचरणके प्रसादसे होता है। एक पुस्तक है सुशीला उपन्यास। हमने उसे पढा तो नहीं है पर कहीं थोड़ा प्रकरण देखनेमें आया कि किसी एक पुरुषसे स्त्रीने कोई दुर्भाव बताया और उसने इस प्रकार बाध्य किया कि यदि हम इच्छाकी पूर्ति न करोगे तो हम देशभरमें तुम्हारी बदनामी करेगी। उस पुरुषका उत्तर सुनिये, वह पुरुष कहता है मा दुनिया मुझे बुरा जान जाय उससे मेरेमें बुरा परिणमन नही बनेगा किन्तु मैं ही अपने का जब बुरा जानता रहूगा, मैं ही अपने ज्ञानमे बुरा बना रहूगा तो उससे मेरा अकल्याण होगा। दुनियाकी दृष्टिमे मैं बुरा भी कहलाऊ तो भी मेरा अकल्याण न होगा।

भावनानुसार सोते जागते वृत्ति— आप देखो कि जब कोई पुरुष स्वय बुरा होता है तो अपनी वृत्ति स्वयं ऐसी बनाता है कि उसकी बुराई सबके आगे स्पष्ट हो जाती है। कोशिश यह करो कि अपने भाव स्वप्नमें भी बुरे न हो सके। जागृत अवस्थाकी तो बात क्या, क्योंकि जगती हुई अवस्थामे यदि हम भले रहते हैं तो सोये हुएमें भी भली ही बात आयेगी।

जो अध्यात्मकी बात बहुत-बहुत ध्यानमें रखते हैं उनको सोते हुएमें भी अध्यात्मके ज्ञानके स्वप्न आते हैं। यह बात असम्भव नहीं है, ऐसा होता है, जिसका चित्त तृष्णामें रहता है उसको स्वप्न तृष्णाकी बातोंके आते हैं। जिसका शुद्ध ज्ञानकी चर्चामें उपयोग रहता है उसको स्वप्नमें भी शुद्ध ज्ञानका स्मरण होता है।

तृष्णावासित पुरुषका एक स्वप्न— एक पुरुष सोते हुएमें स्वप्न देखता है कि वह एक गांवमें गया, तो उस गांवमें ज्वार १) रुपयेकी मन भर बिक रही थी और उसके खुदके गांवमें २) रुपया मन थी। एक रुपया की मन भर ज्वार। ऐसे ही पुराने भाव हुआ करते थे। सो उसने सोचा कि २ मन ज्वार खरीद ले और गांवमें २० सेर बेच देंगे और २० सेर अपने खानेको बच जायेगी, सो १ मन ज्वार खरीदकर एक बोरेमें भरकर सिरपर लादे जा रहा है। स्वप्नकी यह बात है। इतने बडे बोझको लादे हुए सिरमें पीडा हो गयी। उसकी गर्दन दुखने लगी। तो उसने सोचा कि अब तो बडी मुश्किल है, सो उसमें से आधी ज्वार निकाल कर उसने फेंक दिया रास्तेमें, अब २० सेर ज्वार लिए हुए जा रहा है। उतने में भी गर्दन दुःख गयी। सोचा कि आधी ज्वार और फेंक दें, सो उसने १० सेर ज्वार और फेंक दी, अब तो १० सेर ही ज्वार उसके पास रह गई। फिर भी वह १० सेर ज्वार गर्दनको दुःख दे रही थी। सो उसमें से ५ सेर और फेंक दी, अब रह गयी ५ सेर, ५ सेर ज्वारसे भी दुःख बंद न हो तो उसने सब ज्वार बाहर फेंकदी। अब वह रीता होकर चला। फिर भी गर्दन तो दुःख ही रही थी। बादमें वह देखता है कि अभी सिरमें तो कोई दाना नहीं अटका जो कष्ट दे रहा हो, सो वह अपने सरको भी टटोलता है।

इज्जत और धनकी तृष्णामें विडम्बना— जो लोग लोभ करते हैं उनको अन्तमें कष्ट ही उठाना पड़ता है। जो अपने पोजीशनकी लालसा रखते हैं उनका भी ऐसा ही हाल होता है। एक कोई बहुत बडा पुरुष था, किसी कारणसे कुछ घाटा आ गया तो वह अपने घरका गहना गिरवी रखने लगा। वह खुद न गिरवी धरने जाय, सो किसी दूसरेके हाथसे वह गिरवी रखवाया करे। उस बडे पुरुषके दिन ऐसे आए कि वह जो गहना गिरवीमें रखदे उसे उठा न पाये। उसने जितने भी छोटे बडे आभूषण थे सब गिरवीमें रख दिये। जब कुछ न रहा और खपरोंके बिकनेका नम्बर आया तो अब जब खपरा बेचने लगा तो खपरा अपने हाथसे गिन कर देता है कि कहीं १०० के १०५ न चले जाये। सो कहां तो बडे-बड़े

गहने आभूषण दूसरों के अपने यहां गिरवी रखते थे और कहा अब खपरिया गिनने लगे। तो जहां तृष्णा होती है, चाहे धनकी हो चाहे इज्जतकी हो, तृष्णामे विवेक काम नहीं देता है।

अज्ञानीपर पर्यायतृष्णाका बडा बोझ— अज्ञानीजनोंके तो पर्याय की तृष्णा निरतर रहा करती है, मै पुष्ट हू, मै दुर्बल बन गया हू, मै सबल बन गया हू, मैं सुन्दर हू, मै कुरूप हू आदिक बातो का तो उसके उपयोग पर बोझा रूप रहा ही करता है। उसके दु खका तो ठिकाना ही क्या है?

सुन्दरताके अर्थका रहस्य— भैया! सुन्दर जानते हो किसे कहते हैं? कहते हैं ना लोग कि यह बडा सुन्दर है। सुन्दरमे तीन शब्द हैं— सु उन्द् अर। सु तो उपसर्ग है उन्द् धातु है और अर प्रत्यय लगा है। उन्द् धातुका अर्थ है जो क्लेश दे और अर लग गया कृदन्तका प्रत्यय और सु लग गया भली प्रकार। जो अच्छी तरहसे क्लेश दे उसका नाम है सुन्दर। जो अत्यन्त कष्ट दे यह है सुन्दर शब्दका अर्थ। मगर मोहीजन आसक्त हैं ना अपनी इष्ट वस्तुमे, इसलिए उन्हे सुन्दर शब्दके कहते ही बहुत अच्छा लगता है। वाह-वाह मुझे कहते हैं लोग कि तुम बडे सुन्दर हो और कहा क्या है कि तुम तडफा-तडफाकर बुरी तरहसे कष्ट देकर मारने वाले हो, पर लोग खुश खुश होते हैं कि मुझे बहुत सुन्दर कहा। सो इसका अर्थ ठीक ही है—जो सुन्दर लगता है वह दूसरेके कष्टके लिए होता है और उसका काम ही क्या है?

यह जीव अपनेको सुन्दर मानता, कुरूप मानता, निर्धन मानता धनी मानता, अनेक परिणमनोंरूप मानता है। यह इसका अज्ञान इसके समस्त कष्टोका बीज बन गया है। नहीं तो बतलावो कि किसे क्या कष्ट है? जरा अपने उस सहजस्वरूपको तको कि मै तो केवल ज्ञानज्योति। मात्र हू, बस यही पर्यायबुद्धि दुःख देती है।

आगमज्ञानका बल— आप्त आगम और तत्त्वार्थोके श्रद्धानसे सम्यक्त्व होता है। इस प्रसगमे आप्तका लक्षण तो बता चुके थे, इस गाथा मे आगम और तत्त्वार्थोंका स्वरूप कहा जा रहा है। जो आप्तदेव हैं उनके मुख कमलसे निर्गत जो दिव्यध्वनि है उससे जो गणधर देवोंने रचना की है और उसी परम्परा की जो रचना है वह परमागम कहलाता है। यदि परमागम न होता तो आज लोग कहासे वस्तुस्वरूपका अवगम पाते? परमागम भव्य जीवोंके कर्णों द्वारा पीने योग्य अमृततत्त्व है। मुक्तिका क्या स्वरूप है इसको बताने के लिए यह परमागम दर्पण है। जैसे दर्पण को देख कर बहुतसी चीजे ज्ञात करली जाती हैं, इसी तरह परमागम एक

ऐसा आइना है कि जिसके बल पर आप नरक स्वर्ग द्वीप समुद्र सब रचनाएँ ऐसी दृढतासे बोलते है जैसे मानलो आप वहींसे होकर आए हैं।

परमागमकी भक्तिसे स्पष्ट ज्ञान— कैसे नरकोंकी रचना अपन बता देते हैं कि पहिला नरक इतना लम्बा चौडा है, उसमे इतना पोल है, उसमे ऐसे नारकी रहते है और वहा तक क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव भी पहुंच सकते हैं, फिर उससे कुछ आकाश छोडकर दूसरा नरक है। कोई दूसरा यदि गलत कह दे तो बीचमें टोक देते हैं, अजी ऐसा नहीं है। तीसरे नरक तक असुरकुमारके देव जाकर खब भिडाते हैं कैसी दृढतासे सब बाते बताते जाते है, जैसे नरकसे अभी आ रहे हो और बता रहे हो और स्वर्गोंकी भी बाते खूब बताते हैं। तो यह परमागम एक ऐसा दर्पण है जिसमे पदार्थका हम आप परिज्ञान करते है।

परमागममे मुक्ति मुखविम्बका दर्शन— अथवा यह परमागम मुक्तिरूपी सुन्दरीके मुखको झलकाने वाला दर्पण है। अर्थात् जैसे कोई युवती मुख देखती है दर्पणमे तो दर्पण सामने रखती है। देखती है तो दर्पणमे भी मुख प्रतिबिम्बित हो जाता है इसी प्रकार आत्माका पूर्णस्वरूप मोक्ष किस वस्तुका नाम है, वह कहा स्थित होता है ? यह सब इस परमागम दर्पणमे देखते जावो। इस परमागमका कितना महोपकार बताएँ ? कितना ससारमे क्लेश है, मानो ससाररूपी महान समुद्रकी भवरोमे फसे हुए हम आप जीव है, इस जीवको हस्तावलम्बन देने वाला विशुद्ध परमागम है।

परमागमका निर्भ्रान्त हस्तावलम्बन-- भैया ! बड़ी-बड़ी कठिन स्थितिया आ जाती है। कुछ कठिनाई नहीं आती। कल्पनामें बना लेते हैं। जैसे मानलो किसीका कोई इष्ट गुजर गया, तो चिल्लाते, प्राण देते, कैसी भयकर स्थिति है इस ससारमे ? है नही कष्ट कुछ भी पर सब कल्पनासे कष्ट बना लिए जाते हैं। तो ऐसे महान् उपद्रवोमे भी अगर कोई शुद्ध हस्तावलम्बन देने वाला है तो यह परमागम है। और आजके जमानेमे जब कि कुछ समयका ऐसा फैर है कि गुरुजन भी ऐसे नहीं मिलते कि जिनके वचनोका तुरन्त विश्वास किया जा सके। ये ठीक कहते हैं, ये जानते है, ये निर्दोष बात बोलेगे— ऐसा विश्वास नहीं बैठ पाता। कठिन है गुरुजनोका मिलना। गुरुवोंके नाम पर बहुत मिलते हैं पर उनके वचनोका पूर्ण विश्वास हो सके, ऐसी बात आज बहुत कठिन है। कोई किसी को गलत बताता है, कोई पूर्वाचार्योंकी ही गलती बताने लगता है, कोई अपने मनगढते सिद्धान्त रचने लगता है। कोई ऐसी बात लिख देते

हैं जो शास्त्रोंमे नहीं मिलती ताकि लोगो पर प्रभाव पड़े। अब कहा विश्वास कर ? ऐसे सदेह वाले वातावरणमे यदि कोई हस्तावलम्बनकी चीज है तो यही है परमागम।

परमागमका एकमात्र शरण— आचार्योंके वचन झूठे न निकलेंगे, वे धोका न देंगे, उनका अर्थ समझ लो, श्रद्धान करो। तो आज जैसे समय मे जहा धर्मके ह्रासका समय आ रहा है तो यह परमागम ही एक हस्तावलम्बन है। हमारा कल्याण कैसे हो, ऐसा किसी की ओरसे प्रश्न आये कि इसका उपाय तो बतावो। तो आप क्या उपाय बतावेंगे ? इसका सीधा एक ही उपाय हैं कि खूब स्वाध्याय करो, ज्ञानार्जन करो तो परमागमका शरण हम आप सबके लिए महान् हस्तावलम्बन है।

बोध बिना वैराग्यकी विडम्बना— यह परमागम वैराग्य महलके शिखरका शिखामणि है। परमागमका बोध न हो तो वैराग्य भी अटपट रहता है। सिलसिलेवार ढगसे फिट बैठता ही नहीं है।

बोध बिना वैराग्यकी विडम्बनाका एक उदाहरण— एक भाई जी थे। सागरकी बात है। सो उनका यह नियम था कि हरीसाग न छौंकना, हरी साग छौंकनेका त्याग था। चक्कूसे तो काट ले, पर पतेलीमे न छौंकने का नियम था और एक दिन खाना व एक दिन न खाना, यह दूसरा नियम था। सो जिस दिन खानेकी बारी आए उस दिन सारा दिन लग जाता था। एक दिन दोपहरके १०, ११ बजे से सागभाजी बनाकर बैठे हुए सोच रहे हैं कि कोई आए तो छौंकवा ले क्योंकि उनके छौंकनेका त्याग था। इतनेमें बडे वर्णी जी पहुचे। उस समय वे ब्रह्मचारी ही थे। तो भाई जी बोले अरे पडित जी तनिक हमारा साग छौंक दो। कहा कि तुम काहे नहीं छौंकते ? भाई जी ने कहा कि हमारा छौंकनेका त्याग है। तो वर्णी जी बोले, कि हम छौंक तो देंगे पर यह कह देंगे कि इसमें जो पाप लगे वह भाई जी को लगे। कहा वाह वाह फिर छौंका ही क्या ? तो बहुत मनाया सो पडित जी साग छौंकने लगे, परन्तु छौंकते हुए वर्णी जी ने कह ही दिया कि इसका पाप भाई साहबको लगे। सो भाई जी उचक कर खडे हो गए। बोले—वाह जी तुमने तो हमारा नियम तोड़ दिया। अरे परिणाममे आया सो वह तो छौंकेकी ही तरह हो गया।

परमागमकी सेवाका प्रयोजन— भैया ! बिना ज्ञानके वैराग्यकी विडम्बना बता रहे हैं। और आगे आप देखते जावो दसों जगह ऐसी बात मिलेगी बिना ज्ञानके वैराग्य की बिडम्बना की। तो यह परमागम वैराग्यरूपी महलके शिखर पर शिखामणिकी तरह है। परमागम पढनेका प्रयोजन

है कषायोंको मिटाना। जैसे एक दोहेमे कहते है कि 'धनको पाय दान नही दीन्हा, आगम पढ नही मिटी कषाय। काय पायके व्रत नही कीन्हा, कहा किया नरभवमे आय ॥' तो परमागमके अभ्यासका प्रयोजन है कषायका मिटना। यह कषाय कैसा है? बुढिया, जवान, बच्चे, बूढे सभीमे यह कषाय भरा हुआ है। इस कषायके मिटानेका मूल उपाय है ज्ञान। और ज्ञानमे ज्ञान है वह जहां वस्तुकी स्वतत्रताका भान हो, और उस ज्ञानमे भी ज्ञान है वह जहां ज्ञान ज्ञानको ही जाननेमे लगा हो। और बाकी तो सब अज्ञानके खेल है।

अज्ञानके खेल— बडे रईस लोग अपने बास बल्लाका खेल खेले, बौल उचकानेमे लग जाये और जो गरीब आदमी है वे कबड्डी ही खेल लेगे। मगर हैं तो वे दोनों खेल ही। पुण्यवान् हो तो और तरह खेल खेले, पापवान हो तो और तरह खेल खेले, पर हैं तो सब अज्ञानके खेल। इस परमागमकी महत्ता बतायी जा रही है। जिसकी ओर आज सामूहिक रूपमे समाजकी दृष्टि नहीं है और धर्मके नाम पर ईट महल पत्थर बड़े से बडे खडे कर देगे। धर्मके नाम पर बाजे वगैरह बजवायेगे पर पूछो कि इस समारोहमे तुम्हारे ५ लाख रुपये लगे है तो परमागमकी सेवामे क्या ५ हजार भी खर्च नही कर सकते? ५ हजार तो जाने दो, ५०० का भी अनुपात नहीं मिलता। और कहीं तो ५) भी खर्च नहीं होते तो इसकी क्या वजह है कि जब आज सभीके सिद्धान्त देश विदेशमे भारी पैमाने पर और अच्छे ढंगमे दर्शकोंके हाथमे पहुच रहे है और तुम्हारा क्या हाल है? सो जरा पढ़े लिखे पुरुषोंसे जाकर पूछो कि आपके सिद्धान्तका कोई सचार है?

मुक्तिमंदिरका प्रथम सोपान परमागम— उस परमागमकी बात कही जा रही है जिसकी सेवा बडे-बडे आचार्योंने अपनी जीवन भरकी बड़ी तपस्यावोंके अनुभव करके जिन्होने ऐसा लिख दिया कि आपको बना बनाया भोजन तैयार है, फिर भी इसकी ओर दृष्टि कम है। यह परमागम निर्दोष मोक्ष महलकी पहिली सीढी है। जैसे सीढी पर चढ़े बिना महलमे नहीं पहुच सकते इसी प्रकार यदि मोक्ष महलमें पहुचना है तो सबसे पहिली सीढी परमागमका अभ्यास है। सब बाते यहासे शुरू होती है। परमागमके अभ्यास बिना आगे धर्ममे प्रगति नही होती।

रागसताप शान्तिमे परमागमका योग— यह परमागम अशुभ राग आगके अगारोसे जलते हुए जीवको मेघका काम करने वाला है। वनमें आग लग जाय तो वहा बाल्टियोसे काम न चलेगा, वहां म्युनिसिपैलिटीके

औजारोंसे काम न चलेगा, वहां तो मेघ ही बरप जाये तो आग बुझ सकती है और दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसी प्रकार कामवासना आदिक अशुभ परिणामोंसे उत्पन्न हुए अप्रशस्त रागके अंगारों द्वारा पच रहा जो यह जीवलोक है, इसके इस राग संतापको मिटानेमे समर्थ यह परमागमरूप मेघ है। इस परमागमके अभ्यास द्वारा ज्ञान बरप जाय तो ये क्लेश दूर हो सकते हैं। ऐसे इस परमागमके द्वारा कहे गये जो तत्व हैं उन्हें कहते हैं तत्त्वार्थ।

तत्त्वार्थके अवगमका लक्ष्य— तत्त्व कितने हैं जिनके जाननेसे सम्यग्ज्ञानकी दिशा मिलती है। वे तत्त्व ३ हैं, वे तत्त्व ६ हैं, ७ हैं, ६ हैं, किन्हीं भेदोंके सहारे आत्मतत्त्वका सहजस्वभाव पहिचाना जाता है और सर्वपरिज्ञानोका मर्म एक ही है कि अपने सहजस्वभावका परिचय हो जाय। तीन तत्त्व हैं, वहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा। उन्हींका ही विश्लेपण करते जाइए सब बातें आ जायेंगी, ७ तत्त्व, ६ पदार्थ सब उसमे गर्भित हो जायेगे अथवा ६ पदार्थ जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश, काल इनका वर्णन जानिए, प्रयोजनभूत सहजस्वभावका मर्म आ जायेगा। ७ तत्त्वोंका श्रद्धान तो बताया ही गया है और पुण्यपाप सहित ६ पदार्थ होते हैं। ये ही तत्त्वार्थ कहे गए हैं।

आवश्यक व्यवहार श्रद्धान— जैसा जो पदार्थ है, न उससे कम न ज्यादा, न विपरीत, जैसा है तैसा निःसदेह जानना यही है तत्त्वार्थका परिज्ञान। सो आप्त आगम और तत्त्वार्थके श्रद्धानसे सम्यक्त्व होता है। यह बात यहा बतायी जा रही है। किन्हीं शास्त्रोंमे देव, शास्त्र, गुरुके श्रद्धानकी बात कही गयी है। उससे और इससे विरोध कुछ नहीं है। आप्तमे देव आ जाते हैं और गुरु आशिक आप्त गुरु हैं और सर्व देश देव आप्त सर्वज्ञदेव हैं। शास्त्रमें आगम और तत्त्वार्थ ये दोनो गर्भित किए जाते हैं। वाचक और वाच्य। शास्त्र वाचकरूपताकी प्रमुखतासे वाच्य रूप शास्त्रमे तत्वार्थ आया, यों आप्त आगम और तत्त्वार्थका श्रद्धान करना, सो व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

परमागमकी वास्तविक भक्ति— कैसा है यह परमागम अथवा यह श्रुत ज्ञान जो परमागम निर्वाणके कारणका कारण है, मोक्षका कारण है रत्नत्रय और रत्नत्रयके पानेका कारण है परमागम। यदि यह वीर वाणीका प्रकाश न होता तो कहा ये जीव शान्ति पाया करते? कहा यह निर्वाणका मार्ग पाते? यह परमागम सदा योगी पुरुषोंके द्वारा वंदनीय है और परमागमकी वास्तविक वदना तो उसमे लिखे हुए अर्थका मनन करने

मे है और उस मनन द्वारा ऐसी प्रसन्नता पाये कि उस पर गद्गद् होकर परमोपकार सूचक अनुराग जगे। तो यही है परमागमकी वास्तविक भक्ति और केवल शास्त्रको उठाया, दो लकीर पढा, चल दिया, यह परमागमकी भक्ति नहीं है।

स्वाध्यायकी निरुद्देश्य रूढ़िसे शास्त्रकी आफत— यदि किसी मंदिरमे विना जिल्दका बिना सिया हुआ शास्त्र रखा हो तो उसकी तो आफत आ जाती है। एक महिला उस शास्त्रको धरे स्वाध्याय कर रही हो तो एकने तो नीचेसे पन्ना निकाल कर पढ लिया, किसीने बीचमे से एक पन्ना निकाल कर पढ लिया। खुले शास्त्रकी बात कह रहे हैं। तब उस शास्त्रमें पृष्ठ नम्बर भी क्रमसे नहीं रह पाते हैं। और वे शास्त्र इसी लिए हैं कि अनेक पुरुष एक शास्त्रका एक साथ स्वाध्याय करलें। तो यह परमागमकी सेवा नहीं है। विधिवत पढ़ो, विद्यार्थी बनकर पढो।

विद्यार्थी बनने मे जो वैभव भरा है उसको विद्यार्थी ही जान सकते हैं। थोडी देरको मान लो यहां क्लास लगाते होते और बूढे, जवान, बच्चे सभी अपना-अपना बस्ता ले आते, अपनी अपनी पोथी दबाकर आते, कलम, कागज, पेंसिल लेकर आते और चलते कि अब पढने जा रहे हैं तो चाहे कैसे ही बूढे हो पर एक बार तो बालकपना झलक ही जायेगा। बालक की विशेषता है निर्विकारता और कषायकी मदता। यदि अवस्थाके प्रतिकूल हो तो भी ये गुण कुछ उस क्षण आ जायेंगे। विद्यार्थी बनकर किसी गुरुके समक्ष पढो तो क्रोध कषायका तो काम रहेगा नही क्योंकि विनयपूर्वक अध्ययन करना बताया गया है। मान नही है, मायाचार नहीं है, लोभ तृष्णाका ध्यान नहीं है, एक ही लक्ष्य है कि मुझे पढ़ना है।

भावपूर्वक विद्यार्थीके बानेका असर— जैसे आजादीका सूत्र निकल गया था कि चर्खा चलावो। तो क्या चर्खा चलानेसे आजादी मिल जायेगी? अरे चर्खेकी कमाईसे आजादी नही मिलती, पर चर्खा जो चलायेगा रईश हो, बाबू हो उसके अन्दरसे रईसीकी ऐंठ तो गायब ही हो जायेगी और एक अनुभव होगा जनताकी तरफका, गरीबोकी तरफका ऐसी स्थितिसे लोगोकी बुद्धि बढ़ेगी और अक्ल ठिकाने आयेगी। फिर उससे जो योजना बन गयी उसने आजादी दिलायी। चर्खेने सीधा आजादी नही दिलायी। इसी तरह यह पढ़नेका जीवन है। कितनी ही उम्र हो जाय यदि यह भाव आ गया कि अब हमे पढ़ने जाना है सो पोथी लेकर चले, बस्ता बाध कर चले, एक दो चार साथी भी जा रहे हैं। तो जो बचपन की खेलकूद बहुत दिनोसे भूल चुके हैं उसकी कला थोड़ी तो आ ही

जायेगी। निर्विकारता और मंद कषायता तो कुछ हो ही जायेगी और फिर विनयपूर्वक क्रमसे अध्ययन करनेमे जो मार्ग मिलता है उस मार्गसे फिर शान्तिके पानेमे उसे संदेह नहीं रहता।

तत्त्वार्थपरिज्ञानसे लाभ-- इस प्रकार आगम और आगमके द्वारा कहे गए तत्त्वार्थका वर्णन इस गाथामे किया गया है और तत्त्वार्थोंमे तीन तत्त्व, ७ तत्त्व और ९ पदार्थके रूपसे प्रयोजनभूत बातें सब बतायी गयी हैं। यही सब तत्त्वभूत ६ पदार्थोंका वर्णन इस गाथामें आया है। जिस किसी भी प्रकार यह ज्ञानमे आ जाय कि मेरा परमाणुमात्र भी नहीं है, बस ज्ञानका फल पा लिया और जब तक यह समझ नहीं बैठती है तब तक समझो कि विद्या और ज्ञान उतनी ही कीमत रख रहा है जितनी कि धन और वैभव। धन वैभवसे जैसे हम लोग पोजीशन बढाते हैं, इसी तरह इस शब्दकी विद्यासे भी अपनी पोजीशन बढाते हैं। इससे अधिक अपने आपसे मौलिक कोई लाभ होता हो सो नहीं हो पाता है।

भगवती प्रज्ञाका बलप्रदान-- भैया! करनेके लिए बात तो सीधी है, कहते हुए तो बात सुगम है पर अज्ञानमे यह बात कठिन क्या असम्भव है। परिग्रहके संगमे ममताके रंगमे तेज रंगा हो उसको यह बुद्धि कहासे आये कि जरा अपने ज्ञानस्वरूपकी दृष्टि करके कुछ अपना बल तो बढा लें। कितनी ही परेशानियां हों और ऐसी कठिन परेशानियां हो जिनसे पिंड छुड़ाना कठिन हो, फिर भी इस भगवती प्रज्ञाके प्रसादसे इस ज्ञान-भावनाके प्रसादसे बीच-बीचमे ऐसा बल प्राप्त होता है कि वे परेशानियां महसूस नही होतीं। जैसे किसी की कोई चीज नष्ट हो गयी हो तो उसे समझाते हैं अपना क्या है? क्यों रोते हो? तो समझाने पर क्षणिक शांतिकी बात मनमे आती। समझाने वाले हटे कि वे ही परेशानियां फिर आ गयीं, फिर समझाने वाले मिले कि वे ही परेशानियां फिर कम हो गयीं। इसी प्रकार जैसे ही ज्ञानभावना जगी कि संकट कम हो जाते हैं, और फिर ज्ञानभावना शिथिल हुई कि संकट फिर बढ जाते हैं। तो संकटों के मिटानेका उपाय एक ज्ञानभावना ही है।

तत्त्वार्थ ६ होते हैं, उनका वर्णन अब इस ९ वीं गाथामें कहा जा रहा है।

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा य काल आगासं।
तच्चत्था इदि भणिदा णाणागुणपज्जयेहि संजुत्तो ॥९॥

अनन्त पदार्थोंमे प्रत्येक पदार्थका परिमाण-- दृश्य और अदृश्य समस्त पदार्थ ६ जातियोंमे बँटे हुए हैं। पदार्थ तो ६ नहीं होते हैं। पदार्थ

अनन्तानन्त हैं, द्रव्य अनन्तानंत है क्योंकि एक द्रव्य वह कहलाता है जो अपनेमे अपना परिणमन करता हुआ रहे, अपने से बाहर जिसका कभी परिणमन नहीं होता और अपना जितना एक परिपूर्ण प्रदेशमे परिणमन हो उसको एक कहते है। इस एक की व्याख्यासे निगाह करके देखे तो अनन्त जीव ज्ञात होते हैं। क्योंकि एकका परिणमन दूसरे जीवमे नही पहुचता है।

स्वरूपदृष्टिसे आत्माका एकत्व— जो सिद्धान्त एक ही आत्माको मानने वाला है उसके मतव्यमे यह आपत्ति आती है कि जो विचार एक आत्मामें हुआ, जो सुख या दु:ख एक आत्मामे हुआ ठीक वही परिणति समस्त आत्मावोमे हो तब तो एक कहा जायगा। जब भिन्न-भिन्न परिणमन होते है तब सबको एक कैसे कहा जा सकता है? हा स्वरूपकी दृष्टिसे एक है, अर्थात् जितने भी आत्मा हैं समस्त आत्मावोका स्वरूप एक है वे भिन्न नही है। यहा तक कि चाहे मुक्तजीव हो, चाहे सज्ञी पचेन्द्रिय हो, चाहे निगोद हो, चाहे भव्य हो अथवा अभव्य हो, समस्त जीव एक स्वरूप वाले है। स्वरूपकी दृष्टिसे किसी जीवसे किसी अन्य जीवमें कोई अन्तर नही है। ऐसे स्वरूपकी दृष्टिसे आत्मा एक है। परवस्तुकी दृष्टिसे, अर्थक्रियाकारिताकी दृष्टिसे आत्मा एक नही है किन्तु जितने आधारोमे जितने अनुभाव हैं उतने आत्मा है। इस प्रकार अनन्तानत आत्मा हुए।

दृश्यमान् अनगिनते कायिक जीव— भैया! पहिले तो जो शरीर दिख रहे है उनसे ही अंदाज करलो कितने जीव है? जहा कीडिया निकल आती हैं एक जगहमे ही हजारो चींटिया उमड़ जाती हैं। ऐसे ही सब जगह देख लो— एक-एक पेडमे असख्यात जीव है, यद्यपि मूल जीव एक है फिर भी जितने पत्ते हैं उनसे भी असख्यात गुने एक पेडमें जीव है। ऐसे सारे पेड़ देखलो। जानने वाले शरीरोको ही देख लो। कुछ परिमाण है क्या? फिर अब आगमदृष्टिसे निरखो, जितने जीव मनुष्यगतिमे हैं, उनसे असख्यातगुणे जीव देवगतिमे हैं, उनसे असंख्यातगुणे जीव नरकगतिमे हैं, उनसे असंख्यातगुणे जीव सञ्ज्ञी पचेन्द्रियमें है। जितने कि पंचेन्द्रिय व विकलत्रय हैं और उनसे भी असंख्यातगुणे जीव पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और प्रत्येक वनस्पति हैं। उनसे अनतगुणे जीव सिद्धभगवान् हैं और उनसे अनन्तगुणे जीव निगोद जीव हैं। ऐसे अनन्तानन्त सभी जीव स्वरूपदृष्टिसे एक जातिमे सम्मिलित हो जाते हैं।

जीवके पर्यायवाची शब्दोका प्रयोग— जीवका स्वरूप है शुद्ध

ज्ञायकपना स्वच्छता, प्रतिभासशक्ति। यह स्वरूप सबमें एक समान है। जीव शब्दके अनेक अर्थ हैं और उन अर्थोंसे जीवकी विशेषताएँ विदित होती हैं। जीव शब्दका अर्थ है १० प्राणों करके जो जीता है, जिया था, जीवेगा उसको जीव कहते हैं। आत्मा शब्दका अर्थ है जो निरन्तर जानता रहता है उसे आत्मा कहते हैं। ब्रह्म शब्दका अर्थ है—जो अपने गुणोंसे बढनेका स्वभाव रखता हो उसे ब्रह्म कहते हैं। चेतन शब्दका अर्थ है जो चेतना है, दर्शन ज्ञान गुणके द्वारा जो प्रतिभासता रहता है उसे चेतन कहते हैं। यहां जीव शब्दका प्रयोग किया गया है। क्योंकि पदार्थको बताना है। तो पदार्थको बताते हुएमें जितने व्यावहारिक शब्द हैं उनका प्रयोग किया जाता है।

जीव, आत्मा व ब्रह्म शब्दके विभिन्न पदोंमें प्रयोगकी उपयुक्तता— जीव शब्द आत्मा शब्दकी अपेक्षा कुछ व्यावहारिक है। यदि योग भाषा में, बुद्धिमान् लोगोंकी भाषामें जीव आत्मा और परमात्मा अथवा जीव आत्मा और ब्रह्म इन तीन शब्दोंकी मुख्यताकी दृष्टिसे प्रयोग करें तो बहिरात्माका नाम तो जीव है और अन्तरात्माका नाम आत्मा है और परमात्माका नाम ब्रह्म है। यद्यपि जीव ही सबका नाम है, आत्मा ही सबका नाम है और ब्रह्म ही सबका नाम है, फिर भी उन शब्दोंमें जो अर्थ भरा है उसकी दृष्टि प्रमुख करके विचारा जाय तो जीव शब्दका प्रयोग बहिरात्माके लिए अधिकतर होना चाहिए।

वचनव्यवहार— यह जीव संसारमें परिभ्रमण कर रहा है। ऐसा ही तो लोग बोलते हैं। ऐसा तो नहीं कहते हैं कि यह ब्रह्म संसारमें परिभ्रमण कर रहा है। यद्यपि उस ही पदार्थका नाम जीव है, उसही पदार्थका नाम ब्रह्म है फिर भी तीनों शब्दोंके बोलनेकी शैली तो देखो— यह जीव ८४ लाख योनियोंमें भ्रमण करके जन्म मरणके संकट भोग रहा है यों तो बोलेंगे, पर ऐसा बोलते हुए नहीं सुना है कि यह ब्रह्म ८४ लाख योनियोंमें भ्रमण करके दुःख भोग रहा है। इससे ज्ञात होता है कि यद्यपि ये सभी शब्द चेतन पदार्थोंके नामांतर हैं, फिर भी जो इनमें अर्थ भरा है, जो इसमें पद्धति भरी है उस दृष्टिसे बहिरात्मा के लिए तो जीव शब्दका बोलना अधिक उपयुक्त है और ज्ञानीसंत अन्य आत्मावोंके लिए आत्मा शब्दका बोलना अधिक उपयुक्त है और प्रभु मुक्त जीवोंको ब्रह्म शब्दसे बोलना अधिक उपयुक्त है। यह अन्य लोगोंकी भाषामें समन्वय करते हुए इस दृष्टिसे बताया गया है।

जीव शब्दकी व्याख्या— विभिन्न पदवियों वाली यह दृष्टि इ

गाथामें नहीं अपनायी गयी। यह तो जीव शब्दके लिए कहा गया है। जीव किसे कहते हैं? जो दश प्राणोंकरि जिया था, जी रहा व जीवेगा उसे जीव कहते हैं। प्राण १० होते हैं। ५ इन्द्रिय, ३ बल और १ स्वासोच्छ्वास और १ आयु। इन १० प्राणोंमें जो ५ इन्द्रिय प्राण हैं इनमें भावेन्द्रियकी मुख्यता है, द्रव्येन्द्रियकी मुख्यता नहीं है। तभी तेरहवें गुणस्थानमें कितने प्राण होते हैं? ऐसा प्रश्न किए जाने पर उत्तर आता है कि चार प्राण होते हैं। ५ इन्द्रिय प्राण नहीं रहे और एक मनोबल नहीं रहा तो यह भावेन्द्रियमें उपयुक्त होता है। कोई एकेन्द्रिय जीव मरकर मनुष्य होने जा रहा हो तो विग्रहगतिमें प्राण कितने होते हैं? ऐसा प्रश्न किया जाने पर उत्तर आता है कि ७ प्राण होते हैं। ५ इन्द्रिय १ आयु और १ कायबल। तो वहां इन्द्रियोंका निर्माण तो हुआ नहीं। एकेन्द्रियसे मरकर जा रहा है। मनुष्य बनेगा, वहां क्षयोपशमरूप इन्द्रियां आ गयी इसलिए पांच इन्द्रिय प्राण माने हैं। तो उसके विग्रहगतिमें ५ इन्द्रिय प्राण होते हैं अर्थात् सुननेकी शक्ति, चखनेकी शक्ति, सूंघनेकी शक्ति, देखनेकी शक्ति, भोगनेकी शक्ति, इस तरह ५ इन्द्रिय प्राण होते हैं तथा एक कायबल व १ आयु यों ७ प्राण कहे गये हैं। पांच इन्द्रिय, तीन बल, मनोबल, वचनबल, कायबल और श्वासोच्छ्वास तथा आयु तो १० प्राणों करके जो जी रहा है या जीता था उसका नाम जीव है। भगवान्के तो १० प्राण ही नहीं है। पर भगवान् भी १० प्राणों करके जीते थे तो उनका भी नाम जीव है। जीव अनन्त होते हैं।

जीव शब्दका निश्चयदृष्टिसे अर्थ— व्यवहारसे तो यह जीव १० द्रव्यप्राणोंको धारण करनेसे है, किन्तु निश्चयसे भावप्राणोंके धारण करनेसे यह जीव है। अर्थात् जो चैतन्यप्राणों करके जीवे उसका नाम जीव है। यह लक्षण सब जीवोंमें सीधा चला जाता है। और जो द्रव्य प्राणोंके धारण करनेसे जीवे उसे जीव कहते हैं। यह कथन व्यवहारदृष्टिसे है। अब इस ही जीवको कई भागोंमें बांटते चले जाइए।

तीन पद्धतियोंमें जीव तत्त्वका अवगम— कार्यशुद्ध जीव, अशुद्ध जीव और कारण शुद्ध जीव। इन तीनोंकी व्याख्या कर रहे हैं। कार्य शुद्ध जीव तो अरहत सिद्ध हैं। केवल ज्ञानादिक शुद्ध गुणोंके जो आधारभूत हैं उनको शुद्ध कार्यजीव कहा जाता है। यह निश्चयनयसे नहीं कहा जा रहा है, व्यवहारसे कहा जा रहा है, किन्तु यह व्यवहार शुद्ध सद्भूत है। जैसा व्यक्त है और पवित्र शुद्ध है, वैसी बात कही जा रही है और वही जीव।

जीवकी अवस्थायें— जो अशुद्ध जीव है वह अशुद्ध जीव कहलाता है अर्थात् जो विभाव परिणमन वाला है, विभावसे परिणत है, मति ज्ञानादिकके जो आधार हैं उनको अशुद्ध जीव कहते हैं। रागद्वेष मोह सभी ले लो, यह अशुद्ध सद्भूत व्यवहारसे है। परिणमन सब जीवोंके है। चाहे सम्यग्दृष्टि जीवके रागादिक हों तो भी राग परिणमन जीवके ही हैं, पुद्गल की अवस्थाएँ नहीं हैं। और चाहे मिथ्यात्व दशामें हो तो भी वे परिणमन जीवके ही हैं पुद्गलके नहीं होते हैं।

कारणशुद्ध जीव— ज्ञानी व अज्ञानीमें अन्तर यह हो जाता है कि अज्ञान दशामें तो विभावका परिणमन भी है व उनका उपयोगसे कर्ता भी है। किन्तु ज्ञानी छद्मस्थ पुरुषकी हालत उसमें एक अलगकी रह गयी। अर्थात परिणमन तो वहां विभावोंका होना है, पर उपयोगसे कर्ता नहीं रहा और वीतराग प्रभुमें न परिणमन ही है और न कर्तृत्व ही है। पर जहां भी विभावरूप यह परिणमन है रागादिकका वह जीवके ही गुणोंका विभाव परिणमन है, वह अशुद्ध है किन्तु सद्भूत है। अशुद्ध सद्भूत व्यवहारसे यह अशुद्ध जीव है, और शुद्धसद्भूत व्यवहारसे कारणशुद्ध जीव है।

कारणशुद्ध जीव कौन है जो ज्ञानादिक परम स्वभावरूप गुणोंका आधारभूत है वह कारणशुद्ध जीव है। यह शुद्ध निश्चयसे कहा जा रहा है अर्थात किसी अन्यकी अपेक्षा न रखकर केवल जीवके अन्तस्तत्त्वको निरखकर कहा जा रहा है। यह अनादि अनन्त अहेतुक सहज स्वभावरूप कारण शुद्ध जीव है।

चेतनके गुण— यह जीव चेतन है और इसके चेतन गुण है। चेतनके गुण चेतन होते हैं लेकिन अर्थपरत्व दृष्टिसे देखा जाय तो इस जीवमें चेतने वाले गुण दो ही हैं—ज्ञान और दर्शन। बाकी श्रद्धा, आनन्द अस्तित्वादिक साधारण गुण अमूर्तता सूक्ष्मता आदि ये सब अचेतनगुण हैं अर्थात् ये चेतते नहीं है, किन्तु इन चेतन पदार्थोंका असाधारण गुण चेतन है ज्ञान दर्शन है, इसलिए बाकी सब गुण इन असाधारण गुणके ही मानों रक्षक हैं, इसमें ही तन्मय हैं सो जो असाधारण गुणमें तन्मय है, असाधारण गुणवानके साथ तन्मय हैं वे सब चेतन गुण ही कहलाए।

चेतनके असाधारण गुणकी रक्षासूचक गुण— अथवा इस दृष्टिसे देखो। जीवका जो चैतन्यगुण है उस चैतन्य गुणकी रक्षा करनेके लिए ही अन्य सब साधारण और असाधारण गुण हैं। कैसे कि इस जीवमें सूक्ष्मत्व गुण नहीं होता तो ज्ञान दर्शनका रूप ही क्या बनता? जीवके रूप, रस, गंध स्पर्शता होती, तो क्या यह जानने देखनेका काम कर सकता था?

नहीं। इसी प्रकार सब गुणोंकी बात देखते जायें तो सब गुण इस चेतनके चेतन हैं। यह अमूर्त है, रूप, रस, गंध, स्पर्शसे रहित है और इसके सारे गुण अमूर्त हैं। ज्ञान अमूर्त, दर्शन अमूर्त।

पदार्थमें विभुत्व शक्तिकी विशेषता— देखो भैया! यद्यपि गुणके काम अपने-अपने जुदा-जुदा हैं पर एक गुण सब गुणोंको अपना गुणात्मक बना लेता है। यह विशेषता द्रव्योंमें पायी जाती है। इस शक्तिका नाम है विभुत्वशक्ति। आत्मामें अमूर्तिक गुण है, तो लो सारे गुण मूर्ति हो गए। ज्ञान अमूर्त, दर्शन अमूर्त श्रद्धा अमूर्त। कोई गुण है ऐसा जो अमूर्त न हो? कोई नहीं है। आत्मामें एक सूक्ष्मत्व गुण है। सो देखो सारे गुण सूक्ष्म हैं। कोई गुण स्थूल है क्या कि हाथमें पकड़कर दूसरेको दे दें। लो आत्माका एक गुण हम रखलें। कोई गुण स्थूल नहीं है। इस आत्मामें जो गुण हैं वे अमूर्त गुण हैं। यह जीव शुद्ध भी है अशुद्ध भी है। जब शुद्ध है तब इसका शुद्ध गुण है, इसकी शुद्ध पर्याय है और जब अशुद्ध पर्याय है तो इसका अशुद्ध गुण है अर्थात् अशुद्ध पर्याय परिणत है। इस तरह समग्र जीव इस लोकमें अनन्तानन्त पाये जाते हैं। वे सब जीव प्रत्येक जीवसे परस्पर अत्यन्त भिन्न हैं।

मोहीका वस्तुस्वरूपसे विरुद्ध अपलाप— भैया! राग और मोहका उदय बड़ा विचित्र है। देखो सब जीव यद्यपि एकस्वरूपी हैं परंतु उनका स्वभाव समान है फिर भी उन जीवोंमें यह मोही ऐसी छटनी कर लेता है कि लो ये दो जीव तो मेरे हैं, खास हैं, मेरे बिलकुल मिले हुए हैं, मुझमें इनका बड़ा स्नेह है, ये दूसरेके हो भी नहीं सकते हैं। ये मेरे खिलाफ बन ही नहीं सकते हैं, ये मेरे अहितरूप हो ही नहीं सकते—ऐसा विश्वास यह व्यामोही जमाये हुए हैं।

धर्मपालनके समयका साहस— भैया! धर्मपालनके समय तो मोह को छोड़ो। अन्य समयोंमें नहीं छोड़ा जा सकता तो कमसे कम जब हम धर्मके पालन करनेकी अपनेमें ढींग या कल्पना करते हैं, संकल्प बनाते हैं उस समय दिलमें ऐसा उदार गम्भीर होना चाहिए कि मेरे लिए सब जीव समान हों, उन जीवोंमें अमुक मेरा है, अमुक पराया है यह भेद नहीं रहना चाहिए।

कर्तव्यपरायणताका एक दृष्टान्त— एक ऐसा ही पुराणमें वृत्तान्त आता है कि एक राजा पर एक दिशासे दुश्मनोंने चढाई की। राजा अपनी सेना लेकर उस शत्रुसे भिड़ने चला गया और सिंहासनपर रानी को बैठा दिया कि तुम राज्यकी व्यवस्था बनावो। इतनेमें दूसरी दिशासे दूसरे शत्रु

ने आक्रमण कर दिया। सो रानीने सेनापतिको बुलाया कि ऐ सेनापति तुम शीघ्र ही सेना सजाकर मुकाबला करो। सेनापति जैन था। वह बड़ी सेना सजाकर लड़ने के लिए चल दिया। रास्तेमें शाम हो गई। रास्तेमें वह हाथी पर बैठा-बैठा ही सामायिक करने लगा। और वही सब पाठ बोलने लगा। एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय, पचइन्द्रिय सब जीव मुझको क्षमा करो। इस प्रकारसे फूल पत्ती सबसे क्षमा मागी, सामान्यकथनमें सभी जीव आ गये। सो मानों गधा, कुत्ता, सभीसे क्षमा मागी। यहा एक चुगलखोरने आकर रानी से चुगली कर दी कि तुमने अच्छा सेनापति भेजा जो पेड पौधोंसे, छोटे-छोटे जीवोंसे भी क्षमा मागता है, वह शत्रुसे मुकाबला क्या करेगा?

पाच दिनके अन्दर ही सेनापति विजय प्राप्त करके लौटा। रानीसे मिला तो रानी पूछती है कि ऐ सेनापति? हमने सुना है कि तुम छोटे-छोटे कीड़ोसे, पेड पौधोंसे भी क्षमा मागते हो, तुम कितने कायर हो? तुम ने उस पर विजय कैसे प्राप्त कर ली? तो सेनापति उत्तर देता है कि महारानी जी, हम आपके नौकर दिनमें २३ घटेके हैं। एक घटेको हम अपने नौकर है। उन २३ घटेमें चाहे हम सो रहे हो, चाहे खा रहे हो, किसी समय जो हुक्म हो, राज्यका कोई काम आए फौरन तैयार रहता हू, किन्तु जो एक घंटा अपनी सेवाका हमने रखा है उस एक घंटेमें सब विकल्प छोड़कर केवल अपने आत्माकी सेवा करता हू। तो वह शामके टाइम पर आत्मसेवाका समय था और आत्मसेवा इसीमें है कि सारे जीवोंको अपने समान माना जाय। न कोई शत्रु है और न कोई मित्र है सब जीवोंका स्वरूप एक समान है। तो मेरे प्रमादसे किसी भी जीवको कोई कष्ट पहुचा हो तो उसकी क्षमा हम प्रतिदिन मागते है। सो अपनी सेवाके समय हमने अपना काम किया और जब आपकी सेवाका समय आया तो युद्धमें डटकर मुकाबला किया। इस तरह विजय प्राप्त करके आया।

धर्मसाधनाका पूर्ण अवधान— भैया! तो वह तो था लड़ाईका प्रसंग। यहा तो सिर पर लट्ठ भी नहीं बरष रहा है। हम २४ घटेमें एक घटा जो धर्मके लिए निकालते हैं उसमें हम किसी परका विकल्प न करके सच्ची लगनसे यदि आत्माकी सेवा करें तो वह हमारा धर्म पालन सही दिलसे है। पर होता कहा है? चाहे अन्य मदिरोंमें या मस्जिदोंमें या गिरजाघरमें शाति मिल जाय, पर यहां न मिलना चाहिए। मंदिरकी देरमें घुसते ही मौनका व्रत हो जाता है। गिरजाघरमें जिसने देखा हो, एक सूई

की भी आहट नहीं होती है जब उनकी स्तुतिका टाइम होता है। पर यहा देखो तो धर्मसाधन के अनुकूल भी हम वातावरण बनाए रहें, ऐसी बात रखने की कोशिश नही करते। शातिसे दर्शन करे, चुपके से रहें, मौनसे दर्शन हो, मौनसे पूजन हो।

मौनका प्राधान्य— भैया! आपके ग्रन्थोमे भी बताया है कि पूजा मौनसे होनी चाहिए। ७ स्थानोमे मौन बताया है ना, उसमे एक पूजा भी आ गयी। वहा यह अर्थ कर डालते हैं कि पूजाकी बात तो जोर-जोरसे करना, बाकी बाते न करना इसका नाम मौन है। भोजनके समय भी मौन बताया, वहा क्यो नही भोजनकी बात बोलते? टट्टी, पेशावके समयमे भी मौन बताया है वहा भी आप प्रसगकी बात जोरसे क्यो नहीं चिल्लाकर कहते कि टट्टीका लोटा ले आवो। अरे भाई थोडा थोडा बढ-बढकर बात रखो तो अब चिल्लाकर पूजन करते हुएमे कभी कभी लड़ाई भी हो जाती, कभी कभी घरकी बाते भी पूछने लग, कोई लड़का आकर पूछने लगे कि दद्दा चावी कहा धरी है? तो पूजन करते हुएमे बोल देते हैं कि जावो भंडरियामे चावी धरी है, वहां जाकर देखा।

धर्मकी एकाग्रता— एक बार सहारनपुरमे चतुर्मास किया, वहा पर जैन बागका जो बड़ा मदिर है ना, उसमें हमने कहा कि भाई १५ दिन को यह नियम रखलो कि इस मदिरकी देहरीमे पैर धरते ही सभी लोग सुबहसे १० बजे तक मौनसे रहेंगे। सो प्रातःकालसे १० बजे तक जो भी लोग दर्शन पूजन करने वाले आएँ, सभी मौनसे दर्शन पूजन करते थे। जब यह १०-१२ दिन तक क्रम चला तो जो लोग पूजा कर रहे थे, अभिषेक कर रहे थे उन लोगोसे हमने शामको पूछा कि भाई हो-हल्ला करके पूजन करने से ज्यादा आनन्द मौनसे पूजन करनेमे आता है या नहीं? तो उन्होंने कहा कि हा आता तो है। तो यो धर्मके समयमे हमे धर्मका ही ख्याल करना चाहिए और विकल्पोको तोड़ देना चाहिए।

आत्मचतुष्पदी— जो जीव बाह्य पदार्थोमे आत्मरूपसे श्रद्धान कर रहे हैं उन्हे बहिरात्मा कहते हैं और जो अपने अंतःस्वरूपको आत्मरूप से मानते हैं उन्हें अन्तरात्मा कहते हैं और जो निर्दोष पूर्ण विकासमय हो गए हैं उन्हे परमात्मा कहते हैं। इन तीन आत्मावोमे जो सहजस्वरूप हैं उन्हे समयसार कहते हैं अथवा कारणशुद्ध जीव कहते हैं। इस कारण शुद्ध जीवके आश्रयसे शुद्ध परिणतियां प्रकट होती है। अपने आपमे कैसी शक्ति है, क्या स्वभाव है? यह जाने बिना शक्तिकी व्यक्ति नहीं होती। इस प्रयोजनका पूरक जीवके सम्बन्धमें वर्णन चला था।

जीवकी शुद्धता और अशुद्धता— यह जीव पर्यायरूपसे शुद्ध और अशुद्ध दो प्रकारसे होता है। जब तक जीव अशुद्ध है, इसकी पर्याय अशुद्ध है और इसी कारण गुण भी अशुद्ध हैं यद्यपि गुणोको स्वरूपदृष्टिसे निरखा जाता है। तो शक्ति न शुद्ध होती, न अशुद्ध होती, गुण तो जो हैं सो ही है, किन्तु पर्याय कोई गुणोसे भिन्न नहीं हुआ करती है। इस कारण गुणो को भी अशुद्ध कह सकते हैं। पर्याय तो अशुद्ध है ही और जब यह जीव शुद्ध हो जाता है तो इसके गुण शुद्ध थे ही और सर्वथा शुद्ध हो गए, इसकी पर्याय भी शुद्ध होती है। इस जीवतत्त्वको जानकर यहा इस बात पर बल देना है कि इस जीवकी सब अवस्थावोमे रहने वाला जो सहज स्वभाव है उस सहज स्वभावका परिचय अनुभव आश्रय हुए विना जीवके शुद्धवृत्ति प्रकट नहीं होती।

दुर्लभ समागमके सदुपयोगका अवसर— भैया ! आज बड़ी योग्यता वाले भवमे हम आप आए हैं और ऐसे उत्कृष्ट समागमको पाकर भी विषय कषायोंरूप बने रहते है और इस परिणतिसे यह दुर्लभ नरजीवन यों ही व्यतीत हो जाता है। जो समय व्यतीत हो चुकता है वह कितना ही उपाय किया जाय वापिस नही आया करता है। जिसकी जो उम्र हो चुकी है, उससे पहिला समय चाहे कि वापिस आ जाय तो क्या आ सकता है? नहीं आ सकता है। छोटे बच्चोंको उछलते कूदते देखकर आप भी यह सोचें, चाहे कि यह स्थिति जरा देरको आ जाय तो मरकर चाहे आ जाय पर जिन्दगीमें वह बचपनकी अवस्था कहासे लावोगे? बचपनकी अवस्था तो दूर जाने दो—एक मिनटको भी एक समय पहिलेकी अवस्था नही ला सकते। तो कितने वेगसे हम आपके जीवनके क्षण गुजर रहे हैं और उन क्षणोमे हम विकार विकल्प ममता जिनसे सिद्ध नहीं है उनमें उपयोग निरन्तर बनाए रहते हैं।

हमारा प्रयोजन— परवस्तुके प्रति जो निरन्तर विकल्प बनते है उन विकल्पोंके कारण परपदार्थोंके परिणमन हो जाते हैं क्या? उनमे अपने विचारनेके अनुसार कार्य होता है क्या? नहीं। उनसे तो कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। बाह्यमे उनका जो कुछ होना है वह होता है। उनमें हमारे विचारका कार्य कारण सम्बन्ध भाव नहीं है, किसी परकी दशा सुधारने बिगाड़नेकी क्षमता नही है, फिर भी हम अपनेको कर्ता मानने का आशय अन्तरमें बनाए हुए है उससे ही विपत्तिया आती हैं। इस जीवतत्त्वको जानकर इस बात पर आना है कि हम बाह्यके विकल्पोको तोड़कर और अपने आपके सम्बन्धमे भी अध्रुव भावके विकल्पको तोड़कर सहजस्वभा-

की-दृष्टि बनाएँ, इस पद्धतिसे जीवतत्त्वको जाने तो यह तत्त्वार्थ श्रद्धानका काम करेगा।

पुद्गल तत्त्वार्थ— दूसरा द्रव्य है पुद्गल, जो गलन और पूरणका स्वभाव रखता है उसे पुद्गल कहते हैं। जो विशाल बन जाये, गलकर टुकड़े हो जाये ऐसा बिछुड़नेका और जुड़नेका जिसमे स्वभाव पड़ा हुआ हो उसे पुद्गल द्रव्य कहते हैं। कोई दो जीव मिलकर एक पिण्ड नही बन सकते हैं और जब मिलते ही नहीं है तो उन जीवोंके बिछुडने का उपाय ही कहांसे कहा जाय ? जीव-जीव न तो मिलता है और न बिछुड़ता है। पुद्गल-पुद्गल तो मिल जाते हैं और बिछुड़ जाते है अर्थात् वे एक पिण्ड रूप हो जाते हैं और फिर अलग-अलग हो जाते है। परमार्थसे तो उन पुद्गलोंमें भी एक अणु दूसरे अणुका सत्त्व नहीं रखता है, लेकिन ऐसा पिंड रूप हो जाता है कि वे मिलकर एक हो जाते है और बिछुडकर अलग हो जाते हैं।

पुद्गलको छोड़कर अन्य द्रव्यमे पूरण गलनका अभाव— पुद्गल को छोडकर अन्य किसी भी द्रव्यमे यह बात नहीं है। धर्मद्रव्य एक है वह भी किसी द्रव्यमे मिल नही सकता। अधर्मद्रव्य भी एक है, वह भी अन्य-द्रव्यसे मिल नहीं सकता। आकाश काल ये भी किसी अन्य द्रव्यमे नहीं मिलते और जीव भी किसी अन्य द्रव्यसे नही मिल सकता। पुद्गल पुद्-गलके साथ ही बंधनको प्राप्त होकर एक पिंड होता है। दृश्यमान् ये समस्त पदार्थ जैन सिद्धान्तमें पुद्गल शब्दसे कहे गए हैं।

पुद्गल शब्दकी उपयुक्तता— पुद्गल शब्दको छोड़कर और कोई शब्द ऐसा फिट नहीं बैठता है इस चीजको व्यपदिष्ट करनेमे कि पूरा भाव आ जाय और वह अर्थ किसी दूसरे पदार्थमे न जाय। बतावो कौनसा ऐसा नाम है ? एक नाम प्रसिद्ध है भौतिक पदार्थ। रूढिवश नाम धर ले, पर भौतिकका अर्थ क्या है कि जो होवे सो भूत और भूतोंकी जो अवस्था है उसे भौतिक कहते हैं। होता क्या नही है। सभी हैं और उनकी अवस्था चलती हैं ? कौनसा शब्द है जिससे हम इसका ठीक नाम कह सकें ? पुद्गल शब्द एक ऐसा व्यापक अर्थ भरा शब्द है कि सब द्रव्योंको छोड़कर समस्त परमाणुवोंमे इसका अर्थ मिलता है। जो पूरे और गले सो पुद्गल हैं। पूरनेका अर्थ है कि बहुतसे पुद्गल मिलकर एक पिंड बन जायें और गलनेका अर्थ है कि वे बिखर जायें। ऐसे पूरने गलनेके स्वभाव से युक्त पुद्गल द्रव्य होते हैं।

पुद्गल द्रव्यकी विशेषता— पुद्गल द्रव्यकी विशेषता है मूर्तपना।

रूप, रस, गंध, स्पर्श इन शक्तियोंका इनके परिणमनका आधारभूत जो होता है उसे मूर्त कहा करते हैं। रूप, रस, गंध, स्पर्श केवल पुद्‌गलद्रव्यमें ही पाये जाते हैं। जीवमें कोई रंग नहीं होता कि कोई नीला हो, पीला हो, काला हो, सफेद हो, न कोई इसमें रस है कि खट्टा हो, मीठा हो और न स्पर्श है कि कोई जीव चिकना हो, रूखा हो, ठंडा हो या गर्म हो। न किसी प्रकारकी गंध है। यह तो केवल ज्ञान द्वारा ही ज्ञानमें आ सकने योग्य है जीव, किन्तु पुद्‌गलमें रूप, रस, गंध, स्पर्श ये चारों शक्तियां पायी जाती हैं। इनके समस्तगुण मूर्त हैं। जैसे चेतनमें बताया गया था कि चेतनके समस्तगुण चेतन हैं, पर गुणके निजी स्वरूपको देखकर यह भेद किया जा सकता है कि चेतने वाले गुण तो इसमें दो ही हैं और शेष गुण सब न चेतने वाले हैं अर्थात अचेतन हैं। इसी तरह पुद्‌गलद्रव्यमें जो अस्तित्वगुण पाया जाता है वह क्या मूर्त है? मूर्त पुद्‌गलमें पाया जाता है इसी कारण मूर्त है, पर अस्तित्वका निजी स्वरूप निरखें तो अस्तित्व तो कोई रूप, रस, गंध, स्पर्श नहीं रख रहा है, उसका काम तो "है" करना है। लेकिन वह अस्तित्व रूपादिकमयतासे पृथक् नहीं है। इस कारण पुद्‌गलमें जितने भी गुण हैं वे सब मूर्त गुण हैं ये अचेतन हैं और इनके जितने भी गुण हैं वे सब अचेतन हैं। पुद्‌गल में चेतनगुण कोई नहीं है।

पुद्‌गलकी गति शक्ति— पुद्‌गलमें क्रियावती शक्ति भी पायी जाती है। वैसे देखनेमें तो क्रिया पुद्‌गलमें मालूम होती है, जीवमें नहीं मालूम होती है, पर कुछ विचारनेसे क्रिया जीवमें मालूम होती है, पुद्‌गलमें नहीं मालूम होती है। लेकिन क्रिया दोनों द्रव्योंमें है। भले ही पुद्‌गलकी क्रियामें अन्य कोई पुद्‌गल अथवा जीव निमित्त होता है, लेकिन क्रियारूपसे परिणत द्रव्य ही अपनी क्रियाको करता है। पुद्‌गलमें यह गमन करनेकी शक्ति है, मोटे रूपसे देखने पर ऐसा लगता है कि यह पुद्‌गल जब पिंड रूप बनता है तो इसमें अन्यके प्रयोगवश इसकी गति हुआ करती है, पर बात ऐसी नहीं है। यह भी है बात, पर पुद्‌गलमें गति स्वभावसे पड़ी हुई है। एक अणु जितनी तीव्रगति कर सकता है उतनी तीव्र गति पुद्‌गल स्कंध नहीं कर सकता है। एक परमाणु १ समयमें १४ राजू तक गमन कर सकता है पर कोई पुद्‌गल स्कंध १ समयमें १४ राजू गमन नहीं कर पाता है। कदाचित् ऐसा हो सकता है कि कोई जीव नीचेसे गुजर कर लोकके अंतमें उत्पन्न होवे, अशुद्ध जीवकी बात यह हो सकती है तो वह एक समयमें १४ राजू पहुंच जायेगा और उसके साथ जो तैजस स्कंध हैं, कार्माण स्कंध हैं वे एक समयमें पहुंच जायेंगे पर स्वतंत्र जीवका

सम्बन्ध न पाकर पुद्गल स्कंध गमन न कर पाये, पर परमाणुमे इतनी शक्ति है कि एक समयमे वह १४ राजू तक गमन करता है। तो यह गति क्रिया पुद्गलमे भी पायी जाती है और जीवमे भी पायी जाती है।

जीव और पुद्गलके विवरणकी विशेषता— इन ६ द्रव्योमे दो द्रव्योका अधिक परिचय है और ये ही दो द्रव्य बोलने चालनेमे चर्चासे सब काम आते है। इन ही दो द्रव्योका वर्णन शास्त्रोमे विस्तारसे है। धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्यके सम्बन्धमे कभी थोड़ासा वर्णन आता है और जितने ग्रन्थ भरे पड़े है वे सब जीव और पुद्गलकी बात बताने से भर गए हैं।

पदार्थका एकत्व इस पुद्गलद्रव्यको जानकर हमे शिक्षाकी बात क्या मिलती है? प्रथम तो ज्ञानकलासे पुद्गलको जाना जाय। एक, एक अणु ही वास्तवमे पुद्गलद्रव्य है, और उन अणुवोका केवल अपने आपमे ही परिणमन है। उस प्रत्येक अणुमे रूप, रस, गंध, स्पर्श चार शक्तिया हैं। वे अपने उपादान कारणसे परिणमते है और कदाचित् अन्य अणुका निमित्त पाकर वह बधनरूप भी हो जाय, एक पिंड भी बन जाय, किसी भी परिस्थितिमें हो तो भी प्रत्येक अणुका उस-उस अणुमे ही अपना-अपना परिणमन हैं।

वस्तुके एकत्वके दर्शनमे हितोद्गम— कोई अणु किसी दूसरे अणु में परिणमन नहीं करता है और ऐसे पुद्गलको स्वतंत्र दृष्टिसे देखा जाय और अणु ही अणु आपके उपयोगमे रह जाय तो फिर यह भींत और ये मकान ये सब चीजे आपके उपयोगसे जायेगी। आपके घरमे ये मायारूप स्थान नहीं पा सकते, जब कि पुद्गलकी स्वतंत्रताकी दृष्टि उपयोगमें वर्त रही हो। अच्छा है, सब ढा जावो। इन सबके उपयोगमें रहनेसे मेरी बरबादी ही है, कुछ हित नहीं हो रहा है, व्यर्थकी बातो में समय गुजरता है। व्यर्थकी कल्पनाओमें यह जीवन व्यतीत होता है। न आये यह माया-रूप कुछ उपयोगमे यह बहुत भली बात है। किन्तु ऐसी स्थिति कहां बन पाती है? गृहस्थावस्थामे तो अनेक बातें, अनेक झंझट, अनेक कर्तव्य हैं, सबकी ओर निगाह रखना होता है। फिर भी कुछ समय जरूर ऐसा होना चाहिए कि जिस समय केवल अपनेमे अपने ही नातेका कार्य हो। अपने से भिन्न समस्त पदार्थोंका विस्मरण करदे। ऐसा एक आध मिनट भी समय व्यतीत हो तो इस तरह प्राप्त होने वाली शुद्धिका प्रभाव रात दिन रह सकता है।

शुद्ध दर्शनका प्रभाव— भैया! बिजलीका कितना परिमाण है पर

उसका असर कितना व्यापक है ? उससे भी अधिक शुद्ध अन्तस्तत्त्वकी सत्तामात्र देखनेका भी असर इस रात दिनमें रह सकता है। जैसे किसी विलक्षण बातके निरखनेसे घंटों तक उसकी याद और उसका असर रहा करता है। तो सर्व लोकसे विलक्षण एक निज अपूर्व अनुभूतिका असर प्रभाव संस्कार और आनन्दका ताता बहुत काल रह आये तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

पदार्थोंकी भूतार्थपद्धतिसे अभिगतता— पदार्थोंको हम भूतार्थ पद्धतिसे निरखा करें। ये परिणमन हैं, ये परिणमन अमुक-अमुक गुणके हैं और वे समस्त गुण एक भेद मात्र हैं, वे सब एक द्रव्यरूप हैं, अमुक द्रव्य रूप है। इस तरह पर्यायों को जानकर गुणोंमें विलीन कर डालें और फिर गुणोंको जानकर गुणोंको द्रव्यमें विलीन कर सकें तो इस प्रकारसे पदार्थका निरखना सम्यक्त्वका कारण बनता है और यही तत्त्वार्थ श्रद्धान कहलाता है। यों तो सभी श्रद्धा रख रहे हैं यह भींत है, यह मकान है, यह दरी है, और जो जैसी चीज है वैसी सब जान रहे हैं पर ऐसा जानना सम्यक्त्वका कारण नहीं है किन्तु स्वरूपविपर्यय कारणविपर्यय भेदाभेद विपर्यय इन—तीन विपरीत आशयोंसे रहित भूतार्थ पद्धतिसे विचारो तो जो ये ज्ञान विकल्प हैं, वे सम्यक्त्वका कारण हुआ करते हैं।

सम्यक्त्वका भाव— सम्यक्त्वका अर्थ है समीचीनता, भलापन। यह समीचीनता विधिरूपसे हम कैसे ज्ञात करें ? विधिरूपसे जो ज्ञात होगा वह ज्ञानमें शामिल हो जायेगा। तब उसको आचार्योंने विपरीत अभिप्राय रहित आशयको सम्यक्त्व कहा है। इस प्रकार निषेधके रूपसे वर्णन किया है।

रत्नत्रयमें गुणत्रयी— सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोंको हम उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यकी मुख्यतासे निरखा करें तो इसका स्वरूप शीघ्र ध्यानमें आता है। सम्यग्दर्शन है विपरीत अभिप्रायके व्ययका नाम, सम्यग्ज्ञान है तत्त्वके निर्णयका नाम और सम्यक्चारित्र है ज्ञानकी ध्रुवताका नाम। तो सम्यक्चारित्र ध्रौव्यका मापक है और सम्यग्ज्ञान उत्पादका और सम्यग्दर्शन व्ययका मापक है। चीज आत्मामें एक होती है, तीन नहीं होती हैं। पर वह एक ऐसी विलक्षण परिणति है कि उस परिणतिको हम यथार्थ एक शब्दमें नहीं बता सकते हैं। तब जितने कार्य होते हैं याने परिणमन विदित होते हैं उन परिणमनोंके द्वारा हम वस्तुके स्वरूप पर पहुंचते हैं तो जो श्रद्धाका परिणमन है वह है दर्शन, जो जाननका परिणमन है वह है ज्ञान और जो स्थिरताका परिणमन है वह

है चारित्र।

उद्देश्यकी व्यक्ति— भैया ! जिस व्यक्तिके जो अन्दरूनी इच्छा होती है वह व्यक्ति किसी भी जगह पहुंचे वह बातचीतमें अपनी ही सुई की बात रख देता है। जैसे जिसको खानेकी हो मनमें लगी है ऐसा पुरुष चार आदमियोंमें बैठ कर जहां थोड़ी गुणियोंकी कथा भी हो रही हो, तीर्थ यात्राकी चर्चा हो रही हो तो बीचमें वह अपनी भोजन सम्बन्धी भी किसी न किसी रूपमें बात रख देगा। वहां अच्छा भोजन बनता है, फलाने के संगमें अच्छा भोजन मिलता है, अमुक महाराजके संगमें रूखा रूखा ही भोजन मिलता है। ऐसी कोई न कोई झलक निकाल ही देगा। जिसको धर्मकी रुचि है वह पुरुष कदाचित् चार आदमियोंकी गप्पोंमें भी फंस गया हो, थोड़ा बोलना भी पड़ता हो तो कोई धार्मिक बात कहे बिना उससे रहा न जायेगा। क्योंकि उसकी धर्ममें ही रुचि और मंसा है। इसी प्रकार जिस ग्रन्थकी जो मंसा होती है, जो ग्रन्थ जिस विषयको लेकर चलता है उस ग्रन्थमें जो कुछ भी वर्णन किया जायेगा उन वर्णनोंके बीचमें अपने उद्देश्यकी बात रखे बिना नहीं रह सकता। यदि अपने उद्देश्यकी पुष्टि न हो रही हो तो वह उस ग्रन्थका भाग ही नहीं है।

शुद्धोत्तरी पद्धतिका प्रयोग— इसमें जो गुण और पर्यायोंका वर्णन किया गया है उस वर्णनसे हमें ऐसी रीति और पद्धति अपनानी चाहिए और उस पद्धतिसे ही सुनना चाहिए कि जिससे पर्याय गुणोंमें विलीन हो और गुण द्रव्यमें विलीन हो और हमारी दृष्टि एक अभेद रूप बन सके। इस पद्धति और रीतिसे पुद्गल तत्त्वको जान जाय तो यह भी तत्त्वार्थ कहलाता है। इस तरह तत्त्वार्थका श्रद्धान हमारे सम्यक्त्वका कारण होता है। इस प्रकरणमें पुद्गलद्रव्यका संक्षिप्त वर्णन हुआ।

प्रकरण प्राप्त धर्मद्रव्यका स्वरूप— आप्त, आगम और तत्त्वार्थके श्रद्धानसे सम्यक्त्व होता है, इस प्रसंगमें आप्त और आगमका स्वरूप तो बता चुके थे। इस समय तत्त्वार्थोंका वर्णन चल रहा है। तत्त्वार्थ ६ होते हैं जिनका यथार्थ श्रद्धान करने से सम्यक्त्व होता है उनमें जीव और पुद्गल इन दो तत्त्वार्थोंका वर्णन हो चुका है, अब धर्मद्रव्यके सम्बन्धमें कहा जा रहा है। धर्मद्रव्य उसे कहते हैं जो जीव और पुद्गलकी गतिमें निमित्तभूत हो। गति क्रिया केवल जीव और पुद्गलकी होती है अन्यद्रव्य निष्क्रिय होते हैं और साथ ही वैभाविककी शक्ति भी जीव और पुद्गल में होती है। जिससे गति दो दो प्रकारकी हो गयी—एक जीवकी स्वभाव गति और दूसरी जीवकी विभाव गति। इसी तरह पुद्गलकी दो प्रकार

की गतिया हो जाती हैं—एक तो पुद्गलकी स्वभावगति और दूसरी पुद्गलकी विभाव गति। चाहे स्वभावगतिमे परिणत हो, चाहे विभावगति मे परिणत हो, गति परिणमन जीव पुद्गलकी इस प्रकारकी स्वभावगति अथवा विभावगतिमे जो निमित्तभूत है उसे अधर्मद्रव्य कहते हैं।

जीव और पुद्गलमें गतिद्वैविध्य— जीवके स्वभावगति होती है, जब जीव अत्यन्त शुद्ध हो जाता है अर्थात् द्रव्यकर्म, नो कर्म, भावकर्म, तीनो प्रकारके नयोसे सर्वथा रहित हो जाता है अर्थात् सिद्ध होता है। तो उसको गति स्वभावगति कहलाती है। वह ७ राजू प्रमाण क्षेत्रमें एक समयमे उल्लंघकर लोकाकाशके शिखर पर विराजमान हो जाता है, और सिद्ध प्रभुकी गतिको छोडकर शेष समस्त ससारी जीवोंकी गति विभाव गति कहलाती है। जब तक जीवास्तिकायके साथ पौद्गलिक कर्मोंका सम्बन्ध बना हुआ है तब तक जीवकी जो गति होती है वह विभावगति होती है। इसी प्रकार पुद्गलमें जो शुद्ध अखण्ड अणु है उन अणुवोंकी जो गति होती है वह स्वभावगति कहलाती है और वह अणु दूसरे अणुवों मे बद्ध होकर पुद्गल स्कधका रूप ले लें तब उनकी जो गति होती है वह विभावगति होती है। दोनो प्रकारकी गतियोंसे परिणत जीव पुद्गलके गमनमे जो हेतुभूत है उसे धर्मद्रव्य कहते हैं।

निमित्त और उपादानके सम्बन्धकी सीमा— पुण्यसे अथवा आत्म धर्मसे प्रयोजन नहीं है, किन्तु एक ऐसा विशाल अमूर्त द्रव्य अखण्ड पूर्ण लोकाकाशमे व्याप्त है जिसका निमित्त पाकर जीव व पुद्गल अपनी गति क्रियासे परिणत होता है। निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धमे यह सदा ध्यान रखना चाहिए कि निमित्तभूत पदार्थ अपनी द्रव्यगुण पर्याय क्रिया कुछ भी अपने से बाहर कही फेकता नहीं है, अन्य द्रव्यमे देता नहीं है उसमें प्रेरणाका उपचार किया जाता है। इसका कारण यह है कि परिणममान उपादान ऐसी अपने में कला रखता है कि अनुकूल निमित्तको पाकर वह उपादान स्वयकी परिणतिसे इस प्रकार परिणम लेता है। इस ही तथ्यको लोकमें शीघ्र प्रसिद्ध करनेके लिए इन शब्दोमे कहा जाता है कि अमुक जगह ऐसा किया।

प्रेरणा वाली बातका उदाहरण— पानी गरम हो गया अग्निका सन्निधान पाकर या सूर्यका सन्निधान पाकर गरमी फैल गयी, इससे और बढकर प्रेरणा वाला दृष्टांत क्या दिया जा सकता है? यहा भी स्वरूप दृष्टि करके निहारे तो अग्निने अपने द्रव्य गुण पर्यायको अपने से निकालकर पानीमें नहीं डाला, किन्तु ऐसा ही सम्बन्ध है कि अग्निका निमित्त पाकर

यह पानी अपनी शीत पर्यायको छोड़कर उष्णपर्यायरूप परिणम गया। जैसे कोई कभी गाली देने वाला सामने आ खड़ा हो और नाम लेकर गालियां दे दे तो यह सुनने वाला क्रुद्ध हो जाता है। तो खूब आंखोंसे देख लो, क्या गाली देने वाले ने उसके क्रोध पर्याय पैदा की ? क्या वहांसे कोई क्रोध की किरणें निकली हैं और इस सुनने वालेमे आयी है ? हुआ क्या हां कि यह सुनने वाला स्वयं कषायकी योग्यता रख रहा था, सो अपने आपमे कल्पना बनाकर उस गाली देने वाले को लक्ष्यमें लेकर स्वयं क्रोध रूपसे परिणम गया है।

धर्मद्रव्यकी उदासीननिमित्तता— इसी प्रकार प्रत्येक निमित्त अपने आपमें ही वे अपने सर्वस्व परिणमन किया करते है। यह तो उपादानकी ही ऐसी कला है कि योग्य परिणममान उपादान अनुकूल निमित्तको पाकर स्वयं अपनी परिणतिसे परिणम जाता है। जीव और पुद्गलके गमनमे धर्मद्रव्य इसी भांति निमित्तभूत है और कई जगह तो निमित्त पाकर परिणमना अवश्य करके हो जाता है। जैसे अग्निका सन्निधान पाकर जलका गर्म होना। योग्य समय पर सूर्यके सन्निधानमे पत्थरका तेज गरम हो जाना, परन्तु धर्मद्रव्य और जीव पुद्गलके गमनरूप कार्यमे यह अवश वाली बात नहीं होती है। जीव पुद्गल चले, वह अपनी गतिका यत्न करे तो वहां धर्मद्रव्य निमित्तभूत है।

धर्मद्रव्यके निमित्तत्वका उदाहरण— धर्मद्रव्यकी निमित्तभूतता बतानेके लिए उदाहरण जल और मछलीका उपयुक्त बैठता है। मछलीके गमन करनेमे जल निमित्त है किन्तु वह जल वैसा निमित्त नहीं है जैसा कि अग्निका सन्निधान पाकर जल गरम हो ही जाता है। इस तरह उस मछलीको चलना ही पडता है ऐसा नहीं है। वह मछली चलना चाहे, चलनेका यत्न करे तो जलका निमित्त पाकर खुशी-खुशी अच्छी कलापूर्ण चालसे लटक मटक कर चला करती है। जलके बिना जमीन पर पड़ी हुई मछली चलना चाहती है, यत्न करती है और बहुत बड़ा यत्न करती है क्योकि तकलीफ और मारना किसे पसद है, किन्तु मछली वहां नही चल पाती है। तो जैसे मछलीके चलनेमे जल निमित्तभूत है इस ही प्रकार समस्त जीव पुद्गलके चलनेमे यह धर्मद्रव्य निमित्तभूत है।

धर्मद्रव्यकी विशेषता— यह धर्म मूर्तिक है, पूर्ण लोकालोकमे व्याप्त है। कुछ युक्तियोसे अंदाज होता है और आगममे इसका विशेष वर्णन भी पाया जाता है। है कोई ऐसा सूक्ष्म तत्त्वार्थ कि जिसका आश्रय करके ये जीव पुद्गल गमन करते हैं ? एक धर्मद्रव्य एक अखण्ड वस्तु है, वह

अपने आपमे अ पको लिए हुए हैं। उसका असाधारण लक्षण क्या है यह नही बताया जा सकता है क्योकि वह व्यवहार्य ही नहीं है, फिर भी वह किसी कार्यमे निमित्तभूत होता है, ऐसी दृष्टि करके इस धर्मद्रव्यका असाधारण लक्षण गतिहेतुत्व कहा गया है। असाधारण लक्षण वह होता है जो निरन्तर परिणमता रहे। तो धर्मद्रव्यमे असाधारण स्वभाव वह होगा जो निरन्तर अगुरुलघुत्व गुणके द्वारसे परिणमता रहता है। यह गतिहेतुत्व असाधारण लक्षण व्यवहारदृष्टिसे है दो द्रव्योका या अनेक द्रव्योका सम्बन्ध बताकर कोई वर्णन करना व्यवहारदृष्टिका कार्य है। हो, पर जिस किसी भी उपायसे द्रव्यकी पहिचान हो सके उसको लक्षण कहते हैं।

धर्मद्रव्यकी व्यापकता— यह गतिहेतुत्व धर्मद्रव्यमे ही पाया जाता है अन्य द्रव्योमे नहीं पाया जाता है, इसलिए यह असाधारण चिन्ह तो है ही, ऐसा गति हेतु व लक्षणसे परिचयमे आने वाला धर्मद्रव्य लोकाकाशमे सर्वत्र व्यापक है। कैसा व्यापक ? कि जैसे घडेमें पानी भरा हो। उस पानीके बीचमे कोई अश ऐसा नही रहता कि जहा पानी न रहे और आसपास रहे। वह तो जितनेमे पानी है खूब व्याप करके है। तत्त्वार्थ सूत्रमे धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्यकी विशेषता बतानेमे एक सूत्र कहा है। "धर्माधर्मयो कृत्स्नो।" धर्म और अधर्मद्रव्यका आवास कृत्स्न लोकमे है। कृत्स्नका अर्थ है सर्व। यह सूत्र आप किसीसे पढायें तो कोई विरला विद्वान् ही शुद्ध बोल पायेगा। कृत्स्न शब्द इतना क्लिष्ट है कि बिल्कुल शुद्ध जिह्वा चल सके ऐसा बहुत कठिन होगा और अर्थ उसका है सब, सबमे। तो कृत्स्न शब्दके पर्यायवाची और भी शब्द हैं, उन्हें न रखकर पूज्यपाद उमास्वामीने कृत्स्न शब्द रखा है। इसका यह अर्थ है कि जैसे कोई व्याख्यान देता है तो व्याख्यानका आधा मतलब व्याख्यानदाताके मुखसे या हाथसे ज्ञात हो जाया करता है। तो कृत्स्न शब्दके प्रयोगमे जैसे जीभ सारे मुँहमे व्याप करके चल उठी तो आधा ज्ञान लोगों को इससे हो जाता कि धर्म और अधर्मद्रव्य इस तरह व्यापकर हैं जैसे कृत्स्न शब्द कहकर जीभ सारे मुँहमे व्याप जाती है। यह धर्मद्रव्य समस्त लोकमें व्यापक है। अमूर्त अखण्ड है। अश अशरूपसे बीच-बीचमे धर्मद्रव्य अश अश रूपसे रहे, ऐसा नहीं है।

अमूर्तपदार्थके परिणमनके परिचयकी दुर्गमता— यह धर्मद्रव्य भी निरतर उत्पाद व्यय कर रहा है। कैसे उत्पाद व्यय करता है ? कौनसी परिस्थिति नई बनती है और पुरानी विलीन होती है ? हम नहीं [illegible]

सकते। ऐसे मूलतत्त्वको आगममें श्रुत परम्परासे बताकर अंतमें यह कहना पड़ेगा कि वह साक्षात् तो केवली गम्य है और आगमानुसार श्रुतकेवलियों द्वारा भी गम्य है। अमूर्त पदार्थका क्या परिणमन होता है और पुराना परिणमन कैसे विलीन होता है, इस बातको बताया नहीं जा सकता, किन्तु केवल जीवद्रव्यकी बात स्पष्ट समझमें आती है कि क्या नया परिणमन होता है और क्या पुराना परिणमन विलीन होता है ?

अमूर्त जीवके परिणमन परिचयकी सुगमताका कारण— जीवद्रव्य की बात इस कारण समझमें आती है कि इसकी बात खुद पर पड रही है। यदि यह अमूर्त खुद आपन न होता तो जीवकी बात भी समझमें न आती। बल्कि द्रव्यकर्मका परिचय नहीं हो सकता, पर भावकर्मका परिचय हो सकता है। द्रव्यकर्म यद्यपि मूर्तिक है स्थूल है और भावकर्म तो अमूर्त है, सूक्ष्म है और द्रव्यकर्म भी इस जीवमें ठसाठस पडा है और भावकर्म भी इस जीवमें ठसाठस भरा है, लेकिन द्रव्यकर्मका हम परिचय नहीं कर पाते और भावकर्मका हम परिचय कर लेते हैं क्योंकि वह बात तो खुद पर बीत रही है।

धर्मद्रव्यका भूतार्थपद्धतिसे अवगम— ऐसा यह अमूर्त धर्मद्रव्य भूतार्थ पद्यतिसे जानो कि यह धर्मद्रव्य है, वह अनन्त शक्तियोंसे सम्पन्न है और उसका प्रतिसमय परिणमन चलता है। हम यद्यपि परिणमन भी नहीं जान रहे हैं कि धर्मद्रव्यका क्या परिणमन है और उन परिणमनोंके आधारभूत गुण भी नहीं समझ रहे हैं किन्तु आगम और युक्ति बलसे हम उसे पहिचान रहे हैं। फिर भी है कोई ऐसा पदार्थ जो जीव और पुद्‌गलके गमनमें निमित्तभूत है ? तो जो भी है वह गुण पर्यायवान् अवश्य होता है। उसमें गुण है और उनका परिणमन है। वह परिणमन गुण है और वह गुण एक धर्मद्रव्यरूप है। ऐसा इस अमूर्त धर्मद्रव्यका संक्षेपमें स्वरूप जानना।

अधर्मद्रव्यका स्वरूप— इसके बाद अधर्मद्रव्यका वर्णन किया जा रहा है। जो जीव और पुद्‌गलकी स्थितिमें निमित्तभूत हो उसे अधर्मद्रव्य कहते हैं। स्थितिके मायने ठहरना। ठहरना और रहना इन दोनोंमें अन्तर है। ठहरना कहलाता है गमन कार्यमें परिणत पदार्थका रुकना इसका नाम ठहरना कहलाता है और फिर सदाकाल वहीं रहा करे, वह रहना कहलाता है। रहनेकी बात नहीं कही जा रही है, ठहरनेकी बात कही जा रही है। स्वभावस्थिति और विभावस्थितिकी क्रियामें परिणत जीव पुद्‌गलकी स्थितिमें जो निमित्तभूत है उसको अधर्मद्रव्य कहते हैं।

स्वभावस्थिति व विभावस्थिति— भैया ! जीवकी स्वाभाविक स्थिति भी होती है। द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म—इन तीनोंसे रहित होने पर यह जीव एक समयमे लोकके अतमे पहुचता है तो उस एक समयकी गतिको स्वभावगति कहते हैं और वहा ठहर जानेको स्वभावस्थिति कहते है। उस दशाके अतिरिक्त अन्य समस्त दशावोंमे जो जीवका ठहरना हुआ करता है वह सव विभावस्थिति है। इसी प्रकार शुद्ध अणु गति करके ठहरे यह है पुद्गलकी स्वभावस्थिति और पुद्गल स्कधोंका गति करके ठहरना यह सब है विभावस्थिति। स्वभावस्थिति और विभावस्थितिमे परिणत जीव, पुद्गलके ठहरनेमें जो हेतुभूत है उसे अधर्मद्रव्य कहते है। इस अधर्मद्रव्यका भी अन्य समस्त वृत्तान्त धर्मद्रव्यकी ही तरह है। यह अमूर्त हैं, अगुरलघुत्व गुणके द्वारसे निरन्तर परिणमता रहता है। इसका व्यावहारिक असाधारण लक्षण स्थितिमे निमित्तभूत होना है ये धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य बराबरके विस्तारके है। पूरे लोकाकाशमें सर्वत्र व्यापक है। यहा तक जीव, पुद्गल, धर्म और अधर्म चार तत्त्वार्थों का वर्णन हुआ है।

आकाशद्रव्यका स्वरूप— अव आकाशद्रव्यका लक्षण किया जा रहा है। जो पाचो द्रव्योको अवगाह दे, पाचो द्रव्योंके अवगाहका जो वाह्य आधार हो, निमित्त हो उसे आकाशद्रव्य कहते है। पांचों द्रव्योंका मतलब है जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, और काल, आकाश तो यह स्वय ही है। इसका तो लक्षण ही किया जा रहा हैं। ये समस्त द्रव्य आकाशद्रव्य मे अवगाहित हैं। तिस पर भी स्वभावदृष्टिसे देखा जाय तो आकाशमें तो केवल आकाश ही है। आकाशमे जीव पुद्गलादिक अन्य द्रव्य नहीं हैं। यह बात जरा कठिनतासे पहिचानी जा सकेगी, क्योंकि एकदम लोगोंके सही परखमे आ रहा है कि वाह हम यह आकाशमें ही तो पड़े हुए हैं।

परमार्थत प्रत्येकके स्वयंका स्वयमे अवगाह— भैया ! आकाशका और हम लोगोंका ऐसा सम्बन्ध योग हुआ तो है फिर भी हमारा स्वरूपास्तित्व हममें ही है। किसीका स्वरूपास्तित्व किसी अन्यमें नहीं है। कभी ऐसा भी नहीं हुआ कि हम आकाशसे अलग पडे थे तो किसीने कृपा करके हमे आकाशमे धर दिया हो कि भाई तुम आकाश विना गड़बड़ ढगमें क्यों पडे हो ? आकाशमें कलात्मक ढंगसे रहो, ऐसा तो किया नहीं गया। अनादिसे ही आकाश है और वे ही के वे ही अनादिसे हम आप हैं। तो परमार्थसे किसे आधार कहा जाय और किसको आधेय कहा जाय? निश्चयसे यद्यपि ऐसा है, फिर भी हम जब वाह्य प्रसंगको देखते है तो यह

बात भी सत्य है कि पांचों द्रव्योंका अवगाह आकाशमें है। और आकाश कहते उसे है जो पांचों द्रव्योंको अवगाह देनेमें समर्थ हो।

कालद्रव्यका विवरण— अंतिम तत्त्वार्थ है। कालद्रव्य, कालद्रव्य उसे कहते हैं जो पांचों द्रव्योंकी वर्तनाका निमित्तभूत हो। काल तो यह स्वयं है ही। यह स्वय भी परिणमता रहता है अपने ही उपादान और निमित्तसे और अन्य द्रव्योंके परिणमनमें निमित्तभूत होता है। यह कालद्रव्य लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर एक-एक पूर्ण कालद्रव्य ठहरा हुआ है और वह कालद्रव्य अपने प्रदेश पर स्थित द्रव्यके परिणमनका हेतुभूत है। यहां प्रश्न किया जा सकता है कि यह कालाणु पर स्थित परिणमन वाली बात जीव पुद्गल, धर्म, अधर्ममें घटित हो जाती है, पर यह आकाशद्रव्य जो इतना विस्तृत है लोकाकाश भी है और अलोकाकाश भी है। अलोकाकाशमें कालद्रव्य नहीं हैं, फिर वहाका आकाश कैसे परिणमेगा? एक यह समस्या आ जाती है। किन्तु यह जानना कि आकाश एक ही अखण्ड द्रव्य है, लोकाकाशमें व्याप्त कालद्रव्यका निमित्त पाकर आकाश परिणमता है। उसे परिणमने के लिए अपने समस्त प्रदेशों पर निमित्तके सन्निधानकी आवश्यकता नहीं है। एक अखण्डद्रव्यका निमित्तभूत चाहिए। सो कालद्रव्य यह है ही।

तत्त्वार्थोंकी श्रद्धाविधि— इस तरह इन ६ तत्त्वार्थों का सामान्यस्वरूपसे वर्णन किया है। जब सब बाते स्पष्ट विदित हो जाती हैं तो एक दृढतासे अवगम और श्रद्धान् किए हुए इन तत्वार्थोंके यथार्थ श्रद्धान्से सम्यक्त्व जगता है। इसका यथार्थ श्रद्धान् यही है कि इन समस्त द्रव्योंकी स्वतन्त्रता हमारे उपयोगमें विदित हो जाय।

तत्त्वार्थोंके वर्णनका उपसहार— छः तत्त्वार्थोंमें जीव एक है और अजीव ५ है। मूर्त १ है और अमूर्त ५ है। जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—ये ५ द्रव्य अमूर्त हैं। इनमें जीवद्रव्यके तो शुद्धगुण शुद्धपर्याय भी है, और अशुद्धगुण अशुद्धपर्याय भी है किन्तु शेष चार अमूर्तद्रव्योंके शुद्ध गुण हैं और शुद्धपर्यायें है। इस प्रकार इन ६ तत्त्वार्थोंका वर्णन हुआ। इनका श्रद्धान् सम्यक्त्वका कारण होता है। जिनेन्द्र भगवान्के मार्गरूपी समुद्रके बीच यह ६ द्रव्योंका वर्णन रत्नकी तरह है। जो पुरुष इन ६ तत्त्वार्थोंका यथार्थस्वरूप अपने उपयोगमें लेता है उसे शांतिका मार्ग मिलता है और निकट भविष्यमें वह सर्वसंकटोंसे मुक्त हो जाता है। इन ६ तत्त्वार्थोंमें से इस अधिकारमें जीवतत्त्वका वर्णन कर रहे हैं। अजीवतत्त्वका वर्णन दूसरे अधिकारमें होगा। इससे जीवतत्त्वका

विशेप वर्णन करनेके लिए कुन्दकुन्दाचार्य कह रहे हैं।

जीवो उवओगमओ उवओगो णाणदंसणो होई।
णाणुवओगो दुविहो सहावणाण विभावणाण त्ति ॥१०॥

जीवका स्वरूप— यहां जीवका वर्णन जीवके असाधारण गुणरूप उपयोगकी अपेक्षासे किया जा रहा है। जीव उपयोगमय है। उपयोग किसे कहते हैं ? आत्माके चैतन्यगुणके अनुकूल वर्तने वाला जो परिणाम है उसे उपयोग कहते हैं। यही उपयोग जीवका धर्म है। वस्तु एक अखण्ड रूप है फिर भी वस्तुकी पहिचानके लिए उसमें धर्म धर्मीका भेद किया जाता है। जीव तो धर्मी है और उपयोग धर्म है। यह उपयोग ज्ञान दर्शन स्वरूप है। ज्ञानदर्शनात्मक चैतन्यका अनुविधान करने वाला परिणमन उपयोग है।

उपयोग और आत्मामें धर्मधर्मीभावका भेदीकरण— उपयोग और आत्माका सम्बन्ध धर्मधर्मीरूपसे बताया गया है। जैसे प्रदीप और प्रकाश। प्रकाश प्रदीपसे कहीं अन्यत्र नहीं है और प्रकाशको छोड़कर प्रदीप कहीं अन्यत्र रहता नहीं, फिर भी प्रकाश धर्म है और प्रदीप धर्मी है। जैसे प्रकाशात्मक प्रदीपमें धर्म धर्मीका भेद किया जाता है इस ही प्रकार चैतन्यात्मक आत्मामें चैतन्य और आत्मामें धर्म धर्मीके रूपसे भेद किया गया है।

उपयोगके मूलमें भेद— यह उपयोग ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग के भेदसे २ प्रकारका है, जिसमें ज्ञानोपयोगका तो अर्थ है पदार्थका ग्रहण जानन विकल्प और दर्शनोपयोगका अर्थ है सामान्य प्रतिभास। इसमें से ज्ञानोपयोग २ प्रकारका है—स्वभावज्ञान और विभावज्ञान। जीव उपयोगात्मक है। उपयोगके २ भेद हैं—ज्ञान और दर्शन। ज्ञानके दो भेद हैं—स्वभावज्ञान और विभावज्ञान अर्थात् ज्ञानके स्वभावरूप ज्ञान और विभाव रूप ज्ञान ऐसे दो भेद हैं। स्वभावका ज्ञान और विभावका ज्ञान ऐसा अर्थ नहीं लगाना किन्तु कर्मधारय रूप अर्थ है स्वभावरूप ज्ञान और विभावरूप ज्ञान। शब्दके उपयोगी समासको छोड़कर अन्य प्रकारका समास लगाया तो अर्थसे अर्थांतर हो जायेगा। जैसे—शुद्धोपयोग। शुद्धोपयोगके दो अर्थ हैं—शुद्धउपयोग और शुद्धका उपयोग। इन दोनों अर्थोंमें कितना अन्तर हो गया ? शुद्धका उपयोग पहिले हो जाता है और शुद्धउपयोग बादमें होता है। शुद्ध तत्त्वका ज्ञान करना सो शुद्धका उपयोग है और उपयोगके अतिरिक्त अन्य भावोंसे रहित उपयोगका बन जाना इसका नाम है शुद्धोपयोग। स्वभाव शब्दका अर्थ है स्वभावरूप ज्ञान और विभाव ज्ञानका

अर्थ है विभावरूप ज्ञान।

समासोमे इष्टानिष्टता— कुछ पुरानी घटना है कि बनारसमें एक छोटी उम्रका बालक था, किन्तु था बहुत विद्वान्। बड़े-बड़े विद्वानोको अपनी विद्यासे छका देता था। एक बार विद्वानोका बहुत बडा सम्मेलन हुआ। उस सभाके अध्यक्ष बनाए गए गगाधर गुरु और वह छोटी उम्रका विद्वान् उस सम्मेलनमे न आ पाया। इसके लिए टिकटोकी व्यवस्था की गई। जिस विद्वान्के पास टिकेट होगा वही इसमे आ सकेगा और उसको टिकेट न दिया गया जो छोटी उम्रका विद्वान था व कुमार अवस्थाका नटखटी विद्वान था जो सबको अपनी विद्यासे छका देता था। उसने सोच लिया कि सम्मेलमे मै पहुचूँगा जरूर, किसी भी तरह पहुचूँ। उसने एक पालकी मँगवाई, चार कहार आ गए और एक आदमी चमर ढोलने वाला, दो आदमी छत्र लिए हुए अगल बगलमे खडे हुए। वह पालकी पर सवार हुआ और पालकीके चारो ओर खूब शृङ्गार किया जिससे उसकी शक्ल न साफ साफ दीखे। वह पालकीमे बैठ गया और सबको समझा दिया कि यह कहते जावो कि गगाधर गुरुकी जय। सो वे सब कहते जाये—गगाधर गुरुकी जय। पहरे पर जो टिकेटचेकर खडे हुए थे, उन्होने सोचा कि गगाधर गुरु आ रहे है इन्हें टिकेटकी क्या पूछना है? कितने ही लोग साथमें हो, इन्हें जाने दो।

जब सम्मेलनमे वह कुमार विद्वान् पहुचा तो उन सब विद्वानोको यह दिख गया, सो उनमे जो बूढे विद्वान् थे वे बोले कि तुम यहा कैसे आ गए? तुम्हें तो टिकेट भी नही मिली थी। तो बोला वाह गगाधर गुरुकी जय कहा कि इसका मतलब। बोला कि गंगाधर गुरुकी जय बोलते हुए हम पालकीमे आ गये। लोग कहते हैं कि तुमने झूठ क्यो बोला? क्या तुम्हारा गगाधर गुरु नाम है जो लोगोसे बुलवाते हो? वह बोला कि जिसने जय बोला है वे सत्य बोलते हैं, झूठ नहीं बोलते हैं। लोग कहते हैं कि कैसे है-सत्य? बालक बोला कि देखो—गगाधरगुरुका अर्थ क्या है— गगाधर गुरु' यस्य स गगाधरगुरुः। गंगाधर गुरु है जिससे उसका नाम है गगाधरगुरु। लोग कहते है वाह गगाधर गुरुका तो सीधा अर्थ हैं। गगाधर गुरु। इसमे कर्मधारयसमास है। यह तो विशेष्यविशेषणभाव है, तुमने यह नया समास कहांसे ढूँढ निकाला? गगाधरगुरु कहते हैं— गंगाधर है गुरु जिसका उसका नाम है गगाधर गुरु। सस्कृत जानने वाले यह समझ जायेंगे कि इसका अर्थ अशुद्ध नही है। लोग कहते हैं कि इसमे कर्मधारय समासको छोडकर बहुव्रीहि समासका अर्थ क्यो किया? तो

वह बालक बोला—गत्यन्तराभावात। तुम्हारे इस सम्मेलनमें मेरे आ सकनेका कोई दूसरा उपाय ही न था। इसलिए इसका बहुव्रीहि समास करके डंकेकी चोटसे आप लोगोंके बीचमें आ गया,तो भैया! समासोंमें ऐसा अद्भुत अर्थ हुआ करता है कि उनकी अपेक्षा को न जानें तो विवाद कर बैठें।

स्वभावज्ञानके लक्ष्य-- यहा बताया जा रहा है कि ज्ञान दो प्रकार के हैं—स्वभावज्ञान और विभावज्ञान। स्वभावज्ञान जो होगा वह बाधा-रहित अतीन्द्रिय अविनाशी और दोषरहित होगा। स्वभावज्ञान कहनेसे दो जगह दृष्टि देनी चाहिए। एक तो केवल ज्ञान पर और दूसरे आत्माके सहज ज्ञानस्वभाव पर। यह सहजज्ञानस्वभाव भी स्वभाव ज्ञान है और निर्दोष पवित्र अत्यन्त स्वच्छ केवल ज्ञान भी स्वभावज्ञान है। इसको स्वभाव कार्यज्ञान और स्वभाव कारणज्ञान—इस तरहसे दो भेदोंमें रखे। स्वभावकार्यज्ञान तो निर्मल केवल ज्ञान है जो कि सकलप्रत्यक्ष है और स्वभावकारण ज्ञान स्वभावकार्यज्ञानका कारण है।

स्वभावज्ञानकी निरावरणता-- यह ज्ञान त्रिकाल निरुपाधि है। स्वभावमें आवरण आ जाय तो स्वभावका ही विनाश हो। स्वभाव निरावरण है। स्वभाव स्वभावरूप ही तो है। उसमें आवरण माननेकी क्या आवश्यकता है? विभावरूप परिणमनके समय भी चूँकि स्वभाव स्वभाव ही रूप रहता है, शक्तिरूप है। अब इस शक्तिमें आवरणकी आवश्यकता नहीं है जिससे कि विभाव सिद्ध करने में सुविधा हो। विभाव दशामें आवरण है और वह आवरण व्यक्तिका आवरण है शक्तिका आवरण नहीं है। जैसा जीवका स्वभाव है तैसा प्रकट न होने देनेमें आवरण निमित्त होता है, पर शक्तिका आवरण नहीं होता है। यह सहज कारणज्ञान परमपारिणामिक भावमें स्थित है जो त्रिकाल निरुपाधि रूप है। इस सहजज्ञानका आश्रय करके ही सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक् चारित्रकी उत्पत्ति और पूर्णता होती है। इस सहजज्ञानके पोषणके प्रताप से, दर्शन और अवलम्बनके प्रतापसे ज्ञानकी वृत्ति ऐसी शुद्ध होती है कि उस ज्ञानव्यक्तिके द्वारा यह चेतन तीन लोक, तीन कालके समस्त पदार्थों को एक साथ स्पष्ट ज्ञानमें ले लेता है।

कारणस्वभावज्ञानके अवलम्बनसे कार्यस्वभावज्ञान-- भैया! जानन का परिश्रम कर करके कोई सर्वज्ञ नहीं बन सकता। जैसे धनका सचय करते-करते कोई धनी बन जाया करता है। इसी तरह यह ज्ञान पूर्ण करने की धुनमें ज्ञानको पैदा करके ऐसे विविधि ज्ञानोंका संचय करके कोई सर्वज्ञ

नहीं बन सकता है, किन्तु वह ज्ञानके संचय करनेकी बुद्धि त्याग कर मात्र सहजज्ञान जो सामान्यस्वरूप है, निर्विकल्प है उसका अवलम्बन ले तो ऐसे ज्ञानकी स्फुरणा होती है कि जिसके द्वारा यह समस्त विश्वका ज्ञाता हो जाता है। ऐसा यह सहज ज्ञानस्वभाव कारण ज्ञान कहलाता है स्वभावज्ञानको स्वभावकार्यज्ञान और स्वभावकारण ज्ञान— इन दो रूपोंमे बताया है, किन्तु विभावज्ञान शेष पर्यायरूप ज्ञान कहलाता है।

कुज्ञानोमे केवलविभावरूपता— विभावज्ञानोंमें से कुमति कुश्रुत, और कुअवधि ज्ञान ये तो केवल विभाव रूप हैं और मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मन पर्ययज्ञान विभावरूप तो है, पर इसमें स्वभाव प्रत्ययका सम्बन्ध होनेसे ये सब स्वभावरूप भी कहे जाते है और अपूर्ण व औपाधिक होनेसे विभावरूप भी कहे जाते हैं। चूँकि ये पूर्ण प्रकट नही हुए है और नैमित्तिक है। इस कारण ये भी विभावरूप ज्ञान कहे जाते है। इस विभावरूप ज्ञानमे जो कि केवल विभावरूप बताया गया है कुमतिज्ञान कुश्रुत ज्ञान और कुअवधि ज्ञान—इनमे विभावरूपता जो आयी है वह अन्यगुणोंके विकारके कारण आयी हैं; ज्ञानके विकारके कारण नही आयी। इस आत्माके जो मोह कलक लगा हुआ है उसके सम्बन्धसे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानमे कुत्सितपना आया है।

ज्ञानकी विकृतताका अभाव— भैया! ज्ञान आवृत तो होता है, परन्तु विकृत नहीं होता है। श्रद्धा और चारित्र गुण विकृत हुआ करते हैं ज्ञान गुण विकृत नहीं होता है। जीवका असाधारण स्वरूप हैं ज्ञान और दर्शन। ये ज्ञान दर्शन भी यदि विकाररूप हो जाया करते होते तब बड़ी कठिन नौबत आती, किन्तु ऐसा नहीं होता है। मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव के भी ज्ञान और दर्शन विकाररूप नहीं हुआ करते, पर उसके साथ जो मोह कलक लगा है सो वह विकार भी कुछ अलग तो नहीं है ना, एक ही आधारमें तो है। इस कारण ज्ञानमे कुत्सितपना आ जाता है।

विभावपरिणतिके प्रसगमे अचेतक अचेतकोका निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध— विभावपरिणमनमे निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध अचेतक अचेतकमे हुआ करता है, चेतन-चेतनमें नहीं होता है। जैसे पुद्गलद्रव्यमें अग्निका सम्बन्ध पाकर पानी उष्ण हो जाता है, सूर्यका सन्निधान पाकर पदार्थ उष्ण हो जाता है, वह अचेतक है और ये जल, पत्थर भी अचेतक है। यहा एकेन्द्रिय जीवसे मतलब नहीं है, क्योंकि जीवमे स्पर्श गुण नही हुआ करता है। जिस स्पर्शगुणका निमित्त पाकर दूसरे पदार्थका स्पर्श विकृत हो गया उस स्पर्शके आधारभूत अचेतनके नाते से ही इस दृष्टान्त

मे देखना। तो एक विकृत अचेतनका निमित्त पाकर दूसरा अचेतक पदार्थ
विकृत हो गया, इसी प्रकार आत्मामे विकार लाने के निमित्तभूत है पुद्-
गल कर्म। वह पुद्गल कर्म अचेतक है, पुद्गल ही तो है आखिर और उन
पुद्गलकर्मोके उदयका निमित्त पाकर श्रद्धा और चारित्रगुण विकृत हो
जाते हैं। सो यह श्रद्धा और चारित्रगुण भी अचेतक है अर्थात चेतने
वाले नहीं है। प्रतिभास इनका स्वरूप नहीं है। जो चेतकगुण हैं प्रतिभास
ने का स्वरूप रखते हैं उन गुणोंमें विभाव नहीं आता। वे केवल आवृत
होते हैं। न हो ज्यादा ज्ञान इतना ही ज्ञानावरण कर्मका निमित्त है पर हो
जाय उलटा ज्ञान ऐसा कोई निमित्त नहीं है। जानते हुएके साथ-साथ जो
राग और मोह लगा हुआ है वह सब है विगडी हुई श्रद्धा और चारित्रका
प्रताप।

ज्ञानकी यथार्थताका प्रभाव— भैया! कम जानना घातक नहीं है
किन्तु उलटा जानना घातक है। कितने ही शास्त्र और विद्याएँ पढ़कर यदि
ज्ञानकी मोड़ उलटी है तो उससे जीवका अकल्याण है और कोई विद्या
शास्त्रमें अधिक निपुण नहीं है, किन्तु ज्ञानकी मोड सीधी है तो वह
कल्याणका पात्र बनता है। एक बुढियाके दो लड़के थे। एक को तो दिखता
था थोड़ा-थोड़ा, किन्तु जैसा का तैसा और एक लड़के को दिखता था तेज
बड़ी दूरकी भी चीज किन्तु दिखता था पीला-पीला। दोनों लड़कोंको
बुढिया वैद्यके यहा ले गयी। तो वैद्यने दोनोंको एक दवा बतायी। यह
मोती भस्म ले जावो और चादीके गिलासमें गायके दूधमे इसे घोल करके
पिला देना। कुछ दिनमें इनकी ज्योति ठीक हो जायेगी। बुढिया दवा ले
गयी। पहिले कम दीखने वाले को दवा दी। चादीका ही कटोरा ले गायके
ही दूधमें मोतीभस्म मिलाकर दी तो वह लडका उस दवाको पी गया।
किन्तु, जब पीला-पीला दीखने वाले लड़के को दवा दी जाने लगी तो वह
बोलता है कि मा क्या मैं ही तुम्हारा दुश्मन हू जो पीतलके गिलासमें गाय
के मूत्रमें यह हडताल डालकर दे रही हो? इसे तो सब पीला पीला ही
दिखता था। उसने दवा नहीं पी। तो कम दीखने वाला तो औषधि सेवन
करके स्वस्थ हो गया, किन्तु तेज देखने वाला जिसे पीला-पीला ही दिखाई
देता था उसने औषधिका स्पर्श नहीं किया, फिर रोग कैसे दूर हो?

ज्ञानकी विभावरूपताका कारण— तो ज्ञानके साथ जो मोहकलंक
लगा रहता है उससे इसकी दशा बदल जाती है। वह मोह रागभाव इसको
सभालमे नहीं आने देता। हालाकि विद्या पढी है, जानकारी बढी है, तो
भी उस मोह रागकी तीव्रताके कारण यह सीधा ज्ञान नहीं करता और

जिसका मोह दूर हो गया है, सम्यक्त्व जग गया है ऐसा जीव मेढक हो, बैल हो, हाथी घोड़ा सिंह हो या कम पढ़ा लिखा भी मनुष्य हो वह अपने वर्तमान विकसित ज्ञानके बलसे सन्मार्गपर चल लेगा और सन्मार्गपर चलनेके प्रतापसे चूँकि यह भी बड़ी तपस्या है सो ज्ञानावरणका क्षयोपशम विशेष होने लगेगा और उसका ज्ञान बढ जायेगा। कम ज्ञानी पुरुषके केवलज्ञान नहीं हुआ करता है किन्तु सम्यक्त्व हो जाता है। यह सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्व और चारित्रके बलसे जब श्रेणीमे चढता है तो श्रेणीमे श्रुतज्ञानकी पूर्णता हो जाती है और उसके बाद फिर उसके केवलज्ञान होता है। यों जानना कि कुमति, कुश्रुति, कुअवधि तो केवल विभावरूप है और शेषके चार ज्ञानस्वभावके उन्मुख है, किन्तु विभावरूप है।

जीवके लक्षणभूत उपयोगके दो भेद बताये है— ज्ञान और दर्शन। उन भेदोंमे से ज्ञानके भेदका अब दो गाथावोंमे वर्णन करते हैं।

केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावणाणं ति।
सण्णाणिदरवियप्पे विहावणाणं हवे दुविहं ॥११॥
सण्णाणं चउभेयं मदिसुद ओही तहेव मणपज्जं।
अण्णाणं तिवियप्पं मदियादी भेददो चेव ॥१२॥

स्वभावज्ञानकी इन्द्रियरहितता— ज्ञानके दो भेद बताये गये थे— एक स्वभावज्ञान और एक विभावज्ञान। इस ही आधार पर इन भेदोंका विस्तार इन गाथावोंमे किया गया है। जो केवल है, इन्द्रियरहित है, असहाय है वह तो होता है स्वभावज्ञान। इस स्वभावज्ञानमे कार्यस्वभाव ज्ञान भी आ गया और कारणस्वभावज्ञान भी आ गया। कार्यस्वभाव ज्ञान केवल है, अकेला है। उसके साथ किसी भी प्रकारकी न द्रव्यात्मक उपाधि है और न भावात्मक उपाधि है। उपाधियोंसे रहित वह ज्ञानका स्वरूप है। इस कारण वह केवलज्ञान केवल है। यह केवलज्ञान ज्ञानावरणके अत्यन्त क्षयसे उत्पन्न होता है। वहा आवरण कोई नहीं रहता है, ऐसा निरावरणस्वरूप होनेके कारण वह ज्ञान इन्द्रियसे रहित है अर्थात् क्रम और व्यवधानसे रहित है।

इन्द्रियज्ञानका एक दोष— भैया! इन्द्रियज्ञान होता है तो उससे दो आपत्तियां आती हैं। एक तो ज्ञानका क्रम बन जाता है और दूसरे उसमे व्यवधान आ जाया करता है तो ज्ञान बद हो जाया करता है, दूसरे प्रकार होने लगता है। ये दो आपत्तिया इन्द्रियज ज्ञानमे है। इन्द्रियोंसे जो कुछ जाना-जाता है वह सब एक साथ नहीं जाना जा सकता है। रस भी चखते जायें, सुगध भी लेते जाएँ और राग भी सुनते जायें, स्पर्श भी

करते जाये और देखते भी जाये ये पाचों बातें एक साथ नहीं होती हैं। एक समयमे एक बात होगी।

इन्द्रियज्ञानमे सर्वत्र क्रमविपयता— यहा आप शंका कर सकते हैं कि हम तो पाचो ही बाते एक साथ दिखा दें तो। हा दिखावो भाई। अच्छा तो तुम बेसनकी कडी कड़ी तेलकी पपडिया बनावो पापड़ सरीखी पूरी पपडिया, आप मुँहमे रखें, पूरी तो मुँहमें न आयेगी किन्तु उसका कोई हिस्सा ही आये। तो उस समय देख लो कि कडी कड़ी पपडिया हैं, सो मुँहमे कडी लग रही है, स्पर्शमें आ ही रही हैं, खा रहे हैं सो स्वाद भी आ रहा है और खूब अच्छी वास देने वाले तेलकी बनी हैं। सो खूब खुशबू आ रही है, पपडियोको देख भी रहे हैं, उसके खानेमे कानो को आवाज भी सुनाई पड़ रही है। देखो पाचो इन्द्रियोंने एक साथ काम कर लिया कि नहीं? समाधान इसका यह है कि सिद्धान्तसे यह मत है कि पाचों काम एक समयमे नहीं हो रहे है। जैसे विजलीका पंखा जब हाई स्पीडसे चलता है तो क्या किसी को यह भी ज्ञात होता है कि ये पंखुडिया वेथा वेथा दूर पर हैं और ये क्रमसे चक्कर काट रही हैं। शीघ्र चलनेके कारण उनका क्रम नहीं मालूम होता है। तो विजलीके पखोसे भी तेज गति उपयोगकी है। यह उपयोग पचेन्द्रियके विषयोंमें क्रमसे चलता रहता है। पर इतनी द्रुतगतिसे उपयोग चलता है कि स्थूलरूपमे यह लगता है कि एक साथ जाना। वस्तुत वहा पर भी क्रमसे जाना गया है।

इन्द्रिय ज्ञानोंकी क्रमभाविताका एक अन्य दृष्टान्त-- अथवा दस बीस, पचास पान ले लो। एकके ऊपर एक पान धरा हुआ है और बडे जोरसे उस पानकी गड्डी पर एक पैना तेज सूजा मारा तो वे पचासों पान एक साथ छिदे या क्रमसे छिदे ? स्थूलरूपमे तो यह मालूम पडेगा कि वाह एक वारमें ही तो सभी पान छिद गए, पर वे सभी पान क्रम क्रमसे छिदे। तो जो द्रुतगतिसे चलता है उसका क्रम चाहे मोटे रूपमे विदित न हो सके, पर वहा क्रम होता है।

कार्यस्वभावज्ञानमे क्रमरहितता व व्यवधानरहितता— केवल ज्ञानमें ज्ञानका कोई क्रम नहीं रहता। जो कुछ जाना जाता है तीन लोक, तीन कालके समस्त पदार्थ वे सब एक साथ स्पष्ट जाने जाते हैं। चूंकि वहा पर इन्द्रिया नही रहीं, इसलिए सब एक साथ स्पष्ट ज्ञात होता है। कोई आवरण ही नहीं रहा। तो स्वभावज्ञान कार्यस्वभाव ज्ञान क्रमके दोषसे रहित हैं। साथ ही उस स्वभाव ज्ञानमे व्यवधानकी कभी आशंका नहीं। हम और आपके सामने कोई चीज आड़े आ जाय तो आगेका ज्ञान नहीं

हो पाता। जब व्यवधान नहीं होता तब तो ज्ञान होगा और व्यवधान आ गया तो ज्ञान न हो सकेगा। पर केवलज्ञानमें व्यवधानकी कभी शंका ही नहीं। किसी वस्तुका व्यवधान होता ही नहीं क्योंकि निरावरण ज्ञान है, वह ज्ञान अपने आपमे रहता हुआ पूर्ण विकासमे पड़ा है, सो अपनी कलासे समस्त पदार्थोको बिना किसी शकाके स्पष्ट जानता है। तो यह स्वभाव कार्य ज्ञान इन्द्रियरहित है।

स्वभावज्ञानकी असहायता— यह केवल ज्ञान असहाय है। असहाय होना अच्छी बात है या बुरी बात है? लोग तो यों मानेगे कि असहाय होना बुरी बात है। वह बेचारा असहाय हो गया। यहा असहायका अर्थ है कि जहां किसीकी सहायताकी आवश्यकता ही नही है। स्वयं समर्थ है, और यह अकेला ही अपनी समस्त क्रियाएँ करनेमे परिपूर्ण समर्थ है। ऐसा असहाय यह केवलज्ञान है। यह प्रत्येक वस्तुमें जुदा-जुदा नहीं व्यापता है, किन्तु एक साथ समस्त वस्तुवोमे व्यापता है अथवा वस्तुका या अन्य स्वभावका सहारा लेकर वस्तु-वस्तुमे अपना लक्ष्य ले जाकर यह स्वभाव कार्य ज्ञान नही जानता है, किन्तु यह अपने आपके स्वरूपमें ठहरता हुआ अपने स्वभावसे जो कुछ भी सत् है उस सबको जानता है। हमारा ज्ञान एक-एक वस्तुमे डोलता रहता है, इसलिए अनेक सहायोकी आवश्यकता रहती है। पर केवलज्ञान सहायताकी अपेक्षासे रहित है।

सहायताकी निन्दा गर्भता— भैया! किसीके बहुत सहायक हों तो यह उसकी प्रशंसा है या निन्दा? परमार्थसे वह निन्दा है अर्थात् वह स्वयं समर्थ नही है, स्वयंमे इतनी प्रभुता नहीं है इसलिए इसके दसों सहायक हैं और तभी काम चल पाता है। यह तो लोककी बात है। यों तो असहाय सहायोंसे भी लोकमे बुरे माने जाते है और उन्हें कहते हैं बेचारे। जिनका चारा नही है, गुजारा नहीं है, सहारा नही है उन्हें कहते हैं बेचारे और कभी-कभी तो दया करके साधु संतोंके प्रति भी लोग कह बैठते हैं कि बेचारे बड़े सीधे हैं। तो बेचारे माने असहाय, जिनका कोई चारा नहीं। तो लौकिक दृष्टिमे असहाय बुरा माना जाता है और ससहाय ऊँचा माना जाता है, पर वस्तुस्वरूपकी ओरसे देखा जाय तो ससहाय हलका है और असहाय सर्वोच्च है। यह केवलज्ञान असहाय ज्ञान है। इस तरह कार्य-स्वभाव ज्ञान केवल है, इन्द्रियरहित है और असहाय है।

कारणस्वभावज्ञान व कार्यस्वभावमें विशेषणोंकी समानता— स्वभावज्ञानके दो भेद किए गये थे—एक कार्यस्वभावज्ञान और एक कारण स्वभाव ज्ञान। कार्यस्वभाव ज्ञान तो केवल ज्ञानका नाम है और कारण

स्वभावज्ञान इस आत्माके उस ज्ञान प्रकाशका नाम है। जो अनादि अनन्त अहेतुक अतःप्रकाशमान है। उस कारणस्वभाव ज्ञानमे क्या विशेषता है, जिन विशेषणोंसे हम उसका परिचय पाये? ऐसा प्रश्न होने पर खास उत्तर है कि जो विशेषण कार्यमे लगते हों, स्वभावज्ञानमे लगती हों वे ही विशेषण कारणस्वभावज्ञानमें लगते हैं।

कारणस्वभाव व कार्यस्वभावमें समानताका दृष्टान्त-- कोई पूछे कि निर्मलजल कैसा होता है जिसके अन्दर कीच न हो, रंग न हो, मैल न हों, चम्बल नदी जैसा निर्मल पानी हो—उसे कोई पूछे कि यह निर्मल जल कैसा होता है? तो वह सब बतावेगा कि स्वच्छ है, कीचड रहित है, किसी रगसे रंगीला नहीं है, निर्दोष है। जो भी शब्द वह कहे--बतायेगा निर्मल जलका गुण और फिर पूछे कि जलका स्वभाव कैसा होता है, चाहे गदे कीचड भरे मलिन जलको कटोरीमे भरकर पूछे कि बतावो इस जल का स्वभाव कैसा है? तो उतनी ही बाते कहेगा जितनी कि निर्मल जलको बतानेमें कही हैं। निर्मल जल गदगीसे रहित है। तो क्या जलस्वभाव गदगीसे सहित है। जलस्वभाव भी गदगीसे रहित है। निर्मल जलस्वच्छ है तो जलका स्वभाव भी स्वच्छ है। जितनी बाते निर्मल जलका स्वरूप बतानेमे कही गयी उतनी ही बाते जलका स्वभाव बतानेमें कही जायेगी।

कार्यस्वभावज्ञान व कारणस्वभावज्ञानमे समानताका निरूपण-- यहा कार्यस्वभाव ज्ञान केवल है तो यह ज्ञायकस्वभाव अर्थात् कारण स्वभाव ज्ञान भी केवल है। क्या यह दुकेला है? इसके साथ कोई अन्य द्रव्यात्मक या भावात्मक उपाधि लगी है क्या? किसमें? ज्ञानस्वभावमे? ज्ञानव्यक्तिकी बात नहीं कही जा रही है किन्तु सहजज्ञानस्वभावकी बात कहीं जा रहीं है। यह कारणस्वभाव ज्ञान भी कवल है। कार्यस्वभाव ज्ञान इन्द्रियरहित है तो कारण स्वभाव ज्ञान भी इन्द्रियरहित है। क्या सहज ज्ञानस्वभावमे इन्द्रिया हैं? नहीं। वहा तो केवल ज्ञान ज्योति मात्र है। तो यह भी इन्द्रियरहित है। कार्यस्वभाव ज्ञान जैसा निरावरण स्वरूप है उस ही प्रकार सहजज्ञानस्वभाव भी निरावरणस्वरूप है। फिर पूछेंगे कि ससारी जीवोंके ये ज्ञान अविमूर्त क्यों नहीं हैं? तो प्रकट यह पर्यायोंका कार्य है। और पर्याय कार्यके लिए इस संसारी जीवमें आवरण लगा हुआ है। पर ज्ञानस्वभावमें आवरण कुछ नहीं है।

स्वभावज्ञानमे सामर्थ्य-- स्वभाव तो शक्ति मात्र है। प्रकट हो तो क्या, न प्रकट हो तो क्या, शक्ति तो शक्ति ही है। जैसे- कार्यस्वभावज्ञान

असहाय था अर्थात् स्वतन्त्र था, प्रभु था, समर्थ था। इसी प्रकार कारण स्वभाव ज्ञान भी स्वतंत्र है, समर्थ है, शक्तिरूप है, वह किन्हीं परवस्तुवो मे नही व्यापता है, वह तो अपने स्वरूप मात्र है। यो कारणस्वभाव ज्ञान भी कार्यस्वभाव ज्ञानकी तरह एक साथ अपनी जाननवृत्ति करनेमे समर्थ है। कार्यस्वभाव ज्ञान तो तीन लोक, तीन कालके समस्त पदार्थोंको एक साथ जाननेमे समर्थ है और यह ऐसे समस्त पदार्थोको एक साथ जाननेमे सदा सामर्थ्यरूप है। निज परमात्मतत्त्वमे स्थित सहज गुणोरूप जो निज कारणसमयसार है उस स्वरूपसे उस स्वभावको स्वभावित करनेमे समर्थ है। इसका जानन प्रकट आकाररूप नही है। प्रकट आकाररूप जानन तो कार्यरूप जानन बन जायेगो। यही है स्वभावकारण ज्ञान। इस तरह स्वभाव ज्ञानका स्वरूप कहा गया है।

आत्मचर्चा— वह ज्ञान कार्यरूप भी है और कारणज्ञानरूप भी है। यह चर्चा चल रही है अपने आपके स्वरूपकी। यह दूसरे की चर्चा नही है। जो मनको बाहर दौड़ाये या इन्द्रियोंको बाहर चलाये उससे समझमे आ जाय ऐसी बात नही है। ध्यान देने से ये सब बातें धीरे-धीरे समझमे आ ही जाती हैं और ध्यान न दिया जाय, रोज ही ध्यान न दिया जाय तो कभी समझमे नही आ सकता है। फिर तो एक आदतका शास्त्र सुनना रह गया।

लापरवाह श्रोतावोकी योग्यता— किसी ब्रह्मचारी जी ने कहीं पूछा किसी ऐसे श्रोतागणसे जो सुनने तो खूब आता हो, किन्तु ज्ञान न हो, अत्यन्त अपरिचित पुरुषकी बात कह रहे हैं। क्यों भैया! जानते हो ना इन्द्रियां ५ होती हैं। हा हा जानते है। अच्छा बतावो पचेन्द्रिय जीव कौन है? तो एक श्रोताने कहा कि पचेन्द्रिय जीव तो हाथी है जिसके चार चार पैर हैं और एक सूंड है। बहुत ठीक और चारइन्द्रिय कौन है? चार-इन्द्रिय, अच्छा जरा सोच ले फिर बतावेंगे। अच्छा सोच लो। सोच लिया चारइन्द्रिय तो घोड़ा है क्योकि चार पैर है और सूँड नदारत है। ठीक है और तीन इन्द्रिय क्या है? श्रोता कहते है कि तीन इन्द्रिय है तिपाई। जिसमे तीन पाये लगते हैं, लालटेन धरनेके काम आती है। तीन पाये का स्टूल अथवा खलिहानमे जिस पर चढकर भुस भरकर बिखेरते हैं तो भुस अलग हो जाता है और अनाज अलग हो जाता है। ठीक है, अच्छा बतावो दो इन्द्रिय जीव कौन है? श्रोता बोला कि दो इन्द्रिय तो हम हैं, कैसे कि हम है और हमारी घरवाली है। दो जने हैं हम। ठीक है और एकेन्द्रिय जीव कौन है? तो श्रोता बोले कि महाराज तुम हो। तुम अकेले

ही तो हो। यह तो बात एक आप लोगोंकी नींद हटानेके लिए कही है। इतने अपरिचित आप होंगे ऐसी आशा नहीं है, पर कठिनसे कठिन बात हो और जो किसी न किसी रूपमें रोज रोज कही जा रही हो, ध्यानसे सुनने पर कभी तो समझमें आयेगी ही ना।

ज्ञानभेदविस्तार— यहां अभी यह बताया है कि ज्ञान दो प्रकारके हैं। वे हैं स्वभावज्ञान और विभावज्ञान। ऐसे दो प्रकारके ज्ञान हैं। उनमें से स्वभावज्ञान दो प्रकारका है। एक कार्यरूप स्वभावज्ञान, जो भगवानके हुआ करता है और एक कारणरूप स्वभावज्ञान जो सभी जीवोंके अपने आपके स्वरूपमें सनातन प्रकाशमान् रहता है। प्रभुमें भी है, संसारी जीवों में भी है। ऐसे उस शुद्ध ज्ञानकी चर्चा करके अब विभावज्ञानकी बात कही जा रही है। उन विभावज्ञानोंमें से कुछ ज्ञान तो सम्यक् विभाव हैं और कुछ ज्ञान मिथ्याविभाव हैं। सम्यग्ज्ञानरूप विभावज्ञान और मिथ्याज्ञान रूप विभावज्ञान, या यों कह लो, शुद्धाशुद्ध विभावज्ञान और केवल अशुद्ध विभावज्ञान।

केवल शब्दका विशेषण विशेष्य शब्दके साथ भावदर्शिता— "केवल अशुद्ध" कहने से कहीं यह खुशी नहीं मनाना है, केवल शब्द लग गया जो केवल भगवान्के भी लगता है वह केवल शब्द लगा दिया। केवल अशुद्ध विभावज्ञान कुमति, कुश्रुत और कुअवधि हैं। जैसे दूसरे गुणस्थान का नाम क्या है? सासादनसम्यक्त्व तो सुनकर लोग खुश होते कि चलो यहां सम्यक्त्व तो है कुछ। सासादन ही सही, पर सम्यक्त्व तो वहां है ही नहीं। सम्यक्त्व नष्ट होने पर ही सासादनसम्यक्त्व होता है। फिर सासादनके साथ सम्यक्त्व शब्द क्यों लगाया? निर्धन शब्दके साथ धन शब्द जुड़ा है तो उससे कोई धनकी बात आयी क्या? उसके साथ निर् तो लगा है। निर्धनका अर्थ धनरहित है। तो सासादनका अर्थ है—विनाश सहित, आसादन मायने विनाश नष्ट हो गया है सम्यक्त्व जिसका उसे कहते हैं सासादन सम्यक्त्व। तो इस प्रकार केवल विभावज्ञानकी बात है। अर्थात् जहां सिर्फ अशुद्धता ही अशुद्धता है शुद्धताका नाम भी नहीं है, उसे कहते हैं केवल अशुद्ध विभावज्ञान।

विभावज्ञानके प्रकार— विभाव ज्ञान ७ होते हैं। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और कुमतिज्ञान, कुश्रुत ज्ञान, कुअवधि ज्ञान। इनमें शुरूके चार शुद्धाशुद्ध विभावज्ञान हैं अथवा सम्यग्ज्ञान रूप विभावज्ञान हैं और अंत. जो ३ मिथ्या विभावज्ञान हैं वे केवल अशुद्ध विभाव ज्ञान हैं। अब इनका वर्णन क्रमसे आयेगा।

विभावज्ञान— ज्ञानके भेदमे से विभावज्ञानोंका वर्णन चल रहा है। विभावज्ञान, सम्यक् विभाव और मिथ्याविभाव इस तरह दो रूपोमे है। सम्यक् विभाव ज्ञान चार हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान। उनमेसे जो मतिज्ञान है और श्रुतज्ञान हैं ये दो ज्ञान प्रत्येक ससारी जीवके होते है। किसीके सम्यक्रूप है, किसीके मिथ्यारूप है। जब तक केवलज्ञान उत्पन्न न हो तब तक मतिज्ञान और श्रुतज्ञान प्रत्येक संसारी जीवके रहा करता है। उनमे से मतिज्ञान अनेक भेदरूप है। मतिज्ञान इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न होता है। सो यह लब्धिरूप और उपयोगरूप दो प्रकारसे होता है। लब्धिरूप मतिज्ञानका अर्थ यह है कि उसका क्षयोपशम हुआ, योग्यता हुई और उपयोगरूप मतिज्ञानका अर्थ यह है कि उसके जाननमे लग गए। जैसे किसी मनुष्यको ५ भाषाएँ आती हैं, हिन्दी भाषाका वह पत्र पढ़ रहा है तो हिन्दी भाषा तो उपयोगरूप हो रही है और चार भाषाए उसकी लब्धिरूप हैं।

मतिज्ञानके भेद— अब मतिज्ञानके भेद देखो, मूलमे इसके चार भेद हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। विषय अर्थात् ज्ञेयपदार्थ और विषयी अर्थात् इन्द्रिय—इन दोनोका योग्य सम्यग्ज्ञान होने पर, ऐसे वातावरणमे आने पर कि जहा विषयोंका ग्रहण हो सकता है, उस समय जो सर्वप्रथम ज्ञान होता है उसे अवग्रह ज्ञान कहते हैं। और अवग्रहसे जानते हुए ही पदार्थका कुछ विशेषरूपसे जानन होना किन्तु निश्चय नही है, हैं जानन सच्चा उस ही पदार्थरूप जो संदेहकी कोटिसे ऊपर उठ गया है ऐसे ज्ञानको ईहा ज्ञान कहते हैं। और उसका निश्चय हो जाये सो अवायज्ञान है, फिर उस ज्ञानको भुला न देना धारणा ज्ञान है।

दृष्टान्तपूर्वक मतिज्ञानके भेदोंका विवरण— अमूमन ये चार ज्ञान जीवोके क्रमसे प्राय होते हैं। पहिले किसी प्रकारसे जाना तो सामान्यरूप से जान पाया, थोड़ा रूपसा, थोड़ा आकार सा कुछ समझमे आया। उसके बादमे कुछ विशेष बात समझमे आती है। फिर उसका निश्चय होता है। इतनी पक्की धारणारूप ज्ञान बने कि उसे फिर कभी भूलें नहीं। जैसे कहीं घूमने चले जा रहे हो, सुबहका टाइम हो, कुछ अंधेरा और कुछ उजेला हो। बहुत दूर पर कोई सफेद झंडी फहरा रही हो वह देखनेमे आयी सो पहिले यह ज्ञान हुआ कि यह सफेद इस जगह इस प्रकरण की कोई चीज है। थोड़ा और चले तो ज्ञान हुआ कि अरे यह पत का है। फिर थोड़ी देर बाद निर्णय हुआ कि यह पताका ही है। फिर उसे नहीं भूलता। इस प्रकार चार कोटियोमे ज्ञान हुआ।

मतिज्ञानके भेदोंकी उत्पत्तिका क्रम— भैया ! किसीके कभी अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा इस क्रमसे होता है अवग्रह, अवाय, धारणा इस तरह, किसीके अवग्रह और धारणा इस तरह हो जाते हैं। जो चीज अपने परिचयमे नहीं आयी उसके बारेमें तो अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चारो क्रमसे होते हैं, किन्तु जिस चीजको हम रोज-रोज देखते हैं, हमारे परिचयमे आती हैं ऐसी चीज इस अवग्रहके होते ही निश्चित हो जाती है और धारणा होती है, वहा ईहा नही आती, ईहा ज्ञान कुछ अपरिचित सी चीजके ज्ञानके समय होती है। जैसे रोज मदिर आते हैं और मदिरमे जितनी चीजे है, वेदी है, प्रतिमा है उनको आप रोज देखते हैं वहा ईहाकी क्या जरूरत है ? देखा और निश्चय किया यह अमुक है तो कहीं अवग्रह, अवाय और धारणा इस तरह तीन ज्ञान होते हैं और किसी चीजमें जो अत्यन्त निर्णीत है, उस चीजके ज्ञानके प्रति सम्मुख हुए कि तुरन्त धारणा हो जाती है। तो इस मतिज्ञानके ये चार भेद हैं— अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा।

मतिज्ञानके प्रभेद— ये चारों प्रकारके ज्ञान १२ प्रकारके पदार्थोके होते हैं। बहुत चीजोंका जानना एक चीजका जानना, बहुत प्रकारकी चीजोंका जानना एक प्रकारकी चीजोंका जानना, शीघ्र जानना, देरमें जानना, न निकले हुएको जानना, निकले हुएको जानना, न कहे हुएको जानना, कहे हुएका जानना, ध्रुवको जानना और अध्रुवको जानना, यह सब अपने व्यवहारमे आने वाले ज्ञानकी कहानी है कि हम किस प्रकार जानते हैं ? कैसे जानते हैं ? ऐसे जाननकी यह कहानी है।

मतिज्ञानके प्रभेदोंका विवरण— कहीं हम बहुतसी चीजोंको एक निगाहसे परख लेते हैं। गेहुवोंका ढेर रखा है, उनको देखकर जो जानन हुआ वह बहुत प्रकारका ज्ञान कहलाता है। होता है ना आप हम सबका ज्ञान कि बहुतसी चीजे हैं और हम एकदम जान गए। और एकका भी ज्ञान होता है। एक ही चीज है, हम उसे जान गए। बहुत प्रकारकी चीजें हैं और हम जान जाते हैं। चना, जौ, गेहू का कितना ही मिला हुआ ढेर हो, जिसे आप विर्रा कहते हैं तो वह अनेक प्रकारका है, उसे जान गए, यह हुआ बहुविध ज्ञान और एक प्रकारका ज्ञान। जैसे एकसे गेहुवों की राशि लगी है, तो जान गए हम बहुतको किन्तु वे सब एक प्रकारके हैं। तो यह भी एक ज्ञान होता है। शीघ्र जाती हुई चीजको हम जान लेते हैं, धीरे जाती हुई चीजको हम जान लेते हैं और कभी किसी बातको हम शीघ्र जान लेते हैं, कभी किसीके जाननेमे विलम्ब लगता है, तो इस तरह

भी इस प्रकारसे ज्ञान होता है। देखा होगा व भी एकदम प्रकट हुई चीजको जानते हैं, कोई प्रकट नही है। कुछ एक देश ही प्रकट है उसे जान लेते है उससे सबको जान लेते हैं। जैसे पानीमे हाथी डूबा है और उसकी सिर्फ सूढ ऊपर है, हाथी ही एक ऐसा जानवर है कि सारा शरीर पानीमे डूब जाय फिर सूढ़की नोक जरासी बाहर रहे तो उसका कोई नुक्सान नही है। सास लेने की जो नाक है वह पानीसे ऊपर रहे। केवल उसकी सूढको देखकर यह जान जाये कि यह हाथी है ऐसा भी तो ज्ञान होता है। और कभी एकदम प्रकट पूरा निकले हुएका ज्ञान होता है उसे जानना वह भी ज्ञान होता है। कभी बात नहीं कही गयी, कहनेको था ही कि बड़ी भारी बात जान गए, ऐसा भी ज्ञान होता है। कभी पूरा कहा जाय तब जाने, ऐसा भी ज्ञान होता है। इसे कहते हैं अनुक्त और उक्त ज्ञान।

अनुक्त और उक्त अर्थके ज्ञानका विशेष रहस्य— अनुक्त और उक्तका दूसरा अर्थ यह भी है कि जिस इन्द्रिय द्वारा जो बात जानी जाती है उस इन्द्रिय द्वारा उतनी बातको जानकर फिर दूसरी बात भी जान जाय इसे कहते हैं अनुक्त ज्ञान और जिस इन्द्रियसे जो बात जानी जाती है। केवल वही जानी जाय इसे कहते है उक्त ज्ञान। जैसे आंखसे निम्बू देखा। आखसे देखते ही निम्बूकी खटासका भी ज्ञान हो गया। अभी खाया नहीं पर हो गया ज्ञान। ऐसा भी ज्ञान हुआ करता है। कोई आख मीच ले और आख मीचने में ही कहे कि लो यह चीज खावो। वह मुखसे खा रहा है, आखोंसे नहीं देख रहा है। फिर भी उसके स्वादके कारण यह ज्ञान हो गया कि यह खीर है, चावलकी है, सफेद है, इसमे बूरा पड़ा है, दूध पडा है अथवा अंधेरेमे आम चूसते हुएमे आमका पूरा ज्ञान रहता है। यह सब अनुक्त ज्ञान कहलाता है। और जितनी बात सामने प्रकट हुई है उतना ही जाने यह उक्त ज्ञान है।

प्रथम प्रभेदोंका योग— यह सब हम और आप जिस रीतिसे जान रहे हैं उसकी यह सब कहानी है। हम किस किस ढंगसे जाना करते हैं? हम जानते है और जाननेके ढगोका ही पता नहीं रहता। आचार्यदेवने हमारे और आपके जाननेके ढगोंको बताया है। एक ध्रुव पदार्थका ज्ञान होता है और एक अध्रुव पदार्थका ज्ञान होता है। जो स्थिर है उसका भी ज्ञान हो रहा है, जो स्थिर नहीं है बिजली चमकी, तुरन्त खत्म हो गई उसका भी ज्ञान होता है। तो इस तरह १२ प्रकारके पदार्थोंका हमे अवग्रह होता है, ईहा होता है, अवाय और धारणा ज्ञान होता है। इस तरह मतिज्ञानके भेद हुए १२×४=४८।

मतिज्ञानके प्रभेदोंके भेदोंकी प्रस्तावना— यह हमारे और आपके उस ज्ञानकी बात कही जा रही है जो इन्द्रियोंके द्वारा और मनके द्वारा सीधा जो कुछ जानता है। इसको ४८ भेदोमे से जो अवग्रहके १२ भाग हैं सो अवग्रह कई तो अधवीचमे टूटासे हो जाते हैं और कई अवग्रह पूरे होते हैं। जैसे रास्तेमे चले जा रहे है, कोई चिडियाकी आवाज आय या किसी अन्य चीजकी आवाज है तो थोडा ज्ञानमे आया, पर उसके बारे मे और कुछ ज्यादा ऐसा न जान सके कि जिसके ऊपर हम कुछ निश्चय भी कर सके। ऐसे टूटे अवग्रहको व्यजनाव्यग्रह कहते हैं और जो इतना सा समर्थ अवग्रह होता है कि जिसके बाद हम पदार्थके निर्णय करनेके पात्र बनते हैं उसे अर्थविग्रह कहते हैं। ऐसा होता है ना हम आपका ज्ञान। अब ५ श्रेणियोमे मतिज्ञानको रखो। व्यञ्जनावग्रह, अर्थावग्रह ईहा, अवाय और धारणा--ये पाचो ज्ञान १२ प्रकारके पदार्थोमे होते हैं।

मतिज्ञानकी उत्पत्तिके साधन— यह ज्ञान इन्द्रियो द्वारा और मन द्वारा होता है। ५ तो है ये इन्द्रिया-स्पर्शन जिससे ठंडा गरम आदिक स्पर्श किया जाता है। रसना—जिसके द्वारा खट्टा मीठा आदिक रस जाने जाते हैं। घ्राण—जिससे गध जाना जाता है। नेत्र--जिससे रूप जाना जाता है। कर्ण—जिससे शब्द जाना जाता है और मन जो अनेक विकल्प किया करता है। यह मतिज्ञान इन ६ साधनोसे उत्पन्न होता है—५ इन्द्रियां और एक मन।

व्यञ्जनावग्रहादिके भेद— इनमे से व्यञ्जनावग्रह तो चार साधनों से होता है। नेत्रसे और मनसे व्यञ्जनावग्रह उत्पन्न नहीं होता है। इसका कारण यह है व्यञ्जना है अधटूटा अवग्रह। चक्षुसे हम जो जानेंगे वह पूरा जान जायेंगे, उसमें अधूरी बात नही रहती। इसी तरह मनसे जो जाना वह भी अधूरा नहीं रहता और शेष जो स्पर्शन, रसना, घ्राण, कर्ण इन चार इन्द्रियोंसे जो जानेगा वह अस्पष्ट भी जान सकता है और स्पष्ट भी जान सकता है पर आंखोसे जो जाना जायेगा वह तो तुरन्त ही स्पष्ट हो जायेगा और मनसे जो जाना जायेगा वह भी स्पष्ट हो जाता है। तभी तो लोग आंखोसे देखी हुई चीजका ज्यादा भरोसा रखते हैं। कानसे सुनी हुई चीजका पक्का भरोसा नही रखते हैं। कारण यह है कि आखोसे जो ज्ञान होता है वह स्पष्ट ज्ञान होता है। तो व्यञ्जनावग्रह जो १२ प्रकारका है वह चार साधनोका हुआ, इसलिए व्यञ्जनाके १२×४=४८ भेद हो गए अर्थवग्रह ६ ही साधनोसे हुआ करते है। ५ इन्द्रिया और १ मन, से अर्थवग्रहके ७२ भेद हुए, ईहाके ७२, अवायके ७२ और धारणाके ७२। इस तरह सब मिला

कर मतिज्ञानके ३३६ भेद हो जाते है।

ज्ञानोके ज्ञानका प्रयोजन— इन सब ज्ञानोके बतानेका प्रयोजन यह है कि हम ज्ञानको ढंगसे पहिचानें और यह परिणमन किस स्वभावसे, किस गुणसे उत्पन्न होता है इस शक्ति पर दृष्टिपात करें और उस शक्तिमात्र अपने आपका विश्वास करें जिससे यह सुविदित हो जाय कि मेरे आत्मा का अन्य समस्त परपदार्थोसे रंच सम्बन्ध नही है। मैं हू और अपने कारण अपने आपमे सदा परिणमता रहता हू। इस श्रद्धाका कारण बने ऐसे ज्ञान को यह चर्चा की जा रही है। जो बात जिस विधिसे ज्ञात हो सकती है उसको उस विधिसे जानना सो सम्यग्ज्ञान व सम्यक् उपाय है।

अप्रायोजनिक विधिसे विडम्बना— एक अधा आदमी था। उससे एक बालकने कहा कि बब्बा आज तुम खीर खावोगे? बब्बा तो जन्मके अधे थे उन्हे क्या पता था कि खीर कैसी होती है? सो बब्बा बोले कि बेटा खीर कैसी होती है? तो लड़का बोला कि बब्बा खीर सफेद होती है सफेद। अब बब्बाने सफेद कभी देखा हो तो जानें। उन्हे क्या पता कि सफेद कैसा होता है? सो पूछा कि सफेद कैसा? लड़का बोला बगले जैसी सफेद होती है। बगला कैसा होता है? लड़केने बब्बाके सामने बगला जैसा टेढा हाथ करके कहा कि देखो बगला ऐसा होता है। बब्बाने हाथसे टटोल कर देखा तो कहा कि अरे हम ऐसी टेढी खीर नही खायेंगे यह तो हमारे पेटमे गडेगी। एक कहावत भी बन गयी है कि यह तो टेढी खीर है यानि बात कुछ समझमे नही आती, बुद्ध आदमी है उसके लिए तो टेढ़ी खीर है। तो खीरके समझाने का यह कोई ढग था क्या? अरे खीरका रस उसे बताना चाहिए था, किन्तु धीरे-धीरे बढ बढकर आकार सामने धर दिया तो उसको खीरका ज्ञान कैसे हो सकता है?

निर्मोहताके प्रयोजक ज्ञानकी दृष्टि— इसी तरह निर्मोहता की तो बात सीखनी चाहते हैं और जैसे निर्मोहता आए उस प्रकारका हम ज्ञान करना नहीं चाहते। निर्मोहतासे प्राप्त होने वाला चारित्र और चारित्रके फलके बजाय आकांक्षाकी कोशिश करने पर निर्मोहताके उपायको नही करना चाहते तो निर्मोहता कैसे प्राप्त हो सकती है? स्वय कैसे है, कितने हैं यह अपने आपकी झलक आए बिना निर्मोहता प्रकट हो ही नहीं सकती है। सो जिन ज्ञानोको हम करके हम आप व्यवहारोमे फसते है उन ज्ञानो की जड़ क्या है? इस बातको बताने के लिए इस प्रकरणमे यह ज्ञानका वर्णन चल रहा है।

द्वितीय सम्यक् विभाव ज्ञान— सम्यक् विभाव ज्ञानोमे द्वितीय ज्ञान

है श्रुतज्ञान। मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थमें उससे संबधित अन्य बातोंको समझना सो श्रुतज्ञान है। यह श्रुतज्ञान लब्धिरूप और उपयोगरूप होता है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान प्रत्येक ससारी जीवके है, किन्तु जिस समय मतिज्ञानका उपयोग है उस समय श्रुतज्ञानका विकल्प नहीं है और जब श्रुतज्ञानका विकल्प है तब मतिज्ञानका उपयोग नहीं है, किन्तु लब्धि सदा बनी रहती है। श्रुतज्ञान एकइन्द्रिय जीवके भी है, सज्ञी पचेन्द्रियके भी है और बारहवें गुणस्थानवर्ती मुनिराजके भी है। मोक्षमार्गके प्रकरणमें श्रुतज्ञानका वर्णन द्वादशाग रूप श्रुतज्ञानसे होता है। यों खाने पीने खेलने कूदने रागद्वेष—इन प्रकरणोंमे जो श्रुतज्ञान चलता है उस श्रुतज्ञानसे क्या हित है?

मोक्षमार्गका प्रयोजक श्रुतज्ञान— मोक्षमार्गका प्रयोजनभूत हितरूप श्रुतज्ञान द्वादशांग रूप है और उस ही श्रुतज्ञानकी मुख्यता करके तत्त्वार्थसूत्रमें जहा श्रुतज्ञानका लक्षण कहा गया है, बताया है, "श्रुत मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम्।" श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है। और वह दो भेदवाला है। अगबाह्य और अगप्रविष्ट। अगप्रविष्टके १२ भेद हैं, जिन्हें द्वादसाग बोलते हैं और अगबाह्यके अनेक भेद हैं। सबसे छोटा श्रुतज्ञान अक्षरश्रुतज्ञान है और अक्षर मात्र भी नहीं, किन्तु अक्षरके अनन्तवें भाग श्रुतज्ञान है। अक्षरके अनन्तवें भाग श्रुतज्ञान निगोद जीवके होता है। ऐसा समझलो मोटेरूपमें कि एक अक्षरमें जितनी समझ आती है उस समझका भी अनन्तवे भाग समझ निगोदिया जीवमे है। फिर बढते-बढते अक्षर-अक्षर समास, पद, पद समास—इस तरह अनेक भेद होते हैं। यों बढते-बढ़ते फिर आम्बराग सूत्र कृताग आदिक १२ अग हो जाते हैं।

वेद, श्रुति, स्मृति, पुराण— भैया! प्रसिद्ध है लोकमें कि ४ वेद होते हैं और ६ अग होते हैं। ४ वेद हैं प्रथमानुयोग, करुणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग। जिनसे ज्ञान हो उन्हें वेद कहते हैं। उन ज्ञानोंका नाम वेद है और १२ अग हुआ करते हैं। एक और प्रसिद्धि है कि वेदसे श्रुति निकली, श्रुतिसे स्मृति निकली और स्मृतिसे पुराण निकले। इस तरह वेद, श्रुति, स्मृति और पुराण चार भागोंमे ज्ञानका विस्तार है। इस प्रसगमें वेद नाम है सम्पूर्ण वेदका। परिपूर्ण ज्ञान आ जाय, तीन लोक, तीन कालके समस्त द्रव्य, गुण, पर्यायोको एक साथ जानता हो उस ज्ञानका नाम है वेद। सकल प्रत्यक्ष, केवलज्ञान और इस केवलज्ञानीके विशिष्ट परमात्माके श्रुति प्रकट होती है। जो सुननेमें आए

उसे श्रुति बोलते हैं, दिव्यध्वनि बोलते हैं। वेदसे श्रुति निकली है, केवलज्ञानसे दिव्यध्वनि चली है। उस श्रुतिको सुनकर बडे-बडे आचार्यो ने, गणधर देवोंने इनका स्मरण किया। स्मृति हुई। सो यह स्मृति द्वादशांगरूप है। फिर स्मृतिके बाद जो उनका वक्तव्य हुआ या लिखित रूप मे उनके ग्रन्थ आये वे समस्त ग्रन्थ पुराण हैं। पुराण पुरुषोंके द्वारा जो रचित हुए वे पुराण है। इस तरह इन पुराणोंका मूल श्रोत वेद है। इसी कारण ये समस्त पुराण प्रमाणभूत हैं। इन स्मृतियोंका और पुराणोंका सम्बन्ध श्रुतज्ञानसे है। यह तो मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत श्रुतज्ञानकी बात है, पर साधारणतया श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है।

श्रुतज्ञानकी मतिपूर्वता— भैया! यो समझिये कि जैसे आख खोल कर देखा तो जो ज्ञानमें आया तुरन्त, वह तो मतिज्ञान और उसके बारेमे फिर यह अमुक चीज है, अमुक जगहकी बनी है, ऐसी विशेषता वाली है, यह ज्ञान हुआ वह कहलाता है श्रुतज्ञान। जैसे मिठाई खाये तो खाते ही जो रसका बोध हुआ वह तो हुआ मतिज्ञान। फिर यह मीठा है, अमुक रसका है, इस तरह बना है, अनेक विकल्प उठे वह सब श्रुतज्ञान है। यह श्रुतज्ञान सम्यग्दृष्टिके तो सम्यकरूप होता है और मिथ्या दृष्टिके कुश्रुत होता है, मिथ्यारूप होता है। तो सम्यक् विभावज्ञानोमें यह द्वितीय श्रुतज्ञान है।

तृतीय सम्यक् विभावज्ञान— तीसरा ज्ञान है सम्यक् विभाव अवधि ज्ञान। देशावधि, परमावधि व सर्वावधिके भेदसे ज्ञान ३ प्रकारके होते है। जो थोड़ा जाने वह देशावधि है, जो बहुत विशाल जाने वह परमावधि है और जो सम्पूर्ण जान जाय जितना कि अवधिज्ञानका विषय है तो वह सर्वावधि ज्ञान है। देशावधि ज्ञान तो नारकियोंके, देवोंके, मनुष्योंके भी होता है और संज्ञी तिर्यञ्चोंके भी होता है, किन्तु परमावधि और सर्वावधिज्ञान मुनियोंके ही होता है और वह भी मोक्षगामी मुनियोंके ही होता है।

ज्ञानावरणका क्षयोपशम— भैया! जैसे जैसे इस जीवका उपयोग सहजस्वभावमे दृढ आश्रय कर जाता है वैसे-वैसे इस आश्रयमें ऐसी विशुद्धि प्रकट होती है जिससे ज्ञानावरणका क्षयोपशम बढता है और यह ज्ञान सब प्रकट हो जाता है। वर्तमानमे भी देखते हैं कि लड़के तो सब एक ही किस्मके हैं पर विद्या किसी को विलम्बमे आती है, किसी को जल्दी आती है इसका कारण क्या है कि पूर्वभव का क्षयोपशम जिसके विशाल है उसके इस भवमे भी थोडे उपायसे शीघ्र आ जाती है। जिसका क्षयोप-

शम कम हैं, पूर्वभवमें भी कोई विशुद्ध परिणाम नहीं किया था जिससे क्षयोपशम नहीं बढ सका, तो इस भवमें भी देरसे विद्या आती है।

मनुष्यत्व— कोई लोग प्रश्न करते हैं--क्यों भाई मनुष्यका होना तो अच्छी बात है, दुर्लभतासे मनुष्यभव मिलता है। पुण्यका उदय हो तो मनुष्य बनता है। तो आजके समयमे मनुष्योंकी सख्या बहुत बढ रही है तो कोई पुण्यका ही जमाना बहुत बढ रहा होगा जिससे मनुष्योंकी संख्या बहुत बढ़ गयी है। यदि यह कहना ठीक है कि पुण्य बढ रहा है तो सामने यह भी दिखता है कि बुद्धिहीन, मलिन, दीन, दरिद्र ऐसे लोग भी बहुत मौजूद हैं तो पुण्य कैसा है? आजके समयमे सब देश सुखपूर्वक नहीं रह पा रहे हैं। कलका कुछ भरोसा करके कोई नहीं सो पाते हैं। ऐसी स्थिति मे पुण्य तो नही कहा जा सकता। और मनुष्य ऐसे बढ रहे है तो यह क्या बात है? अब ज्यों ज्यो समय खराब आता जाता है वैसे ही सिद्धान्तके हिसाबसे भी पचम कालका समय ज्यों-ज्यो अधिक व्यतीत होता जाता है, त्यों-त्यो ये मनुष्य बढ रहे हैं तो एक कारण मालूम होता है कि समस्त विश्वमेसे जिन-जिन जीवोंने मनुष्य आयुका बध किया वह तो पुण्य प्रतापसे ही किया और उन्हें अच्छा ही मनुष्य होना चाहिए था, पर करनी पीछे उनकी बिगडी तो वे मनुष्य तो होंगे ही, परन्तु बिगडी करने वालोंको छाट-छांटकर आजकी इस परिचित दुनियामे मानों पैदा किये जा रहे हैं। तो ऐसे ऐसे मनुष्य होकर भी जीवनका क्या लाभ उठा सकते हैं? मनुष्य हुए तो इस प्रकारसे जीवन व्यतीत करे कि अपनी रुचि केवल आत्महितके लिए बने। अन्य सब बाते गौण हो जायें।

ज्ञानीकी अनाकुलता— जो होता हो ठीक है, यों हो गया ठीक है, यों नहीं हुआ ठीक है। जितने भी दु ख होते हैं वे सब अपने अपराधसे होते हैं। दूसरे के कारण दूसरा कोई दुखी नहीं होता है। अपने ही विचार अपनी ही कल्पनाएँ बनाई जाती हैं और उन्हीं कल्पनाओसे प्रेरित होकर क्लेश भोगने पड़ते हैं। अपना ज्ञान सावधान रखे और अहितरूप कल्पनाएँ न बनने दें फिर देखो कैसे क्लेश होता है? तो अन्य बाते जो हमारे आत्महित की प्रयोजक नहीं हैं, चाहे बड़ासे बडा उपद्रव छा जाय तो भी इतना साहस सम्यग्दृष्टि पुरुषमे होता है कि वह परकी परिणतिसे अपने चित्तमे मूलमें आकुलता उत्पन्न नहीं करता।

निरापदताका मूल उपेक्षा— एक किसान और किसानिन थे, तो विवाह हुए १२ वर्ष हो गए। किसान था जरा उजड्ड परन्तु किसानिन थी चतुर व शान्त। सो १२ वर्षमे एक दिन भी किसानिनको वह पीट न सका

था। तो देहाती लोग तब अपनेको मर्द मानते हैं जब एक दो बार पीट ले स्त्रीको। तो उसने कई बार ऐसा उपाय किया कि किसी प्रकरणमे स्त्रीको थोड़ासा गुस्सा आये या कोई गड़बड़ बात तो बोले। बिना प्रयोजन कैसे मारा जाय ? एक युक्ति उसे सूझी। अषाढ़के दिनोंमें दोपहरके समयमें खेत था, तो रोज रोटी लानेका उसका कार्यक्रम था। किसानने सोचा कि आज के दिन ऐसा करे कि एकदम ऊटपटांग काम करे जिसे देखकर स्त्री कुछ तो बोलेगी। बस हमे पीटनेका मौका मिलेगा। सो हलमे जो जुवां होता है—सो उसने एक बैलका पूरबको मुंह कर दिया और एक का मुंह पश्चिमको कर दिया और गलेपर जुंवा धर दिया। अब हल कैसे चलेगा ? बतावो तो सोचा कि स्त्री ऐसा देखकर कुछ तो कहेगी ही। बच्चे कैसे पालोगे, अनाज कैसे होगा, कुछ दिमाग तो सुधारो, कुछ तो बोलेगी ही, बस ठोकनेका मौका मिल जायेगा।

स्त्री जब रोटी लेकर दोपहरको आई तो दूरसे ही देख लिया और समझ गयी कि आज तो पीटनेके लक्षण दिखते हैं क्योंकि अभी तक तो ऐसा बेवकूफीका काम कभी नही किया, आज भरमें तो ये पागल हो नहीं गए। ऐसा ओंधा सूधा क्यो जोता, इसमे कोई रहस्य है। वह जब खेतम आ गयी तो रोटी धरकर कहती है कि चाहे औंधा जोतो, चाहे सीधा जोतो इससे तो हमे कुछ मतलब नही है। हमारा तो काम रोटी देनेका है तो लो और खावो, रोटी देकर वापिस चली गयी। किसान यों ही देखता रह गया। उसने तो बडे फंद रचे थे कि वह यों कहेगी तो यों उत्तर देंगे, यों कहेगी तो यों उत्तर देंगे, मारने का मौका मिल जायेगा। तो बुद्धिमान् हो और पिटाईसे बचना हो तो उसका उपाय इस किसानिनसे सीख लो।

ज्ञानबलका सत्फल— भैया ! परपदार्थोंके परिणमन चाहे औंधे हों चाहे सीधे हों, जो कुछ है ठीक है, अपनेमें क्यों आकुलता लाना ? इतनी हिम्मत ज्ञानबल उत्पन्न करता है और फिर परपदार्थोंकी परिणति आधीन किसीके नहीं होती है, वह तो जिस तरह होनी है होती है, पर अपनी कल्पनाके अनुसार उनके परिणमनमे बात फिट बैठ गयी तो मानते हैं कि इनका परिणमन मेरे आधीन हुआ है। इतनी गम्भीरता उत्पन्न होना ज्ञानके ऊपर निर्भर है। वस्तुकी स्वतंत्रताका निर्णय करके जिसने अपने आपमे यह देखा है, लो मै यह हू और इस रूप बन रहा हूं, अपने उपादान से बन रहा हू हम खोटे हैं तो हम बाहरमें कुछ निमित्त बनाकर कल्पनाए करके दुःखी होगे। हम सही हैं तो बाहरमे चाहे कोई पदार्थ किसी ढंगमे

भी परिणमता हो किन्तु वह तो उचित कल्पनाएं बनायेगा।

अन्तर्भावके अनुसार प्रवृत्ति— भीतरमें जिसकी जैसी दृष्टि होती है, बाहरमें परवस्तुविषयक वैसी कल्पना करते हैं। कभी बहुत बालक बैठे हों और किसीने कोई चीज चुराई हो तो कहे कि देखो सावधानीसे बैठना, जिसने चीज चुरायी होगी वह लड़का अभी पकड़ा जायेगा। देखो हम मंत्र पढ़ेंगे, जब स्वाहा बोलेंगे तब जिसने चोरी की होगी उसकी चोटी खड़ी हो जायेगी। वह झूठमूठका मंत्र पढ़ने लगा, जब स्वाहा सुना तो जिस लड़के ने चोरी की वह लड़का अपनी चोटी पकड़ कर देखने लगता है। स्वभावतः उसका हाथ उसके सिर पर चोटी पकड़कर देखनेके लिए उठ ही जायेगा। तो भीतरमें जैसी श्रद्धा होती है उसके ही अनुसार संसारवृत्ति बनती है। हमारी अगर पापभावना है तो बाहरमें पाप भरी कल्पनाएं ही बनेंगी। क्योंकि स्वयमें तो पापभावना बसी हुई है। और स्वयमें यदि शुद्ध है तो चाहे दूसरा कोई गलत भी हो तो भी बहुत समझनेके बाद वह गलत मान पायेगा। सुगमतया उसको सब शुद्ध ही दिखेगा।

ज्ञानीकी भावना और वृत्ति— जैसी दृष्टि होती है वैसी बाहरमें प्रवृत्ति होती है। जिस ज्ञानी पुरुषने अपने आपमें सहज स्वरूपका दर्शन करके उसकी भावना द्वारा स्थिरता उत्पन्न की है वह अपनी उस स्थिरता के अनुसार बढ़ा हुआ ज्ञान पाता है और इस ही सहजज्ञानदेवकी भक्ति के प्रसादसे ऐसा ज्ञान प्रकट होता है, जिसे वेद शब्दसे कहा गया हो, सकल प्रत्यय शब्दसे कहा गया हो, तीन लोक, तीन कालके समस्त पदार्थों को जानने वाला होता है।

ज्ञानी की आकांक्षा— ये तीन लोक इस जाननमें आयें चाहे न आयें, हे प्रभु मुझे कोई आकांक्षा नहीं है कि मैं सारे विश्वको जान लूं, किन्तु हमारे ऐसा ज्ञान प्रकट हो कि मैं अपने आत्माके शुद्धसहज एकत्व स्वरूपको जानता रहूं। उस यथार्थ जाननकी इच्छा करता हूं। सारे विश्व को जाननेकी चाह नहीं करता। मुझे केवल दर्शन मिले चाहे न मिले यह तृष्णा नहीं है कि मैं सारे विश्वका द्रष्टा बन जाऊं, क्या प्रयोजन पड़ा है? किन्तु इतना दर्शन मेरे अवश्य प्रकट हो कि मैं अपने आपके आत्मरूप का दर्शन किए रहूं। मुझे अनन्त सुख मिले या न मिले, इसकी मुझे कोई चाह नहीं है। किन्तु इतनी बात तो मुझमें आए कि आकुलता उत्पन्न न हो। मुझे अनन्त आनन्दकी कोई चाह नहीं है, किन्तु मुझमें आकुलता तो रहे ही नहीं। मुझमें अनन्त बल प्रकट हो चाहे न हो। क्या होगा उससे? बलशाली हो गए तो क्या, किन्तु इतना बल तो प्रकट हो कि मैं अपने

आपके ज्ञानस्वरूपमे समा सकूं ।

स्वरूप समावेशबल— अपने आपके स्वरूपमे समाने के लिए भी बल चाहिए। जैसे अपने शरीरमें जो धातु उपधातु हैं उनको संभालने के लिए बल चाहिए। जब देखो कमजोर हो जाते हैं तो मुखसे राल बहने लगती हैं, नाकसे पानी बहने लगता है, आखसे पानी झरने लगता है, मैं ये मैल हटाने के लिए, ये बाहर न निकल जाये इसके लिए कुछ बल चाहिए ना, तो जब इस नकली बलके लिए नकली इस देहमे ठीकठाक बने रहने के लिये, इसे सावधान बने रहने के लिए इस देहकी चीज देहमें ही समायी रहे बाहर न निकल पाये, इतनी बातके लिए भी बलकी जरूरत है। तो आत्माका गुण आत्माका वैभव आत्मामे ही समाये रहें, अपने आपमे अपने आपको लीन कर सके, बाहर-बाहर न भटकते फिरें सुखकी तलाशमे, तो ऐसी स्थिति पानेके लिए भी बल चाहिए। हे प्रभो! मुझमे वह बल प्रकट हो और अनन्त बल मिले, न मिले उसकी आकांक्षा नहीं है।

आत्मवैभव और अनन्त वैभव— आत्मज्ञान, आत्म दर्शन, आकुलता न होना अपने आपमे समाये जानेका बल--ये चारो बातें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त बलको प्रकट करने वाली होती हैं। हो जाये, पर जीवका प्रयोजन तो केवलमात्र आकुलताके न होने से है। यों इस शुद्ध ज्ञानके प्रतापसे आत्मामें कैसे-कैसे ऐश्वय बढते हैं, उसका यह प्रसग है, यह सम्यक्विभाव ज्ञान तृतीय ज्ञान अवधिज्ञान है।

चतुर्थ सम्यक् विभावज्ञान— सम्यक विभाव ज्ञानोंमें चतुर्थज्ञान है मनःपर्यय ज्ञान। ऋद्धिधारी साधुजनोंके ऐसा ज्ञान प्रकट हो जाता है। मनःपर्ययज्ञान जो दूसरेके मनकी बात जान ले सो मनःपर्ययज्ञान है। मनःपर्यय ज्ञानसे मनका विकल्प भी जान लिया जाता है और जिस पदार्थ के सम्बन्धमे विचार किया वह पदार्थ भी जान लिया जाता है। ऐसा ज्ञान ऋद्धिधारी जनोंके प्रकट होता है। मनःपर्ययज्ञान सम्यक्रूप ही होता है। मिथ्यादृष्टि जीवके मनःपर्ययज्ञान नहीं होता और सम्यक दृष्टियोमे भी विशिष्ट ऋद्धिधारी साधुके होता है। मनःपर्ययज्ञान दो प्रकारका है एक ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान और दूसरा विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान। दूसरेके मनकी सीधी सरल बात हो उसे जाने यह तो है ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान और दूसरेके मनमे कैसी ही कुटिल बात हो, मायाचारपूर्ण हो अथवा बुरा विचार हो या आगे पीछे जाने उस सबको विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान जान लेता है।

ऋजुमति व विपुलमतिमे अन्तर— ऋजुमतिसे विपुलमतिका

क्षयोपशम अधिक है, विशुद्धि अधिक हैं। ऋजुमति मनःपर्यय वाला तो केवलज्ञान होनेसे पहिले छूट जाए, ऐसा भी हो सकता है, पर विपुलमथ मन पर्ययज्ञान तो केवलज्ञान उत्पन्न होने पर ही छूटता है, पहिले नहीं छूटता है। विपुलमति मन पर्ययज्ञान वाला जीव नियमसे मोक्ष चला जाता है।

अवधिज्ञान व मन पर्ययज्ञानमें अन्तर— अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानमे इतना स्थूल अन्तर है कि अवधिज्ञान तो रूपी पदार्थोंको ही जानता है और मन पर्ययज्ञानरूपी पदार्थोंके सम्बन्धमे कोई कुछ विचार करे तो वह मनकी पकड़को भी जानता है और उसके विषयको भी जानता है। अवधिज्ञानके स्वामी त्रसलोककी दुनियामे बहुत मिलेगे, मन पर्ययके स्वामी बहुत कम। अवधिज्ञान नारकियोंके, देवोंके, सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियके और मनुष्योंके, चारो गतियोके जीवोंके होता है, किन्तु मन पर्ययज्ञान तो मनुष्यमे ही होता है और उनमे भी सम्यग्दृष्टियोंके, उनमे भी साधुवोंके और उनमे भी सयमी साधुवोके होता है, किन्तु विशुद्धि मन पर्ययज्ञानमे बहुत होती है। अवधिज्ञान बहुत लम्बे क्षेत्र तकके जीवोंमे पाया जाता है। स्वर्गोंमें सर्वार्थसिद्धि तक अवधिज्ञान है। नारकोंमे, सभीमे अवधिज्ञान हो सकता है और तिर्यकक्षेत्रमे तो समस्त तिर्यक लोकमे जो कि एक राजू विस्तार वाला है, अवधिज्ञान हो सकता है, किन्तु मन पर्ययज्ञान जो ढाई द्वीपके अन्दर ही सयमी जनोके होता है, उनके ही हो सकता है। अवधिज्ञान मोटी बात जानता है मन पर्ययज्ञानकी अपेक्षा। मनःपर्ययज्ञानी अवधिज्ञानीसे बहुत सूक्ष्म बात जान सकते हैं। मनका विकल्प तो अवधिज्ञानके विषयसे बहुत सूक्ष्म है। इस प्रकार सम्यक्विभावज्ञानोंमे ये चार ज्ञान बताये हैं। ये चारों ज्ञान सम्यग्दृष्टि जीवके ही होते हैं। जो आत्मा के सहज परमभावमें स्थित हो, उसके ही ये चारों ज्ञान होते हैं।

कुज्ञानमे कुत्सितता— इनमें ये मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान यदि मिथ्यादृष्टि जीवके होते हैं तो ये कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ज्ञानरूप होते हैं। कुमतिज्ञानमे सब अहितरूपसे ही जाना जाता है, कुश्रुतज्ञान में खोटे ही खोटे जो विचार हैं, वे उत्पन्न होते हैं। बड़े-बड़े बम बना लिये जाते हैं, जो एक इरादेसे कहीं गिरा दिये जायेंगे तो वहां सैकड़ों मीलके मनुष्य मरेंगे—ऐसी शक्ति वाले बमोंको बनाना यह क्या कम होशियारीकी बात है? कितना दिमाग लगाते हैं? किन्तु वह कुश्रुतज्ञान है, जो जीवो की हिंसाका ही प्रयोजक है। कुअवधिज्ञानसे देखते हैं परोक्षकी बात, पर जो अहितरूप हो, वह दिखता है, हितरूप बात नहीं दिखती।

कुअवधिज्ञानीकी संस्कृतिका एक उदाहरण— जैसे एक कथानकमें आया है कि राजा अरविन्द बुखार होनेसे दुःखी बैठे थे। भीत पर दो छिपकलियां लड़ गयी और ऐसी तेज लड़ीं कि उनकी पूंछ टूट गयी और दो-चार खूनकी बूंदे राजाके शरीर पर गिरीं। वे बूंदे राजाको बड़ी ठण्डी लगीं, बड़ी अच्छी लगीं। वे ठण्डी बूंदे चाहे पानीकी हों, चाहे खूनकी हों, चाहे किसी चीजकी हों, अच्छी तो लगेंगी ही। सो राजाने सोचा कि इससे हमें बड़ी शान्ति मिली है। सो लड़कोंको बुलाया और कहा कि घरमें खूनकी एक बावड़ी भरवा दो, हम उसमें स्नान करेंगे। पिताकी ऐसी आज्ञाको वे लड़के कैसे टाले? सो पूछा कि कहां इतना खून मिलेगा, जो घरकी बावड़ी खूनसे भर जाये? वह राजा अवधिज्ञानी था, मगर खोटा अवधिज्ञानी। सो कुअवधिज्ञानसे देखकर राजा बताता है कि देखो इस दिशामें अमुक जंगलमें बहुतसे जंगली जीव रहते है, वहां बहुतसे हिरण मिलेंगे, कुछ स्थानोंमें खरगोश भी मिलेंगे, कुछ स्थानोंमें वनगाय भी मिलेंगी, सो वहां जाओ और उनको मारकर उनके खूनसे इस घरकी बावड़ीको भर दो।

अब वे लड़के विवश होकर चले। उसी जंगलमें एक मुनि महाराज बैठे थे। लड़कोंने प्रणाम किया। मुनि मनःपर्ययज्ञानी था। वह साधु स्वयं बोलता है कि ऐ बच्चों! कुबुद्धि पिताके पीछे तुम लाखों जीवोंकी हिंसा करने आये हो? इस बातको सुनकर लड़कों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। लड़कोंने पूछा कि आपने कैसे सारी बातें जान लीं कि इनका पिता कुबुद्धि है? वह साधु बोला कि तेरा पिता अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है। वह खराब बातें तो बता देगा, पर अच्छी बातें न बतायेगा, क्योंकि उसके खोटा अवधिज्ञान है। कहा कि महाराज! कैसे परीक्षा करें? कहा कि लौटकर उनके पास जावो और पूछो कि वहां और कुछ भी है कि नहीं? तो वे यह न बता-पायेंगे कि कहीं कहीं वहां साधु महाराज रहते हैं।

लड़के गए, उन्होंने पितासे पूछा तो राजाने बताया कि उधर दस सिंहोंकी टोली है, उधर खरगोश हैं, वहां कुछ वनगाय भी हैं, वहां पर हिरण भी बहुत हैं—ये सारी बातें बता दीं, पर यह नहीं बताया कि वहां एक कोनेमें साधु महाराज बैठे हैं। लड़कोंने जाकर ऐसा ही साधु महा-राजको बताया। साधुने बताया कि देखो वह राजा सब खोटी ही खोटी बातें बताएगा। संत, धर्मात्मा, सन्यासीमें उसका उपयोग नहीं जाता है। लड़कोंकी समझमें सब आ गया और सोचा कि पापका फल स्वयंको ही भोगना पड़ेगा।

लड़कोंका विवेक— वे लड़के वापिस चले गए और लाखका रंग लाकर उस बावड़ीको भर दिया और कहा कि पिता जी तैयार है खूनसे भरी बावड़ी, खूब नहावो। राजाने देखा तो उसमें खूनका सा स्वाद न आया, सो सोचा कि यह खून नहीं है, यह लड़कोंने हमारे संग छल किया है। सो नंगी कटार लेकर वह मारने के लिए लड़कों को दौड़ा। लड़के आगे-आगे भागते चले जा रहे थे। रास्तेमें राजाको ठोकर लगी, गिर गया और उसकी कटारी उसके ही पेटमें लग गयी। वह राजा मरकर नरकमें गया।

कुअवधिज्ञानमें कुत्सितज्ञान— भैया! कुअवधिज्ञानमें सब खोटा ही खोटा दिखता है। भला नहीं दिखता है। यह अंदाज कर लो कि आप का यदि खोटा आशय है, कोई भ्रम है तो आपको अच्छी बात न दीखेगी। अच्छी भी बात होगी तो अर्थ उसका यों लगायेंगे, यों घटायेंगे कि जिससे कोई क्लेशकी बात उत्पन्न हो। तो जिसका आशय मलिन है ऐसे पुरुष अच्छी बातोंको क्या देखेंगे? तो कुमति, कुश्रुति, कुअवधि ज्ञान ये केवल विभावरूप होते हैं। उन्हें मिथ्याविभाव ज्ञान कहना चाहिए।

स्वभावज्ञानका विवरण— इस प्रकरणमें सबसे पहिले प्रत्यक्ष ज्ञान बताया गया था स्वभाव ज्ञान—वह स्वभाव ज्ञान दो प्रकारका कहा है। कारणस्वभाव ज्ञान और कार्यस्वभाव ज्ञान। कार्यस्वभाव ज्ञान तो केवलज्ञानका नाम है और कारणस्वभावज्ञान आत्माके सहज ज्ञानका नाम है। ज्ञानस्वभाव, ज्ञानशक्ति, चैतन्यस्वभाव यही है कारणस्वभाव ज्ञान। ये आत्माके दोनों प्रत्यक्ष ज्ञान हैं, किन्तु कार्यस्वभाव ज्ञान तो है सकलप्रत्यक्ष और कारणस्वभाव ज्ञान है स्वरूपप्रत्यक्ष। केवलज्ञान समस्त पदार्थोंको तीन लोक, तीन कालवर्ती सकल द्रव्य, गुण, पर्यायोंको एक साथ स्पष्ट जानता है, आत्माके द्वारा जानता है, इन्द्रियकी सहायता बिना। इस कारण केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है और सहजज्ञान यह शुद्ध अंतस्तत्त्वमें अथवा परमतत्त्वमें व्यापक है। अपने ही स्वरूपमें अपने ही आत्माश्रित है इस कारण इसे स्वरूपप्रत्यक्ष कहते हैं।

सम्यक् विभावज्ञानोंमें प्रथम विकलप्रत्यक्षज्ञान— अब सम्यक् विभाव ज्ञानोंमें कौनसा ज्ञान प्रत्यक्ष है और कौनसा ज्ञान परोक्ष है? यह बताते हैं— प्रत्यक्ष ज्ञान उसे कहते हैं कि आत्मीय शक्तिसे स्पष्ट जान लेना और जो इन्द्रियके निमित्तसे अविशद जाने, एक देश जाने वह है परोक्षज्ञान। जैसे सामने संदूक रखा है, इन्द्रियज्ञान तो सामनेका भाग ही जान सकेगा पीछे कैसा है, अन्दर कैसा है यह तो नहीं जाना। और अवधिज्ञानसे

जाना गया तो आगा पीछा भीतर सब जाननेमे आ जायेगा। यह अवधि ज्ञान इन्द्रियकी सहायताके बिना हुआ है, सो अवधिज्ञान है। विकल प्रत्यक्ष क्योंकि वह समस्त पदार्थोंको नहीं जान पाता किन्तु रूपी पदार्थोंको ही जानेगा। अवधिज्ञान मोटी चीजको ही जानता है और एक परमाणु तक का भी ज्ञान करता है।

उत्कृष्ट अवधिज्ञानोंके द्वारसे जानकारी की विशालता— भैया! उत्कृष्ट कक्षाका अवधिज्ञान हो, परमावधि सर्वावधि ज्ञान हो, तो उस ज्ञान के द्वारा परम्परया सम्यक्त्व और चारित्र परिणमन भी जान लिया जाता है। सम्यक्त्व और चारित्र परिणमन सीधा अवधिज्ञानका विषय नहीं है क्योंकि यह अमूर्त है। अवधिज्ञान तो रूपी पदार्थोंको ही जानता है किन्तु कर्म कितने हटे है, कर्म कितने धरे हैं यह तो अवधिज्ञानी जान सकता है ना, क्योंकि कार्माण द्रव्यरूपी पदार्थ है और जहां यह जान लिया आगमज्ञानी संतने कि अमुक प्रकृतिके कर्म इतने कम है, इतने मौजूद है तो उससे सम्यक्त्व और चारित्रकी बात श्रुतज्ञानसे जान लिया जाता है। अवधिज्ञान और मन:पर्यय ज्ञान विकल प्रत्यक्ष है, एक देश जाननहार है।

सांव्यावहारिक प्रत्यक्षता—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये वास्तवमे तो परोक्ष हैं इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न होते हैं, पर व्यवहारसे ये भी प्रत्यक्ष हैं। जैसे आखसे अभी देखा, जान लिया कि यह भिंडी है, लौकी है तो बतावो ऐसा ज्ञान कर लेना प्रत्यक्ष ज्ञान कहलायेगा या परोक्ष? यह परोक्ष कहलाता है। इन्द्रिय और मनके निमित्तसे जो कुछ जाना जाय वह सब परोक्ष है। लोकव्यवहारमे इसे प्रत्यक्ष कहते है, कहते है ना, वाह जी वाह मुझे प्रत्यक्ष दीखा और केवल देखनेको ही प्रत्यक्ष नही कहा गया है किन्तु पंचेन्द्रियके ग्रहणसे प्रत्यक्ष बोला करते हैं। कोई-कोई तो आंखसे भी पूरा समझमे नही आता। चखकर या छूकर समझमे आता है। जैसे सामने मीठा फल या मिठाई रखी है तो आखोंसे देखनेसे आपको पूरा समझमे न आयेगा। तो कैसे समझमे आयेगा? उसे खाकर समझमे आयेगा कि यह अच्छी मिठाई है या यह अच्छा फल है।

सांव्यावहारिक प्रत्यक्षकी विशदता— अग्निके सम्बन्धमे कोई वकील मान लो युक्ति लेकर उसे ही सिद्ध करने लगे—आग ठंडी होती है क्यों कि पदार्थ है, जो-जो पदार्थ होते हैं वे सब ठंडे होते है—जैसे पानी पदार्थ है वह ठंडा होता है और यह अग्नि गरम होती है यह समझानेके लिए क्या करना चाहिए? अरे चीमटेसे आग उठाकर उसके हाथमे धर देना

चाहिए, तुरन्त समझमें आ जाएगा। अरे... रे... रे...! यह तो आग है। कोई चीज स्पर्शसे समझमें आती है, कोई चीज चखकर समझमें आती है, कोई चीज देखकर समझमें आती है—इन सबमें प्रत्यक्षका व्यवहार होता है। वाह, हमने स्वयं प्रत्यक्ष किया, प्रत्यक्ष देखा, प्रत्यक्ष सुना—यह सब व्यवहारसे प्रत्यक्ष है। आत्माके स्वरूपकी ओर कलाकी दृष्टिसे ये सब परोक्ष हैं, क्योंकि वे इन्द्रिय और मनके निमित्तसे वे उत्पन्न हुए।

युक्तिसे व्यावहारिक विशदताकी प्रबलता—एक वकील साहब घूमने जा रहे थे। आगे एक तेलीका घर मिला। वहां कोल्हू चल रहा था। उस बैलके एक घण्टी बंधी थी। वह बैल चलता था तो उसके गलेकी घण्टी बजती थी। वकील साहब बोले कि क्यों तेली भैया! इस बैलके तुमने घंटी क्यों बांध रखी है? तेली बोला कि इसके घण्टी बंधी रहनेसे हमें इसके पीछे पीछे नहीं चलना पड़ता, हम अपना काम करते रहते हैं। जब तक घण्टी बजती रहती है, तब तक तो समझते रहते हैं कि चल रहा है और जब घण्टी बजना बंद हो जाती है तो हम समझ जाते हैं कि अब बैल खड़ा हो गया है। सो आकर एक डण्डा बैलके जमा जाते हैं और फिर बैल चलने लगता है। बैल चलता रहता है, हम अपना काम करते रहते हैं। इसलिये यह घण्टी इस बैलके बंधी है। वकील साहब बोले कि अगर खड़े-खड़े ही यह इस घण्टीको हिलाता रहे तो क्या तुम जान पावोगे कि बैल खड़ा है? वह तेली बोला कि अभी हमारा बैल वकील नहीं बना है, जिस दिन वकील बन जाएगा, उस दिन दूसरा उपाय सोचेंगे। युक्तिबलसे कुछ भी सिद्ध किया जाए यहां, किन्तु सांव्यावहारिक प्रत्यक्षमें तो बोध विशद और प्रत्यक्ष होता है।

ज्ञानव्यक्तियोंका स्रोतभूत विशदज्ञान—इस ज्ञानमें से हमें क्या देखना है और क्या शिक्षा लेनी है? इसमें साक्षात् मोक्षका मूलभूत केवल एक सहजज्ञान है जो एक निज परमात्मतत्त्वमें निष्ठ है, रहता है। कहां दृष्टि देनी है? यह ज्ञानपरिणमन जिस शक्तिसे उद्भूत होता है, उस सहज-स्वभावमें दृष्टि देनी है, वही उपादेय है। उस सहजज्ञानके अतिरिक्त अन्य कुछ उपादेय नहीं है, क्योंकि भव्यजीवोंके वह परमस्वभावरूप है। पारिणामिक भाव-स्वभावसे सहजतत्त्वकी दृष्टिके प्रतापसे भव्यजीवोंके भव्यत्व गुण का विपाक होता है, मुक्ति प्राप्त होती है। इस कारण एक यह सहजज्ञान उपादेय है। बड़े बड़े योगीजन आरम्भ और परिग्रहको त्यागकर एकान्तमें निवास करके किसकी धुनि बनाए रहते हैं कि उनके रात दिन बड़े आनन्द से गुजरते हैं और कोई आकुलता नहीं होती? वह धुनि है इस आत्माके

इसी अन्तस्तत्त्वके दर्शनकी। जब उपयोग जाता है, सफलता मिलती है तो और दृढ़ताके साथ इस पुरुपार्थमें वे लगते हैं और इसके स्मरणके प्रतापसे ही बहुत समय तो उनका आनन्दमें व्यतीत होता है।

सहजज्ञानकी ईप्सिततमता-- भैया! लोकमें सब कुछ वैभव रहना सुगम है, किन्तु एक इस निज आत्मतत्त्वके, इस सहजस्वरूपके दर्शन होना कठिन है। सब कुछ मिल जाए, क्या होगा इससे? अन्तमें मरण होगा, छोड़कर जाना होगा? यह आत्मा फिर क्या पायेगा अगले भवमें? एक इस सहजज्ञानकी दृष्टि जगी हो तो इस निर्मलताके प्रतापसे आगे भी यह सन्मार्ग पा सकेगा और यों ही विपयाकांक्षाओंमें समय गुजरा तो ये तो कोई साथ न रहेंगे, किन्तु पापका फल ही सामने नजर आएगा।

ज्ञानविवरणमें ग्राह्य तत्त्व-- ज्ञानके इस प्रकरणमें ग्रहण करने योग्य बात कही गयी है कि इस संकटहारी नाथकी भावना करना चाहिये। यह आत्मदेव नाथ है। न अथ--जिसकी आदि नहीं है। यह मुक्त लक्ष्मीका नाथ स्वभावत समस्त संकटोंसे परे अपने स्वरूपमात्र है। प्रभुमें व्यक्त अनन्त चतुष्टय है तो इस आत्मतत्त्वमें स्वभाव अनन्त चतुष्टय है। कारणरूप ज्ञान, दर्शन, आनन्द और शक्ति इस आत्मदेवके है और कार्यरूप यही चतुष्ट प्रभु परमात्मामें है। इस अत्यन्त निकट वर्तमान परम चित्स्वरूपके, श्रद्धानके द्वारा अपने आत्माकी निरन्तर भावना करनी चाहिए। जिसके प्रतापसे प्रभुत्वदर्शन और प्रभुत्वपरिणमन होता है। वह वृत्ति जिस वृत्तिके द्वारा अपने आत्माकी भावना होती है, वह है सहज चिद् विलासरूप। प्रभुके दर्शन बनावट, दिखावट, सजावटसे नहीं हो सकते। आत्मतत्त्वका अनुभव धनके आधीन नहीं है, लोकमें पोजीशन बढ जाए, इसके आधीन नहीं है, यह तो सहज चिद् विलासरूप वृत्तिके द्वारा दृष्ट होता है।

स्वरूपाचरणकी विभुता-- ज्ञानीकी वृत्तिमें सहज वैराग्य है। सम्यक्त्व होने पर ज्ञान और वैराग्य सम्यक होता है मूलत, फिर ज्ञानकी पूर्ति वैराग्यकी पूर्ति असलीरूपमें पश्चात होती है, किन्तु सम्यक्त्वके होते ही ज्ञान और चारित्र प्रारम्भ हो जाता है। अविरत सम्यग्दृष्टि इसलिए कहा जाता है कि वह प्रगतिरूपमें अणुव्रत और महाव्रतरूपसे तैयारी करके आगे नहीं बढ रहा है, इसलिए उसका नाम अविरत सम्यग्दृष्टि है। फिर भी सम्यक्त्वके होने पर स्वरूपका आचरण व जानना बढा होता है, उस दृष्टिसे उसके चारित्र भी होगा। स्वरूपाचरण चतुर्थ गुणस्थानमें है और उस स्वरूपाचरणकी वृद्धिके लिये अणुव्रतका पालन होता है, महाव्रतका पालन

होता है और अन्तमें जहां अणुव्रत और महाव्रत भी शांत हो जाते हैं, वहां स्वरूपाचरणका विशिष्ट विकास हो जाता है। स्वरूपाचरण इस सम्यग्दृष्टिका साथ नहीं छोड़ता। अणुव्रत और महाव्रत तो किसी स्थितिसे चलते हैं और किसी स्थिति तक चलते हैं, किन्तु स्वरूपाचरण चतुर्थ गुणस्थानमें भी उसकी पदवीके योग्य प्रकट हुआ है और यह स्वरूपाचरण अपनी अपनी पदवीके विकासके अनुरूप ऊपरके सभी गुणस्थानोंमें प्रकट होता है और यह सिद्धि होने पर भी नहीं छूटता। स्वरूपाचरण वहां परिपूर्ण बना ही रहता है। सहज चिद् विलासरूप जो कि वीतराग आनन्द-अमृतको साथ लिए हुए है, उन चिद् विलासरूप पुरुषार्थके द्वारा इस आत्माकी भावना करनी चाहिये।

ज्ञानमात्रभावनाका महत्त्व—यह आत्मतत्त्व निरावरण व्याघातसे रहित परमचैतन्यशक्तिरूपसे सदा अन्त प्रकाशमान है। त्रिकाल—कभी भी वियुक्त नहीं होता है—ऐसे इस स्वभाव अनन्त चतुष्टय करि सम्पन्न परमपारिणामिकभावमें स्थित इस आत्मतत्त्वकी उपासना करनी चाहिए। सीधीसी बात यह है कि जैसे अपने-अपने नामकी सबके अन्दर भावना भरी है—मैं अमुक हू। जैसे उस नामके प्रति श्रद्धा, रुचि, वृत्ति बनी हुई है। इसी प्रकार यह नामकी वृत्ति न रहकर मैं ज्ञानज्योतिमात्र हू—इस तरहकी रुचि और भावना बने तो आत्मतत्त्वके अनुभवका अवसर मिलता है। अहो, कैसा व्यामोह है मनुष्यको कि नाममें अक्षर परिमित हैं, थोड़ा अदल-बदल कर रखे जाते हैं? वे ही १६ स्वर और ३२ व्यञ्जन उतनेका कितना बड़ा विस्तार बना रखा है कि जिसने जिसका जो नाम रख दिया, अब वह उस नाममें अपना आत्मसर्वस्व जानता है। किसीका नाम लेकर जरा गाली तो दे दो, फिर देखो कि वह कितनी उचक-फांद करता है? ऐसा नाममें व्यामोह पड़ गया है। यह व्यामोह हटे और मैं तो केवल ज्ञानमात्र हू—ऐसी भावना जगे तो इस आत्मभावनाके द्वारा ससारमें सकट कट सकते हैं।

भोगकी कच्ची भूख एक महान् धोका—भैया! जैसे बीमारीमें कच्ची भूख लगती है तो पक्की भूख तो यह मनुष्य सह लेता है और उस कच्ची भूखमें अन्न न खाए, थोड़ा धैर्य रखे तो वह स्वस्थ हो जाता है। ऐसे ही इस ससारकी जन्म-मरणकी लम्बी बीमारीमें भोगोकी आकाक्षाकी कच्ची भूख लगती है। यह यदि एक ही भवमें गम खा जाए तो इसे मोक्षमार्ग मिल जाता है। अनेक भवोंमें तो भोग भोगा है, केवल एक भव ही ऐसा मान लो कि हम मनुष्य न होते तो हमारे लिए तो कुछ भी न था। सौभाग्यसे

मनुष्य हो गये तो अन्य कर्मोंके लिए हम नहीं है, इस आत्महितके लिए हैं—ऐसा जानकर, साहस बनाकर इन भोगोंसे मुख मोडकर आत्मभावना में अपना समय और उपयोग लगाये तो यही मेरे जीवनकी सफलताका उपाय है।

सर्वउपदेशोका प्रयोजन शुद्ध अन्तस्तत्त्वकी भावना— इस ज्ञान प्रसगमे भेदविज्ञानकी बात भी गर्भित है। यह विभावज्ञान मेरा स्वभाव तो है नहीं और स्वभावके अनुरूप शुद्ध विकास भी नही है, परन्तु यह केवल ज्ञानस्वभाव तो नहीं है, किन्तु स्वभावके अनुरूप शुद्ध विकास है। फिर भी केवलज्ञानरूप क्षणिक वृत्तिपर उपयोग आ जाए तो उस उपयोगमे स्थिरता लीनता समाधिपना नही आ पाता, क्योकि मात्रज्ञानके स्वरूपमे, स्वभावके अनुभवमे उपयोग लगे तो यहां विषय ध्रुव और निज होनेके कारण निर्विकल्पता और समाधिभाव उत्पन्न होते है। इस भेदविज्ञानको पाकर एक आत्माकी ही भावना भाये और समस्त सुख दुःख, शुभ-अशुभ अनात्मतत्त्वोंका परिहार करे। इस विधिसे यह जीव समग्र ध्रुव आनन्दको प्राप्त करता है।

शान्तिके ख्यालसे कोरा अनर्थका श्रम— यह जीव शान्तिके लिए कितने ही आश्रय बनाता है और जब शान्ति नही मिलती, तब उस पुराने आश्रयको छोडकर किसी नवीन आश्रतकी तलाश करता है। तो अब तक के निर्णय से बताओ कि इन रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्दका आश्रय करके कौनसी सतोषजनक स्थिति पायी है कि जिससे यह दीखे कि हमने अपने आनन्दके लिए इतने तो काम कर लिए हैं, अब इतना काम सिर्फ और शेष है। जैसे मकान बनाते हो तो उसमे इतना तो मालूम होता रहता है कि लो भींत तो उठ चुकी, अब भींत नही बनानी है, बल्कि छत डालनी है। इतना ही काम रह गया, छत तो अब डल चुकी है, अब तो मामूली थोडासा सीमेण्टका पलस्तर करनेका काम बाकी है। जैसे वहा पूर्तिया नजर आती हैं, ऐसे ही भोगनेमे ऐसा कौनसा काम नजर आया कि हमने इतना पुष्ट काम कर लिया है, जो अब करनेके लिए नही रह गया है? ऐसी स्थिति भोगसुख, लौकिक आनन्द विषयोंमें नहीं जमती। ये तो कोरेके कोरे ऐसे जचते हैं कि पूरे मूर्ख फिरसे अ आ इ ई पढते हैं। चालीसो वर्षके सुख भोग डाले, पचास-साठ वर्षके सुख भोग डाले, फिर भी आज रीतेके रीते हैं। भीतके उठनेमें इतना तो मालूम होता है कि अब इतना काम रह गया है, परन्तु इन सुखोंके उपायमें तो कुछ भी नहीं है।

भोगमें ' ाखिर रीताका ही रीता— जैसे अंधा जोरी बलता जाए, पीछे बछडा खाता जाए तो उसका तो कुछ भी काम नहीं बना। धन जोड़ते हुएमें इतना तो मालूम होता है कि अब चालीस हजार हो गए, अब पचास हजार हो गए, पर यहा सुखोंके उपायोंमे, अन्तरमें तो कुछ दिखता ही नही है। सुबह खाया, अब पेट ज्योंका त्यों खाली है। कल खानेकी फिर आ पढेगी। देखने सूंघने आदि सभी विषयोंकी क्षण-क्षणमे अ आ पडती पढ़ती है। ऐसा नही लगता कि इतना सुख भोगा तो हमारा इतना काम बन गया, अब इतना काम रह गया, कोरेके कोरे बने रहते है। कैसा व्यर्थ का उपाय है ? ऐसे व्यर्थके प्रयत्नोंमे रहकर कितने दिन बितायेंगे ?

विपरीत प्रयोजनोमे कल्पित धर्मका श्रम— भैया ' कभी कुछ थोडी सी सुधि आती है फिर थोडी देरके बाद ज्योंके त्यो हो जाते हैं। थोडासा साहस बँधता है कि ये क्षण निर्विकल्प होकर सहज आत्मस्वभावकी दृष्टिमे गुजरे पर बादमे फिर वह ही बोझ सामने आ जाता है। कोई खोद विनोद न करे, ये सब कहने सुननेकी बाते हैं, ऐसी स्थिति बन जाती है।

एक पाडे जी थे बिल्कुल थोडे पढे अनपढे से थे। सो भावर पढने के लिए एक धुनियाके यहा विवाहमे गए। सो मत्र पढे "ॐ विस्नु विस्नु स्वाहा धरो टका।" वहां टके तो थे ही नही। सो वह गरीब धुनिया बोला कि हमारे पास टके तो है नहीं। तो तुम्हारे पास क्या है ? हमारे पास तो महाराज सिर्फ रूई है। फिर अपना मत्र पढा— "ॐ विस्नु विस्नु स्वाहा धर रूई। धर दिया रूई। फिर पढा "मत्र ॐ विस्नु विस्नु स्वाहा धर रूई। फिर रूई धर दिया। इस तरहसे उसके चारों ओर रूई ही रूई इकट्ठा हो गई। सो इतनेमे एक पढे लिखे पाडे जी आ गए। तो पांडे जी ने कहा कि ऐसा मत्र कबहु नहि देखा आसम्पास कपासा तो वह बोला कि खोद बिनोद करो मत पाडे अद्धम अद्ध स्वाहा। अरे पाडे जी खोद विनोद मत करो, आधी कपास हमारी और आधी तुम्हारी है। तो इस धर्मपालनमे भी किसीका कुछ प्रयोजन है, किसी का कुछ प्रयोजन है।

ज्ञानस्वरूप अहकी प्रतीतिका बल— भैया ! इतना प्रयोजन इस प्रसगमे क्यो नहीं आ जाता कि मेरा किसी भी अन्य वस्तुसे प्रयोजन नहीं है। मैं तो अपने इस अतरतत्वको ही देखने और जाननेमे रहना चाहता हू, ऐसा किसी भी क्षण अपने आपमे साहस नहीं जगता। करना यही पडेगा। अपने को सकटोंसे छुटकारा प्राप्त करने के लिए यही कार्य करना पडेगा। जब तक नही करते तब तक ससारके क्लेशोंका तांता ही बनता जाता है। सर्वपरिग्रहका आग्रह तजकर, चेतन और अचेतन सगोंसे हट

कर, यहा तक कि इस एकक्षेत्र वगाह देहमें भी उपेक्षा करके एक अनाकुल चैतन्यमात्र सहज ज्योतिस्वरूप अपने आत्मतत्त्व की भावना करनी चाहिए। सीधी की बात और सुगम बात इतनी सी तो है कि हम अपने को बार बार इस रूपसे निरखें कि शरीर तकसे भी परे विविक्त केवल ज्ञानस्वरूप हू। मै ज्ञानमात्र हू—ऐसी भावना रुचिपूर्वक भाये कि यह भान ही न रहे कि शरीर भी मुझसे चिपका है। ऐसे अपने ज्ञानस्वरूपकी भावना यों भाता रहे कि मैं ज्ञानमात्र हू, इस ही प्रकार निरखते रहे तो इस भावनासे सब मार्ग खुल जाता है।

एक धर्म व एक पालनपद्धति— करनेका काम यदि एक ही सोचो तो बडा आराम मालूम होता है। घर गृहस्थीमे दुकानमे प्रपंचोमें एक काम किसी एकके जिम्मे सौंपा जाय तो अच्छी व्यवस्था बने। अब एकको दसों काम करने पडे तो बेचारा व्यग्र हो जायेगा। वह अकेला क्या-क्या करे? एक काम ही रहे, अन्य चिताए न हों तो कुछ उन्नति की बात बनायी जा सकती है। इसी प्रकार कोई कहे कि धर्म करने के लिए भी एक बात बता दो तो एक काम तो हम रुचिसे निभा ले जायेंगे। अब यहां तो पचासों काम धरे है धर्मको अब पूजा है, अब सामायिक है, अब स्वाध्याय है, अब यह उत्सव आ रहा है, अब वह उत्सव आ रहा है, अब अष्टाह्निका लग गयी, कहा तक करे ये पचासों काम? हमे तो एक काम बतावो जिस को चित्तमे रखकर अच्छी तरह निभाये। तो आचार्यदेव कहते है कि धर्मके लिए एक ही काम करना है, पचासों काम नहीं करने हैं। पचासों काम तो तुमसे तब करवाते हैं जब तुम इस एक कामको मना करते हो या इसमे ढील डालते हो।

वास्तविकतामे न रहने पर व्यवहारधर्मक्रियावोंकी विवशता— भैया! एक काम करना है धर्मके लिए। मै ज्ञानमात्र हू, इस तरह खूब सोचे और इस तरहसे अपनेको निरख डाले। इसके सिवाय और कुछ काम नही देते हैं तुम्हें, किन्तु इन कामोंमें जब हम नही लग पाते तब तुम्हे ये दसों काम करने पड़ते है, मंदिर जावो, पूजन करो, स्वाध्याय करो, सुनो प्रवचन बोलो प्रवचन। सीधासा काम सौंपा है और उसे न करे तो फिर मालिक तो दसों काम ऐसे कठिन बतावेगा कि जिनके बाद वह कहे कि अब न हम से दसों काम करवावो। हम वह ही काम करेंगे जो पहिले बताया। सो धर्मके लिये एक ही काम बताया है आचार्य देवने। जब तुम नहीं करते हो तो दसों काम बताये जाते है। तो फिर हम खुद ही दसों कामोंसे शिक्षा लेकर अथवा ऊबकर अब कहा जावोगे? सो इष्टदेवके स्मरण और अनु-

भवनकी रुचि जगेगी। जब तुम्हें ये काम सुहायेंगे नहीं, तो तुम ऊबकर अपने आप इस ठिकाने आ जावोगे कि मुझे अब और कुछ नहीं करना है। मात्र एक ज्ञानस्वरूप मैं हूं—ऐसा अनुभवन करके ऐसा चैतन्यमात्र है विग्रह जिसका ऐसे इस शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना करनी चाहिए।

ब्रह्मोपदेश—यहां इस ज्ञानवंशका विस्तारपूर्वक वर्णन करके यह उपदेश किया गया है। जिस उपदेशका नाम है ब्रह्मोपदेश, जिसमें ब्रह्मस्वरूप के निहारने का उपदेश किया गया हो कि एक चित्तसे एक इस आत्माकी भावना करनी चाहिए जब तक कि रागद्वेषसे सर्वथा मुक्ति न हो जाय। जब तक यह ज्ञान इस ज्ञानमें प्रतिष्ठित न हो जाय तब तक एक ही ज्ञान है अपनेको इस प्रकार भावें कि मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूं, अमूर्त हूं। शरीर तक का भान नहीं रहना चाहिए। उपयोग यदि इस ज्ञानतत्त्वको निरखता है कि इस शरीरमें यह मैं आत्मा रह रहा हूं, इस शरीरसे मैं भिन्न वस्तु हूं—ऐसी दृष्टि होने से शरीरका भी भान नहीं रहता। ऐसे एकाग्र मनसे निज आत्मतत्त्वकी भावना करने वाले ज्ञानी संत सुख, दुःख, पुण्य, पाप, शुभ, अशुभ, आदि तत्त्वोंसे छुटकारा पाकर निकट कालमें ही सदा कालके लिए आनन्दके पात्र होते हैं।

कारणसमयसार—कारणस्वभाव ज्ञान जो कि अनादि अनन्त अहेतुक है, जिसका आश्रय करने से मोक्षमार्ग चलता है। इस कारण समयसारके सम्बन्धमें यह कैसे प्रकट होता है? इसके उपायमें यह जानना चाहिए कि शुभ राग और अशुभराग सर्वप्रकारके रागोंका विलय हो जाने से और मोहका मूलसे विच्छेद हो जाने से और साथ ही द्वेषके जलसे भरे हुए मानस घटके फूट जानेसे अर्थात् मोहका तो मूलसे छेद हो, राग और द्वेषका विलय हो तो इस उपायसे यह पवित्र सर्वोत्कृष्ट ज्ञानज्योति प्रकट होती है जो कि उपाधि रहित है, नित्य उदित है, भेद विज्ञानका वास्तविक फल है, ऐसा यह मंगलस्वरूप शरणभूत लोकोत्तम यह कारणसमयसार वंदनीय है। इस कारणसमयसारकी भक्ति, रुचि, दृष्टिरूप हमारा भाव नमस्कार हो।

प्रभुमें कारणसमयसार व कार्यसमयसारका योगपथ—यह सहजज्ञान, कारणसमयसार, परमपारिणामिक भाव प्रत्येक जीवके अंतः प्रकाशमान रहता है और सम्यग्दृष्टि जीवके किसी की दृष्टि रूप, प्रतीतिरूप, आलम्बनरूप और किसीके स्वभाव परिणमनरूप व्यक्त रहता है। यह सिद्ध प्रभुमें भी है और अविरत सम्यग्दृष्टिमें भी है। कार्य न हो जाने पर कारणज्ञान समाप्त नहीं हो जाता। कार्यसमयसार और कारण

समयसार इस दोनोंका एक साथ सद्भाव है, पर्यायरूप ज्ञान जिस स्वभाव से प्रकट हुआ है वह स्वभाव कहीं खत्म नहीं होता। सिद्धभगवान्के भी इस कारणसमयसारसे निरन्तर कार्यसमयसार प्रवाहित हो रहा है। हां जो पर्यायरूप कारणसमयसार है वह बारहवें गुणस्थान तक रहता है, इससे ऊपर नहीं चलता, पर शक्तिरूप स्वभावरूप जो कारणसमयसार है वह सिद्धमें भी है और वही कार्यसमयसार भी है। यदि कारणसमयसार न हो तो कार्यसमयसार कहासे प्रकट हो?

प्रतिक्षण शुद्धपरिणमन-- भैया! सिद्ध भगवान्में प्रतिक्षण नया नया कार्य हो रहा है, नया-नया ज्ञान हो रहा है, फिर भी वे सब ज्ञान पूर्ण समान होते है। पहिले समयमें सर्व जाना और दूसरे समयमें भी सर्व जाना तो पहिले समयमें पहिले समयकी शक्तिके प्रयोग द्वारा सर्व जाना और दूसरे समयमें दूसरे समयकी शक्तिके प्रयोगसे सर्व जाना। एक समान ज्ञान चलते रहते हुए भी ज्ञानपरिणमन प्रति समयमें भिन्न-भिन्न है। जैसे बिजलीका लट्टू आधा घण्टे तक बराबर जले, ८ बजेसे लेकर ८॥ बजे तक जले तो देखनेमें तो ऐसा आएगा कि यह बिजलीका लट्टू वैसा ही काम कर रहा है, जैसा कि आध घण्टे पहिले करता था, पर ऐसी बात नहीं है। वह प्रतिक्षण अपना नया-नया परिणमन कर रहा है। जो कार्य ८ बजे किया, वह कार्य अगले क्षणमें समाप्त हुआ, उसके अगले क्षणमें ही उसका नया परिणमम हो गया। प्रतिक्षण पूर्व-पूर्व परिणमन विलीन होता है और नया-नया परिणमन चलता है। प्रभु व परमात्मामें समान-समान ज्ञान होता रहता है। प्रतिक्षण नवीन समयके ज्ञानका उत्पाद है और पूर्व-समयके ज्ञानपरिणमनका विलय है।

बंधन व अबन्धनकी परिस्थितियां-- शुद्धात्मामें तो इतनी जल्दी ज्ञान बदलता है कि इस संसारी जीवका ज्ञान एक दृष्टिसे अन्तर्मुहूर्त तक वही रहता है। अन्तर्मुहूर्तके बाद फिर दर्शन होकर फिर दूसरा ज्ञान हुवा। पर प्रभुके एक-एक समयमें नया-नया ज्ञान हो जाता है, वह समान ज्ञान है। जो शुद्ध वस्तु होती है, वह द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे, भावसे, एकत्वको लिए हुए होती है। जो विकृत परिणमन होता है, वह द्रव्यसे, क्षेत्रसे, काल से, भावसे अनेकत्वको लिए हुए होता है। द्रव्यसे अशुद्ध अवस्थामें यह आत्मा केवल एक ही हो तो बंधन नहीं हो सकता। बंधनकी अवस्थामें दो द्रव्यस्वरूप होने चाहिए, बन्धनकी अवस्थामें दो क्षेत्र होने चाहिए, तब बन्धन है। बन्धनकी अवस्थाके परिणमन दो समयों तक चलने चाहिएं तो तब बन्धन है। बन्धनके समयके भाव भी अनेकताको लिए हुए ही होना

चाहिये।

बद्धमें अबद्ध स्वरूप— यद्यपि बन्धनकी अवस्थामें भी निश्चयदृष्टिसे देखा जाए तो वहा भी प्रत्येक द्रव्य एक है, उसका क्षेत्र एक है और पदार्थ का प्रत्येक समयमें एक ही परिणमन है और भाव भी अपने स्वलक्षणरूप है, लेकिन इस दृष्टिमे बन्धन कहा है? बन्धनकी दृष्टि जब रखी जाएगी तो दो द्रव्य जाने बिना, देखे बिना, सम्बन्ध पाए बिना बन्धन का देखा? इस प्रकार दो क्षेत्रोंकी अवगाह बिना, संयोग बिना, सम्पर्क बिना बन्धन क्या देखेगा? वर्तमानसे जीव और कर्ममे अनेक द्रव्य हैं, इनका बन्धन है और इनका क्षेत्र है, अनेक निज क्षेत्र उनका बन्धन है, एक क्षेत्रावगाह है और बन्धनके समयकी जो परिणति है, वह एक समय तक ही रहकर अपना विपाक बनाले, ऐसा नहीं होता। अनेक समयो तककी कल्पनाएं रागका समूह विपाक कहलाता है। एक समयका रागपरिणमन अनुभवमें नहीं आ सकता। वह देखो तो उसके विकल्प बने बिना ऐसी स्थिति नहीं हो सकती है। समय बहुत छोटे कालका नाम है। किसी विकल्पको करते हुएमें अनगिनत समय बनते हैं, तब विकल्पोंकी शक्ल आ पाती है। इसी तरह वह भाव भी अनाकुलता और विषमताको लिए हुए होगा, तब वह बन्धन होता है।

शुद्धावस्थामे सर्वथा एकत्व— शुद्ध अवस्थामे जैसे कि सिद्ध भगवान् हैं, वहा द्रव्यका एकत्वस्वरूप है, दूसरी उपाधिका सम्बन्ध नहीं है, क्षेत्रका एकत्वस्वरूप है, वहा निमित्तनैमित्तिकरूप क्षेत्रावगाह नहीं है। यद्यपि एक सिद्धके स्थानमें अनेक सिद्ध विराजमान् हैं तो भी वे बिल्कुल अलग हैं। जैसे एक घरमें रहने वाले १० परिजन हैं और उनका किसीसे परस्परमे मन नहीं मिलता है तो कहते हैं कि एक घरमें रहते हुए भी वे सब न्यारे-न्यारे हैं। इसी तरह एक क्षेत्रमें अनन्त सिद्ध बस रहे हैं, फिर उनका परिणमन जुदा-जुदा है, निमित्तनैमित्तिक सबन्ध रच भी नहीं है, अत. वे जुदा-जुदा हैं। उनका काल परिणमन भी एक-एक समयमे पूर्ण-पूर्ण होता है और एक समयके परिणमनके साथ दूसरे समयके परिणमनका सबन्ध बिल्कुल नहीं है, जिससे कि विकल्प और अनुभवकी शक्ल न बन सके।

छद्मास्थावस्थामे सामायिक परिणमनोंका उपयोगद्वारसे सबन्ध— प्रश्न यहा हो सकता है कि पहिले समयका रागपरिणमन विलीन हो गया। दूसरे समयका रागपरिणमन अन्य पर्यायरूप है, फिर निज जो एक समयके रागपरिणमनका दूसरे समयके रागपरिणमनसे

सम्बन्ध कैसे बनेगा ? उत्तर यह है कि उन परिणमनोंका साक्षात् सम्बन्ध तो नहीं है किन्तु इस उपयोगके द्वारके लिए न होते हुए भी सम्बन्ध बना है, अन्यथा विकल्पकी शक्ल बन नहीं सकती। केवल दो अवसरोंको छोड़ कर किसी भी अवसरमे संसारी जीवके ऐसा नहीं होता है कि एक समय क्रोध भाव हो तो दूसरे समय मानभाव आ जाय, दूसरे समय अन्य भाव आ जाय— ऐसा नहीं होगा। क्रोधभाव आयेगा तो अनगिनत समयों तक क्रोध ही क्रोध परिणमन चलेगा। मानपरिणमन आयेगा तो अनगिनत समयों तक याने अन्तमुहूर्त तक मान मानका ही परिणमन चलेगा। इसी तरह प्रत्येक विभावपरिणामकी यही बात है और इसी कारण उपयोग द्वारसे उनका अनुभव होता है, विकल्प होता है और प्रवृत्ति बनती है। केवल दो अवसरोंमे ऐसा होता है कि जहा कोई एक कषाय एक समय को ही रहे। किन्तु उन परिस्तियोंमें होने वाली कषायका अनुभवन नहीं हो पाता, विकल्प नहीं बन पाता।

एक समयमात्र विशिष्ट कषाय रहने का प्रथम अवसर— वे दो अवसर कौन है ? जिनमे किसी एक कषायका एक समय अवस्थान है। एक तो है व्याघात का अवसर और एक है मरण का अवसर। कोई जीव यानी कषाय मे आया है, एक समय को आ पाया था कि इतने मे कोई लट्ठ बरस जाय, बिजली तड़क जाय, कोई व्याघात हो जाय जिससे यह क्षुब्ध जाय तो वहां क्रोध कषाय आ गया। मान कषाय एक समय को ही रह पाया। वहा मानकषाय का विकल्प नहीं बन पाता, किसी के एक समय को मानकषाय आया और व्याघात हो गया तो उसके उसका भी बाद क्रोध ही कषाय आयेगा। व्याघात के समयमें क्रोध एक समय रहे सो नहीं होता। मान, माया और लोभकषाय—ये तीन कषाय व्याघात के समयमें रह सकते हैं, बादमे नहीं रहते। व्याघातके कालमे क्रोध कषाय ही चलता है दूसरा कषाय नहीं आता।

एक समयमात्र कषाय रहने का द्वितीय अवसर— दूसरी परिस्थिति है मरण की। किसी जीव को नरकगति मे जाना है। मरण के एक समय पहिले उस जीवके मानकषाय आया था कि एकदम मरण हो गया। जब मरणके समय उसके क्रोधकषाय आ गया क्योंकि नरक मे जा रहा है। जो जीव नरकमे जायेगा, मरण समयमे क्रोध कषाय आयेगी जो जीव तिर्यञ्च गतिमे जायेगा मरण समयमें मायाकषाय आयेगी। देवगतिमे जन्म लेने वालेको मरण समयमें लोभकषाय आयेगी और मनुष्यगतिमे जन्म लेने वालेको मरण समयमे मानकषाय आयेगी। सो कदाचित् मरण

समयमे ऐसी स्थिति बन सकती है लेकिन उस एक-एक समयके कषाय परिणमनोंसे कोई हित नहीं होता है कि लो एक ही समय रहा फिर नहीं रहा तो ठीक रहा। कुछ ठीक नहीं रहा। उसके बाद अनुभाव्य अन्य कषाय जग गयी। तो यह छद्मस्थ अवस्था मे जीवके विकल्प निर्माणमें ऐसी स्थितिया बनती हैं

सिद्ध प्रभुकी अभिरामता— सिद्ध भगवान्‌के एक समयकी बात का दूसरे समयके परिणमनके साथ ऐसा सम्बन्ध नहीं बनता। अगर सम्बन्ध हो तो केवल ज्ञान काम नहीं कर सकता। प्रत्येक समयमें स्वतंत्रतासे परिपूर्ण केवलज्ञान चलता रहता है। वह केवल ज्ञानरूप कार्यसमयसार प्रति समय कारणसमयसारसे उठकर चल रहा है, वह सहज ज्ञान आनन्दसे तन्मय है अर्थात् आनन्दमय है। व्यग्रताको लिए हुए नहीं है, बाधारहित है। जिसकी यह सहज अवस्था सदा अन्तःप्रकाशमान् है, जो अपनेमें सहज विलास करता हुआ चैतन्य चमत्कार मात्रमें लीन है, *स्वय प्रकाश रूप है, नित्य अभिराम है– ऐसा सहज ज्ञान सदा जयवन्त हो।*

सुन्दर, मनोहर, अभिरामकी उत्तरोत्तर वृद्धि— देखो भैया! भली बात बतानेके लिए तीन शब्द आया करते हैं—सुन्दर, मनोहर और अभिराम। इसमें सुन्दर शब्द तो बड़ा ओछा शब्द है, उससे बढ़कर तो मनोहर शब्द है और उससे बढकर अभिराम शब्द है। सुन्दर ने क्या किया? भली प्रकारसे तडफाकर क्लेश पैदा किया। यह शब्दमें आये हुए अर्थकी बात कह रहे हैं। सु उन्द अर, जो भली प्रकारसे क्लेश करे उसे सुन्दर कहते हैं। सो देख लो जगतकी हालत। जिसको जो सुन्दर लगता है उस ही से वह आफतमें पडता है। सुन्दरसे अच्छा तो मनोहर है, जो मनको हरे। इस शब्दमें तड़फानेकी बात नहीं भरी हुई है। अगर वह तडफता है तो उसमे सुन्दरताका सम्बन्ध है, किन्तु मनोहर शब्दके अर्थमें भी थोडा बिगाड है, मनको हर लिया। जैसे कोई किसीके धनको हर ले तो उसमे पाप लगता है ना? इन सबसे अच्छा शब्द है अभिराम। हैं तीनों एकार्थक शब्द, पर अभिराम मायने जो अपनी आत्मामें सर्वप्रकारसे ऋद्धि और सम्पन्नता बर्ते उस परिणतिका नाम है अभिराम।

कारणसमयसारकी अभिरामता— यह कारणसमयसार सुन्दर नहीं है, मनोहर नहीं है किन्तु अभिराम है। ऐसा नित्य अभिराम जो अन्धकारसे परे ज्योतिस्वरूप है ऐसा कारणसमयसार सदा जयवन्त प्रवर्तो, जिसके प्रसादके कारण भव भवके बन्धे हुए कर्म कट जाते हैं,

अनन्तकालके संकट टल जाते हैं—ऐसा यह सहजज्ञान कारणसमयसार सदा जयवंत प्रवर्तो। हो गया सब। जैसा प्रस्ताव किया जाता है, बात बतायी जाती है तो चार छः आदमी जब बता चुकते हैं तो उसके बाद जो कोई कहेगा वह यही कहेगा कि अब बताने का समय नही है, अब तो यह कार्य करनेका समय है। कारणसमयसारके सम्बन्धमे बहुत समयसे वर्णन चल रहा था। अब वर्णन चलते-चलते धैर्य नही रहा कि इसको सुनते ही रहें। सो ज्ञानीके अब यह भावना जगती है कि ऐसा शुद्ध चैतन्य-मात्र यह कारणसमयसार जिसमे सहजज्ञानका साम्राज्य भरा हुआ है। अरे यह मै ही तो हू। अब यह मै निर्विकल्प होकर इस कारणसमयसार स्वरूपरूप उपयोगी होता हू।

उपयोगके मूल स्वलक्षण— इस प्रकार जीवके स्वरूपमे वर्णन करने के प्रसंगमे पहिले कहा गया था कि यह उपयोगमय है। उपयोगमयकी व्याख्या ही यह सब चल रही है। उपयोग दो प्रकारका है— ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग दो प्रकारका है—स्वभावज्ञान और विभावज्ञान। स्वभावज्ञान दो प्रकारका है—कारणरूप स्वभावज्ञान, कार्यरूप स्वभाव ज्ञान। विभावज्ञान दो प्रकार का है—संज्ञानरूप विभावज्ञान, कुज्ञानरूप विभावज्ञान। इस प्रकार ज्ञानके विस्तारमे मूल उपदेश इस बातका बताया है कि इस सर्वपर्यायरूप ज्ञानोके स्रोतभूत जो ज्ञानस्वभाव है, सहजज्ञान है, ध्रुवज्ञान शक्ति है तद्रूप अपने आपको स्वीकार करे।

ध्रुवरूप होनेकी आकांक्षा— जैसे आपको कुछ दिनके लिए राजा बना दिया जाय या अरबपति बना दिया जाय और यह कह दिया जाय कि कुछ दिनके बाद जो तुम्हारे पास है उसे भी छुड़ाकर साधारण कपड़े पहिनाकर हटा दिया जायेगा तो क्या आप ऐसा राज्य लेना पसंद करेंगे? मैं कुछ दिनके लिए राजा बन जाऊँ? आप तो यही पसंद करेंगे कि जो सदा निभ सके, मेरी तो यह ५०० रूपल्लीकी दुकान ही भली है, कुछ दिन को राजा बनना या अरबपति बनना आप पसद न करेंगे। तब आप अपने बारेमे वैसा क्यों नही सोचते जो आप सदा रहते हैं। इन पर्यायों-रूप अपनेको क्यो विचारते हो जो कुछ समयको होती हैं और फिर खत्म हो जाती हैं। परको ध्रुवरूप माननेकी आदत तो है भीतरमे, किन्तु उसका प्रयोग और उपयोग नहीं करना चाहते। कौन चाहता है कि मै वह होऊँ जो मिट जाऊ? तो फिर ऐसा ही प्रयोग करो कि मै ज्ञानमात्र हू, ज्ञानस्वभाव मात्र हू, चित्प्रकाशमात्र हू, अन्यरूप नहीं हू, ऐसे ध्रुवस्वभाव रूप अपने आपकी प्रतीति करो। यही हैं अपने प्रभुके दर्शन और प्रभुकी

प्रभुताई पानेका उपाय। अब इसके बाद दर्शनोपयोगके सम्बन्धमें कुछ वर्णन चलेगा।

सह दसण उवओगो ससहावेदरवियप्पदो दुविहो।
केवलमिंदियरहिदं असहाय तं सहावमिदि भणिदं ॥१३॥

दर्शनोपयोगके भेदोंमें स्वभावदर्शनोपयोग— जीवके स्वरूप वर्णन करनेके प्रकरणमें दर्शनोपयोगका स्वरूप यहां बताया जा रहा है। जैसे ज्ञानोपयोग बहुत प्रकारके भेदोंसे सहित है, इस ही प्रकार दर्शनोपयोग भी नाना भेद करके सहित है। प्रथम तो दर्शनोपयोगके दो भेद हैं—स्वभावदर्शनोपयोग और विभावदर्शनोपयोग। स्वभावदर्शनोपयोग दो प्रकारका है—कारण स्वभावदर्शनोपयोग और कार्यस्वभाव दर्शनोपयोग। इसे कारण स्वभावदर्शनोपयोग कहिए या कारणदृष्टि कहिए अथवा दर्शनस्वभाव कहिए यही है शुद्ध आत्माका स्वरूप श्रद्धानमात्र। दर्शनका और सम्यग्दर्शनका निकट सम्बन्ध है। वैसे दर्शनका व्यक्तिरूप जो दर्शनोपयोग होता है उसका स्रोतरूप है कारण दर्शन; किन्तु उसको जरा शीघ्र समझ पाये इस पद्धति के अनुसार बताया जा रहा है कि जो नित्य निरञ्जन शुद्ध ज्ञानस्वरूप है उसका स्वरूप श्रद्धानमात्र कारण दर्शन होता है। यहां श्रद्धान पर्यायरूप नहीं लेना, किन्तु स्वरूप प्रत्यक्षरूप जैसा कारणस्वभाव ज्ञान है तो इस ही प्रकार इसे स्वरूप प्रत्यक्ष कह दिया जाय जिसका स्वरूप श्रद्धान मात्र प्रयोजन है।

स्वभावदर्शनकी सहजरूपता— दर्शनकी व्यक्तियोंके मूल आधारको बताने का उपाय है सहज आत्मस्वरूपको दिखाना जो आत्मस्वरूप सदा पावनरूप है, पवित्र है। औदयिक औपशमिक क्षायिक और क्षायोपशमिक भावका अथवा विभाव स्वभावात्मक परभावोंका अगोचर है, नैमित्तिक भावसे परे है यह आत्मस्वरूप। जीवके ५ भावोंमें से पारिणामिक भाव तो स्वरूपमात्र भावका नाम है और शेष चार भाव नैमित्तिक भाव हैं। कोई कर्मोंके उदयका निमित्त पाकर हुआ तो कोई कर्मोंके उपशमका निमित्त पाकर हुआ तो कोई कर्मोंके क्षयोपशमका निमित्त पाकर हुआ; तो कोई कर्मोंके विनाशका निमित्त पाकर हुआ। उन नैमित्तिक पद्धतियोंसे पृथक् जो सहज पारिणामिक स्वभाव भाव है उसका स्वरूप दर्शन मात्र कारण दर्शन कहलाता है। यह आत्मस्वरूप कारणसमयसार रूप है, निरावरण इसका स्वभाव है। द्रव्यकी शक्तिपर आवरण नहीं होता, किन्तु शक्तिकी व्यक्तिका आवरण होता है। शक्ति तो अपने स्वभावकी सत्ता मात्र है। किसी भी वस्तुका स्वरूप बताया जाय तो कुछ हद तक तो उसका निरूपण

चल सकता है, पर पूरी बात आ जाय ऐसा तो कोई वचन ही नहीं है। यह अपने आत्मतत्त्वकी बात है।

वस्तुके वास्तविक स्वरूपकी अवक्तव्यता— कोई सी चीज खायी है भैया! उसका ही स्वरूप नहीं बता सकते। अच्छा बतावो इमरतीका स्वरूप कैसा है? बोलोगे मीठा, कैसा मीठा? खूब मीठा। अभी तो समझमें नहीं आया तो कैसे समझमें आए? जिसको समझाना हो उसे खिला दो, उसकी समझमें आ जायेगा। वचनोंसे तो समझमें न आ पायेगा। बड़ा मीठा। अरे मीठा तो रसगुल्ला भी होता है। तो क्या रसगुल्ला जैसा? अरे नहीं, उससे भी विलक्षण स्वाद है। बात तो इस तरहसे पूरी समझमें नहीं आ सकती। तो फिर कहते हैं कि इमरती तो इमरती ही है। क्या बताया जाय, खाकर देखलो। आत्मस्वरूप कैसा है? उसको बतानेका बहुत बहुत प्रयास किया। मामूली प्रयास तो यह है कि पर्यायमुखेन वर्णन किया संसारी जीव ५ प्रकारके हैं— एकेन्द्रिय जीव, दो इन्द्रिय जीव, तीन इन्द्रिय जीव, चार इन्द्रिय जीव और पांचइन्द्रिय जीव। और और जीव समास बताया। फिर और अधिक प्रयास किया तो गुणोंका वर्णन करने लगे, और अधिक प्रयास किया तो १ स्वभावका वर्णन करने लगे। अब इससे भी और अधिक वर्णन करें तो यों कहेंगे कि वह न कषाय सहित है, न कषाय रहित है। वह न वीतराग है, न सराग है। किन्तु वह तो ज्ञायकभाव मात्र है। ज्ञायक भाव मात्र? अभी कुछ ज्यादा समझमें नहीं आया। तो भाई क्या बताएं वह तो नाथ जैसा है सोई है अनुभव करके देख लो।

स्वभावसत्तामात्र आत्मस्वरूप— तो स्व स्वभावकी सत्तामात्र यह आत्मस्वरूप है, परम चैतन्य सामान्यस्वरूप है यह आत्मस्वभाव। २४ घंटेमें कुछ ध्यान तो लावो। कहां तो उस परम चैतन्यस्वभावमात्र तरंग भी इसका स्वरूप नहीं है। हलन चलन रागद्वेष कुछ भी परिवर्तन इसका स्वरूप नहीं है और मानते फिर रहे हैं जड पदार्थोंको भी अपनी चीज। कितना हम अपने हितके स्थानसे दूर भागे जा रहे हैं? इस पर दृष्टि न दी, संभाल न की तो बतावो इस ज्ञानस्वभावके दर्शनका फिर मौका कहां आयेगा? जो अवसर मिला है वहां तो चेतते नहीं है और जहां इतनी सब मलिनताएं हैं दुर्दशायें हैं वहांका उत्साह बनाया है। हमारे प्राचीन ज्ञानी संत आचार्योंने आत्महितके लिए बना बनाया भोजन रख दिया है। अब कुछ सोचने की भी दिमाग लगानेकी भी कोई मेहनत नहीं करनी है। सीधी सी बात है सामने। अब इतना भी न किया जाय तो फिर और

क्या उत्तर दिया जाय यही कि फिर रुलते रहो संसारमें।

कर्तृत्वके अभिमानका व्यर्थ गौरव— विषयसुखके लोभी जनोंको धार्मिक आनन्दकी भावना कहां जगती है ? उन्हें तो विषय सुख ही सुगम दीखा करते हैं और पा लेवें विषयसुखके साधन तो मारे गर्वके ऐंठके जमीन आसमान एक कर डालते हैं। जैसे साड गांवके आसपास के घूरे को सींगसे उछालकर अपनी ही पीठ पर डाल लिया और यह देखकर कि मैंने कितना बडा जबरदस्त काम कर डाला है सो टांगें पसार कर पीठको लम्बी करके पूछको हिलाकर गर्वसे देखता है कि मैंने बहुत बहुत बड़ा काम कर डाला है। इसी प्रकार यह संसारी जीव कुछ वैभव पा ले या स्त्री पुरुषोको अपने अधिकारमें पा ले या दीन हीन मित्रजनों को अपनी गोष्ठीमें देखे तो उनमें अपनी करतूत पर अभिमान रखकर यह अपने स्वरूप को बिल्कुल भूल जाता है। इसका फल क्या होगा ? केवल ससारभ्रमण। देखो अपने आत्मस्वरूपको। इसका अकृत्रिम स्वरूप है, बनावटी नहीं है।

बनावटीकी अशोभनीयता— भैया ! बनावटी स्वरूप तो बडे भद्दे लगते हैं। जैसे कोई पाउडर लगाकर, लाली लगाकर अपनी बनावटी सुन्दरता जाहिर करे तो देखने वाले तो उसे भद्दा और बेवकूफीके रूपमें देखते हैं। पर न जाने कैसा मन है कि ऊंची एडीकी जूती पहिनकर, राख से मुह पोतकर बेचारी ऐंठके साथ निकलती हैं ? विचित्र बात देखो कि किसी-किसी आदमीको भी यही शौक हो जाता है—इन बनावटी बातोंसे ये बिल्कुल असुन्दर हो जाते हैं। बनावटी धर्म—मनमें तो धार्मिक भावना नहीं है। धर्मके मर्मका पता नहीं है, किन्तु न जाने किन-किन ख्यालोंसे यह धर्मका अनुष्ठान किया जाता है तो उन प्रकरणोंमें न करने वालेको शांति, न कराने वालेको शांति और प्रायः न देखने वालेको शांति। बनावटसे परे है यह आत्मतत्त्व और धर्मपालन, इस बातको नहीं भूलना। यह दिखावट, बनावट, सजावटसे बिल्कुल परे बात है।

आत्मतत्त्वकी अकृत्रिमता— यह आत्मस्वरूप अकृत्रिम है, अविचल स्थिति करके सहित है। शुद्ध ज्ञानमात्र रहनेरूप चारित्र संयुक्त है—ऐसा नित्य शुद्ध निरञ्जन बोधस्वरूप आत्मतत्त्वका स्वरूपदर्शनमात्र यह कारणदर्शन है। जिसको दर्शन हो जाए तो समस्त पापवैरियोंकी सेना ध्वस्त हो जाती है—ऐसा यह कारणदर्शन है और स्वभावकार्यदर्शन केवल दर्शन है। दर्शनावरणीय आदिक घातिया कर्मोके क्षयसे उत्पन्न होने वाली दृष्टि स्वाभाविक कार्यदृष्टि है। यह प्रभु अरहतमें, सिद्धदेवमें केवलज्ञानकी

तरह यह भी एक साथ लोकालोकमे व्यापक है अर्थात् समस्त सत्का ज्ञान होना जैसे केवलज्ञानमें था, इसी प्रकार समस्त सत्का दर्शन होना इस केवलदर्शनमें है। इस क्षायिक जीवके, इस प्रभु-परमात्माके जिसने कि समस्त निर्मल केवलज्ञानके द्वारा तीनो लोकको जान लिया है और अपने आत्मासे उत्पन्न हुए वीतराग आनन्दरूपसुधासागरमे अवगाहन किया है और जैसा आत्माका सहजस्वरूप है, उसी प्रकार जिसका स्वरूप व्यक्त हुआ है—ऐसा जिसका शुद्ध चारित्र है—ऐसे अरहंतप्रभुके, सिद्धदेवके यह केवल दर्शन एक साथ लोकालोकका दर्शक है।

केवलदर्शन और स्वभावदर्शन— केवलदर्शन व्यवहारनयका विषय है और दर्शनस्वभाव निश्चयनयका विषय है अर्थात् केवलदर्शन शुद्ध निश्चयनयरूप व्यवहारका विषय है और दर्शनस्वभाव परमशुद्धनिश्चय-रूप निश्चयका विषय है। यहां क्या प्रकट हुआ ? केवलदर्शन। इसका आदि है, परन्तु परमशुद्ध निश्चयनयके विषयकी आदि नही होती है। हां, केवलदर्शन अनिधन अवश्य है। कभी केवलदर्शन नही मिटेगा, लेकिन स्व-रूपसे देखो तो प्रतिसमय मिटता रहता है। प्रतिसमय जैसे नया-नया केवलज्ञान होता है, इसी प्रकार प्रतिसमय नया नया केवलदर्शन होता है। हालाकि उस दर्शनमे जो विषय है, वह एक समान है, रच भी फर्क नही है, मगर परिणमन तो दूसरे समयका है। शक्ति तो बराबर नवीन-नवीन लग रही है।

प्रतिक्षण परिणमनका एक उदाहरण— जैसे कोई शीर्षासन लगाता है और ५ मिनट तक लगाए तो देखने वालोको यो ही लगेगा कि क्या कर रहा है यह। ८ बजे यह औधा खडा हुआ था सिर नीचे करके, ५ मिनट हो गए, अभी वही काम कर रहा है, मगर ऐसा नही है, प्रतिक्षण उसकी नवीन-नवीन शक्ति लग रही है। एक काम वह नहीं कर रहा है, प्रतिक्षण वह नवीन-नवीन प्रयत्न कर रहा है। देखने वालोका क्या है ? जो कर रहा है, वह जाने। जैसे देखनेमे वह एकसमान कार्य होनेसे एक कार्य कहा जाता है, परन्तु वहा प्रतिक्षण नवीन-नवीन शक्ति द्वारा वह शीर्षासनसे खड़ा है, इसी तरह विषयोंकी समानताके कारण केवलदर्शन सदा रहता है, अनन्त है, किन्तु वह चूंकि परिणमन है, प्रतिसमय नवीन नवीन उसमें उत्पाद है और पूर्व-पूर्व दर्शनपर्यायका वहां विलय है। इस ही तरहसे प्रतिसमय नवीन-नवीन केवलदर्शनरूपसे ही यह परिणमता चला जाता है।

स्वभावदर्शनकी महनीयता— यह शुद्ध अवस्था भव्यजनोंके द्वारा

वंदनीय हैं। शुद्धअवस्था हितकारी अवस्था है, इस कारण समस्त लोकके भव्यजीवोंके द्वारा यह वन्दनाके योग्य है। सो प्रभुके केवलज्ञानकी तरह यह दर्शनकी अवस्था भी एक साथ लोकालोकको व्यापने वाली है। इस तरह स्वभावदर्शनोपयोग कार्य और कारणके रूपसे दो प्रकार कहा गया है। यह दर्शनोपयोगमें स्वभावदर्शनोपयोगकी चर्चा है। यह दो प्रकारका है-- कारणरूपस्वभावदर्शन और कार्यरूपस्वभावदर्शन। देखनेकी शक्तिका भी नाम दर्शन है और देखनेका नाम भी दर्शन है। यो शक्ति, व्यक्तिके भेदसे यह दो प्रकारका है।

आत्माका शरण— विभावदर्शनोपयोग, जिसको कि अगले सूत्रमें बतायेंगे वह तीन प्रकारका है--चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन और अवधिदर्शन। यहाँ शिक्षा लेनी है कि दर्शनज्ञानचारित्रात्मक एक चैतन्य सामान्यस्वरूप निजआत्मतत्त्व ही मुक्ति चाहने वालोंका आलम्बनरूप है। किसी बच्चेको कोई मारनेका डर दिखाये तो उसके लिये शरण उसकी माकी गोद है। वह भागकर अपनी माकी गोदमें बैठ जायेगा, कुछ बड़ा होगा तो पिताके पास जाकर बैठ जायेगा, वहा शरण पायेगा। जरा और बड़ा हुआ तो जिसे अपना मित्र माना है, उसके पास अथवा अपनी स्त्रीके पास जाकर बैठ जायेगा। जब और बड़ा हुआ तो सब तरफसे दु ख ही दु ख आने लगे, लड़के भी ठीक नहीं बोलते हैं, स्त्री भी विपरीत हो गयी है, धन पर भी कितने ही लोगोंने छलबलसे सकट डाल दिया है तथा और भी सम्मान अपमान आदि अनेक प्रकारके क्लेश हैं, जिनके मिटनेका उपाय भी नजर नहीं आता तो किसी साधुके पास जाकर बैठ जायेगा, इसलिये कि कुछ धार्मिक ज्ञानकी बाते मिलें तो सकट दूर हो जायेंगे। जिन्दगी भर तो लड़कोंके लिये कमाया, सब कुछ कर डाला, परन्तु कोई सहायक नहीं होता है। अब कहा सहाय ढूंढे ? जो विकल्परूप क्लेश है, उसकी जहा शांति हो, वहां जाये।

आत्माका परमशरण— अब शान्तिका अर्थी यह जीव बार-बार साधुजीके पास बैठता है, मगर वे विकल्पसकट हटते ही नहीं हैं। चोट तो लग गयी है बहुत, रह-रहकर ख्याल तो आता ही है। अब क्या करें ? अब और क्या उपाय रह गया करनेको ? स्वाध्याय करें, तिस पर भी बात फिट नहीं बैठती। एक उपाय रह गया है, वे सब विकल्प छोड़े। जिस का जो होता है, वह हो। केवल अपने ज्ञानज्योतिर्मयरत्नत्रयात्मक इस आत्मतथ्यको देखे, अन्तमें शरण यही मिलेगा, इसीको परमार्थशरण कहते हैं। इस मार्गके आलम्बन बिना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि सकट

तो सिर्फ विकल्पमात्र है। जैसे संकट छोड़ा तो इसका अर्थ है विकल्पको छोड़ा। अपने आत्मस्वरूपको छोड़कर अन्यत्र हितकी आस्था न जगे तो यह मोक्षमार्ग प्राप्त हो सकता है। अब थोड़ी यहा आस्था की, थोड़ी वहां आस्था की तो इससे ठीक ठिकाना नहीं बन सकता। एक ही आस्था हो कि मेरा आत्मा अमूर्त है, ज्ञानमात्र है, स्वभावतः आनन्दमय है, इसमें कोई दोष नहीं है, यह तो केवल अपने स्वरूपमात्र है। झलकता है विभाव झलको, मेरी ओरसे यह परिणमन नहीं है। जगत्का जैसा रिवाज है, उसका निमित्तनैमित्तिक संबन्ध है, वसा ही हो रहा है सब--ऐसा ज्ञानबल जहा जगता है और आत्मस्वभावमें आस्था बनती है, वहा सकटोंसे छूटने का मार्ग मिलता है।

चक्खु अचक्खू अइओही तिण्णवि भणिद विभावदिच्छित्ति।
पज्जाओ दुवियप्पो सपरावेक्खोय णिखेक्खो ॥१४॥

विभावदर्शनोपयोगके भेद-- इस गाथामें विभावदर्शनोको बताया जा रहा है। जैसे ज्ञानोपयोग स्वभाव और विभावज्ञानके भेदसे दो प्रकार का है, इस प्रकार दर्शन भी स्वभावदशन और विभावदर्शनके भेदसे दो प्रकार का है। जिसमें स्वभावदर्शनका तो वर्णन कल हो गया है। आज विभावदर्शनका वर्णन चलेगा। विभावदर्शन तीन होते है--चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन और अवधिदर्शन। इनमें सम्यक् और केवलका भेद नहीं है। चक्षुर्दर्शन चक्षुरिन्द्रियसे उत्पन्न होने वाले ज्ञानसे पहिले होने वाले दर्शन को कहते है। आंखोसे जो देखते है उसका नाम दर्शन नहीं है, यह ज्ञान है। इस आखके निमित्तसे होने वाले ज्ञानसे पहिले जो आत्मस्पर्श होता है उसे चक्षुर्दर्शन कहते हैं। दर्शन ज्ञानबलको उत्पन्न करने की तैयारी का नाम है। एक पदार्थ जान रहे थे, अब एक छोड़कर दूसरा पदार्थ जाननेके लिए चले तो उस अन्य पदार्थके जाननेका बल आ जाय इसके लिए दर्शन हुआ करते है।

चक्षुर्दर्शन व अन्यक्षुर्दर्शनका स्वरूप-- जैसे मतिज्ञानावरणीय कर्मों के क्षयोपशमसे ज्ञान मूर्तिक वस्तुको जानता है इस ही प्रकार चक्षुर्दर्शना-वर्णीय कर्मके क्षयोपशमसे यह दर्शन मूर्तिक वस्तुको देखता है। वास्तवमें दर्शन मूर्त वस्तुको नहीं देखता पर मूर्तिक वस्तुको जानने वाले आत्माका जो दर्शन कर सकता है तो उसे भी मूर्त वस्तुका देखना कहा करते है। दूसरा दर्शन है अन्यदर्शन। लोग जल्दी जल्दीमें चक्षुर्दर्शन अन्यदर्शन बोला करते है, पर चक्षु शब्दमें प शब्द अन्तमें पड़ा है सो शब्द चक्षुष् है। जिसके रूप चक्षुः, चक्षू, चक्षुषि चलते हैं। इसके रकार हो जाना

है वह र् ऊपर लिख दिया जाता है। चक्षुरिन्द्रियजन्य ज्ञानसे पहिले जो दर्शन होता है उसे चक्षुर्दर्शन कहते हैं। चक्षुरिन्द्रियके अतिरिक्त बाकी इन्द्रिय और मनके द्वारा जो ज्ञान होता है उस ज्ञानसे पहिले होने वाले दर्शनको अचक्षुर्दर्शन कहते हैं। जैसे श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम होनेके कारण श्रुतके द्वारा द्रव्यश्रुतमें बताये गए मूर्तिक और अमूर्तिक समस्त वस्तुओंको यह ज्ञान परोक्षरूपसे जानता है। इस ही प्रकार अचक्षुर्दर्शनावरणीय कर्मके क्षयोपशमके कारण इन ४ इन्द्रियों व मनके द्वारसे उस योग्य विषयको अचक्षुरिन्द्रियदर्शन कहते हैं।

दर्शनकी आत्माभिमुखता— दर्शन आत्माभिमुख चित्प्रकाशको कहा करते हैं। ज्ञानदर्शन मूर्त अमूर्त वस्तुवोंको जाने और यों जानने वाले आत्माको देखा दर्शनने तो दर्शनसे भी सब दिख गया, ऐसा कहा जा सकता है। यह ज्ञानकी अधिक सूक्ष्म चर्चा है। ज्ञानकी बात जरा शीघ्र समझमें आ जाती है, इसका कारण यह है कि ज्ञान साकार होता है और दर्शन निराकार होता है। किसी मनुष्य पर जिसके बारेमें कुछ भी विकल्प बना तो वह ज्ञान बन जाता है, दर्शन नहीं रह पाता, ऐसी सूक्ष्म विषयकी बात है। होती सबमें है, पर अपनी बात अपनेको कठिन लग रही है। चक्षुर्दर्शन और अचक्षुर्दर्शन—ये दो दर्शन तो हम आप सब मनुष्योंके हैं पर इनका भान नहीं हो पाता।

अवधिदर्शन— तीसरा विभावदर्शन है अवधिदर्शन। अवधिज्ञानसे पहिले होने वाले दर्शनको अवधिदर्शन कहते हैं। जैसे अवधिज्ञान वरणीय कर्मके क्षयोपशमके निमित्तसे शुद्ध पुद्गल पर्यन्त मूर्तद्रव्यको अवधिज्ञान जानता है इसी प्रकार अवधिदर्शनावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे समस्त मूर्त पदार्थोंको यह अवधिदर्शन देखता है। इस प्रकार ये तीन दर्शन विभाव दर्शन हैं।

विभावदर्शनों विभावताके व्यपदेशका कारण— कर्मोंके क्षयोपशम के निमित्तसे ये उत्पन्न होते हैं। इस कारण ये विभावदर्शन औपाधिक हैं और विभाव हैं, फिर भी दर्शनमें खोटेपनका व्यवहार नहीं होता। जैसे कुमतिज्ञान या इसी तरह कुचक्षु ज्ञान हो जाय, ऐसा नहीं होता क्योंकि जिस प्रतिभासमें विकल्प नहीं है, निराकार सत् सामान्यका प्रतिभास है उसमें क्या बुरा कहा जाय ? कोई आकार हो, विशेष ग्रहण हो तो वहां सम्यक् और कुत्सितपना माना जा सकता है। ये दर्शन छद्मस्थ जीवोंके होते हैं। अचक्षुर्दर्शन स्पर्शनइन्द्रिय ज्ञानसम्बन्धी होता है और रसना, घ्राण, कर्ण और मन सम्बन्धी भी होते हैं। हाथसे किसी वस्तुके स्पर्शसे

ज्ञान होता है तो उस ज्ञानसे पहिले जो आत्मस्पर्श होता है उसे कहते हैं स्पर्शनइन्द्रिय सम्बन्धी अचक्षुर्दर्शन इसी प्रकार रसना इन्द्रियके द्वारा जो ज्ञान उत्पन्न होता है उससे पहिले जो दर्शन होता है उसे रसनाइन्द्रिय सम्बन्धी अचक्षुर्दर्शन कहते हैं।

मतिज्ञानकी निर्विकल्पता-- भोजन किया तो तत्काल जो ज्ञान हुआ वह हुआ मतिज्ञान और जहां ऐसा ख्याल आया कि मै अमुक चीज खा रहा हू, बड़ी मीठी है, ठीक बनी है, थोड़ी खराबी आ गयी है, नमक कम हो गया है, ऐसा कुछ भी ज्ञान जगे तो वह श्रुतज्ञान है, मतिज्ञान नहीं है। मतिज्ञान निर्विकल्प होता है और श्रुतज्ञान सविकल्प होता है। ५ ज्ञानोंमे एक श्रुतज्ञान तो सविकल्प है और शेष चार ज्ञान निर्विकल्प हैं। आखोसे देखा नही कि जाननेमे आ गया तो हुआ मतिज्ञान और जहां यह जाना कि यह सफेद है, यह काला है, यह इतना बड़ा है, यह अमुक साधनसे बना है, कुछ भी ज्ञान जगे वह हो जाता है श्रुतज्ञान। सफेद पीला जाननेमें आये, मगर सफेद पीले रूपमें विकल्प न हो तब तक तो है मतिज्ञान और जहां सफेद पीला आदि विकल्प बना तो हो जाता है श्रुतज्ञान।

आत्माभिमुख मतिज्ञानकी स्वानुभूतिसे निकटता— भैया! अब आप समझ लीजिए कि मतिज्ञान कितना स्वच्छ ज्ञान है? श्रुतज्ञान परमोपकारी है, पर स्वानुभवके लिए सीधा काम आने वाला मतिज्ञान है। स्वानुभवकी निर्विकल्पता अवस्थासे पहिले मतिज्ञान होता है क्योंकि निर्विकल्पज्ञान निर्विकल्प ज्ञानस्वरूपके स्वानुभवको करनेमे समर्थ हो सकता है। अब आप जान लीजिये कि मतिज्ञानका कितना बड़ा महत्व है? जो सुनने बतानेमें ऐसा साधारण जचता है।

मतिश्रुतकी संसारी जीवोमे व्यापकता— मतिज्ञान सब जीवोमे हैं। श्रुतज्ञान यह भी सब संसारी जीवोंके होता है। एकेन्द्रियके भी श्रुत ज्ञान है, पर उसके श्रुतज्ञानका हम क्या वर्णन करें? हम मतिज्ञानकी भी बात नही बता सकते है। हम आप सब मनुष्य है सो हमारे अनुभव की जो बात है वैसा ही आप सबके अनुभवमे आता है इसलिए पता चलता है, पर इन पेड़ोको किस तरहसे मतिज्ञान हो? श्रुतज्ञान होता है यह उनमे ही घटित हो रहा है। चारो संज्ञायें तो पेड़ोमे भी पायी जाती हैं और चारों मन्तव्योंका कैसा कर्त्ता काम हो रहा है। तो इनके भी श्रुतज्ञान है। ये इन्द्रिय तीन इन्द्रिय और चार इन्द्रियके भी मतिज्ञान और श्रुतज्ञान है। है कुमति और कुश्रुत, किन्तु दर्शन उनका वैसा ही

विशुद्ध है, जैसा सबके हुआ करता है।

अध्यात्मक्षेत्रमें दर्शनका महत्त्व— लोकमें दर्शनका महत्त्व कम है, ज्ञानका महत्त्व ज्यादा है और यहाँ आत्महितके प्रसंगमें ज्ञानसे भी अधिक महत्त्व दर्शनका है कि दर्शनके विषयको तो ग्रहण कर ले अर्थात् यह मैं हूं, इस प्रकारका अनुभव करले तो उसके मोक्षमार्ग प्रकट हो जाता है। अब आप देखिये कि दर्शनके समय सम्यग्दर्शन उत्पन्न करनेकी योग्यता नहीं बतायी है। जो साकारोपयोगी जीव हो उसके सम्यक्त्व जगता है, किन्तु दर्शनके विषयभूत आत्मदर्शनके सम्बन्धमें वह साकारोपयोगी बनकर सम्यग्दृष्टि होता है। इस प्रकार उपयोगका व्याख्यान यहाँ समाप्त होता है। जीवके सम्बन्धमें जो उपयोग गुणकी मुख्यताको लेकर स्वरूप चल रहा था, उसमें ज्ञान और दर्शनके सर्वभेद बतलाये गये हैं और इन सब भेदोंकी आधारभूत जो भी मूलदृष्टि है, वह शक्ति है और उस शक्तिको पहिले बता दिया गया है।

पर्यायका निरूपण— अब उपयोगकी व्याख्याके अन्दर पर्यायका स्वरूप कहा जा रहा है। पर्यायका अर्थ है कि परि आय है। परिका अर्थ है सर्व ओरसे और आयका अर्थ है भेदको प्राप्त करो। "परि समतात् भेद एति गच्छति इति पर्याय।" जो भेद करने चले उसे पर्याय कहते हैं। अध्यात्मशास्त्रकी सूक्ष्मदृष्टिमें ज्ञानदर्शनादिक भेद बताना भी पर्याय कथन है, क्योंकि भेद किया, पर चूंकि वह सब शाश्वत हैं। अतः मध्यम अध्यात्मवर्णनमें इसे पर्यायमें सम्मिलित नहीं किया, किन्तु गुणमें सम्मिलित किया। तिर्यक्रूपसे भेद करनेसे तो गुण बता दिया गया और ऊर्द्ध्वरूपसे भेद करनेसे पर्याय बताया। एक आत्मा है और उसमें तिर्यक्रूपमें अर्थात् एक साथ फैसला हुआ कि यह ज्ञान है, यह दर्शन है, यह चारित्र है। यह तो हुआ गुणोंका बताना, किन्तु समयभेदको दृष्टिमें लेकर यह अमुक समयका परिणमन है, यह अमुक परिणमन है, इस प्रकारसे समय भेद करके बताना पर्यायस्वरूप है। यद्यपि एक द्रव्यमें एक साथ अनन्त पर्यायोंका भी कथन है, क्योंकि जितने गुण होते हैं, उतने उसमें परिणमन भी हैं, लेकिन उस एक साथ अनन्तपरिणमनोंको बतानेके गर्भमें यह आशय पड़ा हुआ है कि यह सब समय-समयके परिणमनमें परिणमने वाले हैं। तब तो इस तिर्यक्भेदका नाम गुण हो गया और ऊर्द्ध्वभेदका नाम पर्याय हुआ।

तिर्यग्विशेष और ऊर्द्ध्वविशेष— जैसे एक साथ इतने मनुष्य बैठे हैं, इनमें बालक, बूढ़े और जवान सभी हैं, किन्तु एक साथ सबको देखा जा

रहा है तो यह हुआ इसका तिर्यक्रूपसे जानना। एक ही व्यक्तिके बारेमें ऐसा ज्ञान करे कि यह बालक था, अब जवान है, अब बूढ़ा होगा, यदि इस तरह समयभेद लेकर उस एक व्यक्तिके बारेमें ज्ञान किया तो वह पर्याय अथवा ऊर्ध्वपर्यायके रूपमें ज्ञान कहलायेगा। ऊर्ध्व मायने हैं ऊपर ही ऊपर और तिर्यक् मायने हैं एक समयमें तिरछे ही तिरछे। जब कोई भी मनुष्य किसीकी दशाओंका वर्णन करता है तो उसकी अंगुली ऊंचे-ऊंचे उठती है। खूब विचार करके देख लो कि यह आदमी पहिले बालक था, फिर जवान हुआ, अब धनपति बना, अब लखपति बना, अब करोड़पति होगा, बूढ़ा होगा, मर जायेगा--ऐसा वर्णन करते हुए अंगुली ऊपर उठ जायेगी। देख लो कि इस भारतवर्षमें ब्राह्मण भी रहते हैं, क्षत्रिय भी रहते हैं, अमुक भी हैं, अमुक भी हैं—ऐसा वर्णन करनेमें अंगुली ऊपर-ऊपर न उठेगी, किन्तु बार बार तिरछी-तिरछी गिरेगी। आत्मामें एक साथ पायी जाने वाली शक्तिको बताना तो तिर्यक्रूपसे वर्णन है और आत्माके सबंध की पर्यायको बताना है पर्यायरूपसे वर्णन।

द्रव्यकी गुणपर्यायात्मकता-- द्रव्यगुण पर्यायात्मक होता है। केवल गुण मानकर रहे तो द्रव्यकी सिद्धि नहीं है, केवल पर्याय मानकर चले तो द्रव्यकी सिद्धि नहीं है। जैसे हाथमें ५ अंगुली हैं तो यदि पांचों ही रह जायें तो कार्यसिद्धि अच्छी होती है और अगर उनमें से एक या दो अंगुलियां भी टूट जायें, मान लो कि यह बेकार अंगूठा ही टूट जाये तो देखलो फिर काम करना कैसे होता है? जितने संगठन में ये अंगुलियां काम करती हैं, बिखरी हुई दशामें नहीं करतीं।

समवायात्मकतामें व्यवस्था पर एक दृष्टान्त— एक बार इन पांचों अंगुलियोंमें लड़ाई हो गई। लड़ाई किस बात पर हुआ करती है? हम बड़े, हम बड़े, हम बड़े माननेसे। घरमें देख लो, समाजमें देख लो, किसी भी वर्गमें देख लो, इसी बातसे लड़ाई झगड़े होते हैं। अब एक जज साहब के पास पांचों अंगुलियां पहुंचीं। जज साहबने कहा कि अच्छा अपने-अपने बयान लिखाओ। सबसे पहिले अंगूठा बयान देनेके लिये खड़ा हुआ और बोला कि हम सबसे बड़े हैं, हमारी धाक विश्वभरमें चलती है। जब किसी बूढ़ेकी पेंशन हो जाती है तो सरकारका केवल दस्तखत ले लेनेसे ही तो काम नहीं चलता है। सरकार उससे अंगूठा लगवा लेती है, चाहे वह कितना ही पढ़ा लिखा हो। ज्यादा साख बनानी हो तो अंगूठेकी निशानी लेते हैं। अब अंगूठेने कहा कि सारे विश्वमें हमारी धाक जमती है, इसलिये हम बड़े हैं।

अब इस पहिली अंगुलीसे कहा कि तुम अपने बयान लिखावो। तो उसने कहा कि महाराज सारे विश्व पर हमारी हुकूमत चलती है। अभी कोई किसीको आर्डर दे तो हमी पहिले उठती हैं। तो महाराज हमीं तो बड़ी हैं। अब तीसरी अनामिका अंगुलीसे कहा कि तुम बयान लिखावो। अभी बीचकी अगुली को छोड दिया। उस अगुलीने कहा कि महाराज हम तो बडे धार्मिक जीव हैं। यज्ञमे, हवनमें, माला फेरने मे तिलक लगानेमे आगे-आगे चलती हैं। तो महाराज हम बडी हुई। अब इस छोटी बहिन छिंगुली से कहा कि तुम अपना बयान लिखावो तो उस छिगुली ने कहा महाराज हम तो सारे विश्वकी रक्षा करती है, हमारी होड कौन लगा सकता है? कोई लाठी मारता है तो सबसे पहिले मैं ही उसका प्रहार सहती हू। कोई लाठी मारेगा तो सबसे पहिले उसका प्रहार छिंगुली पर होगा। तो हम दूसरेकी मुसीबत अपने ऊपर लेती हू और दूसरेकी रक्षा करती हू। हमसे बडा कौन हो सकता है? अब बीच वाली, अंगुलीसे कहा कि तुम भी अपना बयान दो। तो उसने कहा कि अरे हम क्या बयान दें, हमारा बडप्पन तो इन पाचो अगुलियोंमे ही देखलो।

बहुत विचारकर जजने कहा कि देखो गर्व मत करो, तुम पाचों ही रहती हो इसलिए पाचों ही बड़ी हो, अगर इनमे से एक भी न रहे तो समझो कि सारा हाथ बेकार है। कोई उत्सुकतासे तुम्हारी ओर भारेगा भी नहीं। तो जैसे पाचों अगुलियोके सगठनमे कार्यकारिता सिद्ध है। वैसे ही समझलो कि समस्त शक्तिया और समस्त पर्यायोंके समूहमें हमारा वस्तुज्ञान व्यवस्थित होता है।

पर्यायविवरण— अब पर्यायका स्वरूप कहा जायेगा। पर्यायें यों ही असत् पदार्थोंकी निराधार नहीं हो जाया करती हैं किन्तु किसी शक्तिका परिणमन है। भले ही इससे शक्तिको न विशद जान सके किन्तु युक्ति बतलाती है कि शक्ति न हो तो परिणति किसकी कहलाए? जैसे आमफल मे पहिले कौनसा रग आता है? सबसे पहिले जब हल्का आम फूलके साथ लगा होता है उस समय उसका रंग काला होता है, फिर होता है नीला, फिर होता है हरा, फिर होता है पीला फिर लाल हो जाता है। और जब सड़ जाता है तो उस पर सफेदी आ जाती है। आम इतने रूप बदलता है, उन प्रसंगोमे काला नीला हुआ तो रूपमें व्यक्ति तो बदल गयी किन्तु रूपशक्ति नहीं बदली। जिस रूप शक्तिका प्रकटरूप कालापन था अब उस ही रूप शक्तिका प्रकट रूप नीलापन हो गया। तो रूपशक्ति और रूपव्यक्ति—ये दो होती हैं, लेकिन रूपव्यक्तिसे तो लोग परिचित

होते हैं पर रूपशक्तिका भान नहीं होता है, शक्तिके परिज्ञानमें विशेष प्रतिभाकी आवश्यकता होती है, और यों तो पर्यायोंको भी लोग जानते तो है पर पर्यायरूपसे जान जायें इसमें भी प्रतिभाकी आवश्यकता होती है। मोही अज्ञानी जीव पर्यायको ही तो जान रहे हैं किन्तु उन्हे पर्यायरूप से नही जान रहे हैं, यही वस्तुसर्वस्व है ऐसा जान रहे हैं।

सूक्ष्मदृष्टि और स्थूलदृष्टिसे पर्यायोंका सूक्ष्म और स्थूल दर्शन—पर्यायमें भी सूक्ष्मदृष्टिसे परिणमन देखना और स्थूल दृष्टिसे परिणमन देखना—ये दो पहिचान ज्ञात होती है। जैसे यह बल्ब जल रहा है तो इसमें सूक्ष्म परिणमन एक-एक सेकेण्डमें सैकड़ों बार हो जाता है पर उसका पता नही चलता है। जब एकदम मद्धीसे जाय एकदम तेज हो जाय या बुझ जाय फिर जल जाय तो ज्ञात होता है कि इसमें तो नाना अवस्थाए बन रही है। इसी तरह इस द्रव्यमें और प्रसग प्राप्त इस आत्मामें सूक्ष्मदृष्टिसे परिणमन हो रहा है और स्थूलदृष्टिसे लक्ष्यमें आने वाला भी परिणमन हो रहा है। इसमें सूक्ष्मदृष्टिसे कहे जा सकने वाले परिणमनका नाम स्वभावपर्याय है और स्थूल परिचयमें आने वाले परिणमनका नाम विभावपर्याय है। इनमें से स्वभावपर्यायकी बात अब कही जायेगी जो कि समस्तपदार्थों में निरंतर पाया जाता है। यहां शुद्ध पर्यायका मतलब निर्दोष द्रव्यकी पर्यायसे नहीं है किन्तु उसका द्रव्यत्व गुणके कारण प्रतिसमय निरन्तर होने वाली पर्यायसे प्रयोजन है। उस स्वभावपर्यायका वर्णन अब आगे बताया जायेगा।

अर्थपर्यायरूप स्वभावपर्याय—जीवके गुणोंका वर्णन करके अब पर्यायोंका वर्णन किया जा रहा है। पर्यायें स्वभावपर्याय और अशुद्धपर्याय यों दो प्रकारकी कही गयी है। स्वभावपर्यायमें द्रव्यत्व गुणके कारण जो अपने आपमें षड्गुणभाग वृद्धि हानिको लिए हुए परिणमन होता है उसे सम्मिलित किया है। यह स्वभावपर्याय छहों द्रव्योंमें साधारणरूप है इसका नाम है अर्थपर्याय। यह अर्थपर्याय न तो मानसिक विकल्पोंसे जाना जा सकता है और न वचनोंसे जाना जा सकता है। अत्यन्त सूक्ष्म है, आगमकी प्रमाणतासे वह जाननेमें आता है। ६ प्रकार की हानि वृद्धिके विकल्प हैं। जैसे पूरे पावरसे जलते हुए लट्टूमें भी सूक्ष्मतासे हानि वृद्धियां चल रही है। देखनेमें ऐसा लगता है कि यह प्रकाश तो वैसा का ही वैसा है पर यदि उसमें हानि वृद्धियां न चलती होती तो परिणमन नहीं हो सकता। प्रति समय उस प्रकाशका रहना एक अनन्त वृद्धि हानि परिवर्तनको लिए हुए है।

स्वभावपरिणमन— जैसे केवल ज्ञानादिकमें अनन्तगुण वृद्धि आदिक परिणमन हो रहे हैं और फिर भी कहीं उन हानियोंके फलमें यह नहीं हो जाता कि केवलज्ञान पहिले जितना जानना था उससे कभी कम जानने लगे। उतनाका ही उतना जानता है फिर भी केवलज्ञानपरिणमन मे भी अनन्तगुण वृद्धि और अनन्तगुण हानि रूप परिणतियां होती हैं। ये वस्तुके सत्त्वके कारण ऐसी अपने आप होती हैं। आपका यह जो शरीर दिख रहा है, जैसा कल दिखता था वैसा ही आज दिख रहा है, कोई फर्क नहीं नजर आ रहा है, लेकिन इस शरीरमें भी अनन्तगुण हानियां हो गयी हैं, अनन्तगुण वृद्धिया हो गयी हैं और उनका कुछ मालूम नही पडता।

प्रतिक्षण परिणमन— जैसे कल बालक जितना ऊँचा था कलकी अपेक्षा आज उस बालकमे कुछ लम्बाई बढी या नही? दिखता तो ज्योंका त्यों है। पर यदि आज लम्बापन नहीं बढा तो ऐसे-ऐसे बहुतसे आज निकल जाये तो लम्बाई ही न बढ़े। फिर वह कभी बडा ही नही हो सकता है। परन्तु जिसने एक साल पहिले देखा हो उसकी दृष्टिमे तो साफ नजर आता है कि बडा हो गया है। तो जैसे १ वर्ष बाद बच्चे को देखने पर मालूम होता है कि यह ८ अगुल लम्बा हो गया है तो क्या वह ११ महीने २६ दिन २३ घटा और ५६ मिनटमें कुछ भी नहीं बड़ा हुआ? क्या वह एक मिनटमे ही ८ अगुल बढ गया? ऐसा नहीं है। तो क्या हर महीने पौन-पौन अगुल बढा? ऐसा भी नहीं है कि वह २६ दिन २३ घटा और ५६ मिनट न बढा हो और आखिरी १ मिनटमे ही पौन अगुल बढ गया हो, ऐसा भी नहीं है, किन्तु रोज रोज प्रति मिनट प्रति सेकेण्ड वह बालक बढ रहा है। मालूम पड़ता है साल भर बाद। तो ऐसा भी वस्तुका सूक्ष्म परिणमन होता है जो हमारे मनकी पकड़मे नही आ सकता है। और फिर भी होना वहां आवश्यक है।

आधारके आधारपर आधारित विभाव द्वारा आवारवा तिरोभाव-- यह अर्थ पर्यायरूप परिणमन जो कि प्रत्येक पदार्थमे अपने ही चक्रके कारण हो रहा है वह स्वभावपर्याय कहलाता है। इस स्वभावपर्यायके साथ साथ विभाव बन रहा है तो विभावपर्याय भी लिपट गयी। इस स्थितिमें स्वभावपर्याय गौण हो गयी और विभावपर्याय दृष्टा हो गयी। यहा स्वभावपर्याय जो कह रहे हैं उसका अर्थ निर्दोष शुद्ध पर्यायसे नहीं है किन्तु वस्तुमे वस्तुत्वके कारण जो षड्गुणहानिवृद्धि रूप परिणमन चलता है उस परिणमनेसे प्रयोजन है। जैसे कालद्रव्य अपने षड्गुण हानिवृद्धिसे

निरन्तर परिणम रहा है, धर्म अधर्म द्रव्य आकाश द्रव्य षड्गुणहानि वृद्धिसे निरन्तर परिणम रहे हैं, आकाश अमूर्त होने पर भी कुछ कुछ ख्याल आता है, वह आकाश निरन्तर परिणम रहा है, और यों नहीं परिणम रहा है, प्रति समय अनन्तगुणवृद्धि अनन्तगुणहानि इतने बडे बड़े फर्कके साथ परिणम रहा है, लेकिन वहा जरा भी फर्क नहीं मालूम होता है। तो ऐसे ही सत्त्वके नाते हमे आप जीवोंमें निरन्तर यह विलनार परिणमन चल रहा है। यही है स्वभावपर्याय।

प्रगतिशील परिणमन और स्थिरताका समन्वय-- इसके अनन्त भाग वृद्धि, असख्यात भाग वृद्धि, सख्यात भाग वृद्धि, असख्यातगुण वृद्धि और अनन्तगुण वृद्धि इतने तो बढ जाते हैं और अनन्तभागहानि, असख्यातभाग हानि, सख्यातभाग हानि, सख्यातगुण हानि, असख्यातगुण हानि और अनन्तगुण हानि इतने अधिक घट जाते हैं और फिर भी परिवर्तन मालूम नहीं होता है। यह वस्तुत्वके नातेसे परिणामनकी बात चल रही है। आपको दिखता होगा कि यह बल्ब कितनी स्थिरतासे एकरूप जल रहा है, कुछ मालूम पडता है कि इसमें कभी प्रकाश घट गया और कभी प्रकाश बढ गया ऐसा यहा कुछ मालूम पड रहा है क्या? नहीं मालूम पड़ रहा है। कई पावरमें ही कमी आ जाय, बिगड जाय तो मालूम पड़ने लगेगा। इस समय तो ऐसा एकरूपसे जल रहा है, जरा भी प्रकाशमें कमी होता नजर नहीं आ रही है और न कुछ अधिक होता नजर आ रहा है ऐसा लग रहा नहीं, फिर भी यह इतना ज्यादा बढ जाता है प्रकाश कि जिसको अनन्तगुण वृद्धि तक कहा जाय, अनन्तगुणा बढ गया है प्रकाश और अनन्तगुणा घट गया है प्रकाश, इतना बढाव और घटाव हो गया है, और हमें ऐसा लगता कि ज्योंका त्यों बना हुआ है। मालूम पडनेकी बात यह है कि बहुत ही घटे तब मालूम पडता है। तो जितना घटने पर आपको मालूम पडा कि प्रकाश घटा उससे आधा भी तो घटा होगा उससे हजारवा हिस्सा भी घटा होगा, उससे लाखवा हिस्सा भी तो घटा होगा। पर सबको अपनेका परिचय नहीं होता। कभी एकदम प्रकाश बढ गया यह आपकी समझमें आया तो कभी उससे आधा भी तो बढता होगा, हजारवां, लाखवा, करोडवा हिस्सा भी तो बढता होगा, पर उनका परिचय नहीं होता।

अस्तित्व और परिणमनका अनिवार्य सम्बन्ध-- यह वस्तुके स्वभाव परिणमनकी बात चल रही है। वस्तु है तो स्वभावत. परिणमनशील है और इतने लम्बे हानि वृद्धिसे निरन्तर परिणमता रहता है। तो यह

परिणमन तो मूलमे प्रत्येक द्रव्यमें चल रहा है जिसका आधार पाकर अशुद्ध उपादान हुआ तो विभावपरिणमन भी उसमें फिट बैठ जाता है। जैसे एक चक्र शुद्ध जिसमे और कुछ चीज नहीं लिपटी, बिजलीका करण्ट सा एकदम चल रहा है तेज, वह उस चक्रका शुद्ध भ्रमण हो रहा है और रुईके छोटे २ हिस्से कण उडकर उस चक्रमे लग जाये तो उस मूलमे घूमते हुए चक्रके आधारमे वे रुईके सारे कण भी उसी तरह भ्रमण करेंगे, इसी तरह प्रत्येक पदार्थ अपने सत्त्वके नातेसे अपने आपमें षड्गुण वृद्धि हानिरूपसे निरन्तर परिणमते हैं। वहा विभावपरिणमन होता है तो भी उस परिणमनमें आ जाता हैं। विभावपरिणमनका आधार तो वह मूल परिणमन है। यद्यपि दृष्टान्तमें दिए गए चक्र और रुईके पिंडके भ्रमण जैसी वहा दो बातें अलग नहीं हो पाती, फिर भी स्वरूपदृष्टिसे वे दो बातें अलग मालूम होती हैं। ज्ञान दृष्टि इतनी तीक्ष्ण होनी है कि एक ही आत्माके स्वभावको ज्ञान दर्शन आदि गुणोंमे विभक्त करके और परस्पर निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध बना दे, ऐसी ऐसी ज्ञानदृष्टियोंका जौहर होता है।

षड्गुणहानिवृद्धिरूप शुद्ध परिणमन— यह षड्गुणहानिवृद्धिरूप शुद्ध परिणमन प्रत्येक पदार्थमें निरन्तर पाया जाता है, किन्तु जो विभाव परिणत हैं वहा उस आधारमें अपने आपको ऐसा जमाये हुए होता है कि कहीं वहा भिन्न २ रूपसे दो परिणमन नहीं हो गये किन्तु आधारआधेय-पन ज्ञानदृष्टिसे समझमे आता है। जैसे समुद्र होता हैं तो २० हाथ नीचे समुद्रमे और तरहका परिणमन है समुद्रके ऊपर और तरहका परिणमन हैं, ऐसा यहां नहीं लगाना है कि इस जीवमें भीतरमें तो यह स्वभाव परिणमन चल रहा है और ऊपरसे विभावपरिणमन चल रहा हैं। स्वरूपदृष्टिसे षड्गुणहानिवृद्धिरूप शुद्ध परिणमन द्रव्यके अन्दर पड़ा रहता है, पर वही परिणमन विभावपरिणमन रूपसे विभावपरिणमन वालेमे उदित होता है। हो उदित, फिर हम विभावपरिणमनको न तकें और मूलपरिणमन षड्गुणहानि वृद्धि परिणमनसे देखे तो क्या जान नहीं सकते? जानते हैं, ऐसा वस्तुका यह स्वभावपरिणमन है।

व्यञ्जनपर्यायें— अब अशुद्ध पर्याय पर दृष्टि दें। जीवके नर, नारक, तिर्यञ्च और देव पर्याय—येविभाव व्यजनपर्याय हैं और ये अशुद्ध पर्यायें हैं। अशुद्ध पर्यायके मायने कई द्रव्योंके सम्बन्धमें हुई पर्याय, शुद्ध पर्यायके मायने एक ही द्रव्यका परिणमन। शुद्ध और अशुद्धका अध्यात्म ग्रन्थोंमें प्राय यह ही अर्थ चलता है—केवल एक द्रव्यके परिणमन

का नाम शुद्ध परिणमन है और अनेक द्रव्योंके सम्बन्धसे होनेवाले परिणमनोंका नाम अशुद्ध परिणमन है। द्रव्यकर्म और विभावपरिणत जीव तथा शरीररूप बने हुए नोकर्म इनका संबन्ध है और जो परिणमन बना, वह है अशुद्ध परिणमन। इस ही का नाम है शुद्ध व्यञ्जनपर्याय। इस तरह जीव पदार्थके सबन्धमें गुणका भी वर्णन किया गया है और गुणपरिणमनों का भी वर्णन किया गया है तथा यहा द्रव्यपर्यायोंका भी संकेत दिया गया है।

शुद्धआत्मतत्त्वके भजनका परिणाम— इन समस्त परभावोंके होने पर भी जो भव्यआत्मा एक शुद्धआत्माको ही भजता है, सेता है, वह पुरुष उत्कृष्ट लक्ष्मीका स्वामी होता है। उत्कृष्ट लक्ष्मी क्या है? मोक्षलक्ष्मी, जिस से उत्कृष्ट और कुछ न हो, जिसमें कभी आकुलता ही नहीं है, शुद्ध और स्वच्छ विकास है, उसे कहते हैं उत्कृष्ट लक्ष्मी। यहां की मानी गयी लक्ष्मी तो रुपया, पैसा, सोना, चादी आदि ये सब वैभव हैं। कोई लक्ष्मी नामकी चार हाथ वाली और हाथियोंकी सूंडसे उसके सिर पर माला गिरायी जा रही हो— ऐसी कोई लक्ष्मी नहीं है। अगर ऐसी कोई लक्ष्मी होवे तो दूकान धन्धा सब कुछ छोड़कर उसी लक्ष्मीको ढूंढनेमें लग जावो, सब काम छोड़ दो। वह कहीं मिल जाये और आपको अपना ले, फिर तो आप बहुत ही मालोमाल हो जायेंगे, पर लक्ष्मी तो है ही नहीं। इसी वैभवका नाम लोकमें लक्ष्मी रखा है।

लक्ष्मीपति और लक्ष्मीपुत्र— भैया! कोई कहलाता है लक्ष्मीपति और कोई कहलाता है लक्ष्मीपुत्र। इन्हीं दो शब्दोंसे बोलते हैं—लक्ष्मीपति और लक्ष्मीपुत्र। लक्ष्मीपति वह कहलाता है जो लक्ष्मीको खर्च करे, दान करे, भोग करे, उसका नाम है लक्ष्मीपति और लक्ष्मीपुत्र उसका नाम है कि जैसे पुत्र माताके चरण छूवे, हाथ जोड़े, पूजा करे, मांको भोग न सके, स्पर्श न कर सके। इसी तरह लक्ष्मीपुत्र, जिसका यह पुत्र है, उस लक्ष्मी मां को, धन-पैसेको पूजे, उसके चरण छूवे, उसकी सेवा करे, उसकी आराधना करे, उसको हृदयमें स्थान दे, पर एक भी पैसा न खर्च कर सके, उसका नाम है लक्ष्मीपुत्र। वह तो लक्ष्मीका पुत्र है, उस लक्ष्मीका कैसे भोग करे, पुत्र होकर मांके साथ अन्याय करे, यह कैसे हो सकता है? यही सब व्यवहारमें लक्ष्मी कहे जाते हैं।

परमश्री— वस्तुतः लक्ष्मी तो आत्माकी ज्ञानलक्ष्मी है। उस ज्ञानलक्ष्मीका वही पति होता है, जो परभावोंके होते रहने पर भी शुद्ध षड्गुण हानिवृद्धि पर्यायपरिणत एकस्वभावमात्र आत्मतत्त्वको निरखता है, जो

आत्मतत्त्व सहजगुणका पिंड रूप है, पूर्ण ज्ञानस्वभावमय है उसको जो पुरुष शुद्ध दृष्टि बनाकर भजता है, सेवता है वह पुरुष संसारके समस्त संकटोंसे मुक्त हो जाता है। यहां बहुत कुछ वर्णन किया गया है। आत्माके गुण, आत्माकी पर्यायें, अशुद्ध पर्यायें ये सब बताई गयी हैं। पर जिस पुरुषके चित्तमें केवल कारणसमयसार ही विराजमान रहता है, वह शीघ्र समयसारको प्राप्त होता है। जिसकी जहां तीव्र रुचि होती है उसका मन वहां ही लगा रहता है, चाहे बीचमें नाना और प्रसंग आ जायें और उनमें भी कुछ पड़ना पड़े तो भी अपनी मूलरुचि उसकी ही ओर आकर्षित रहती है तो ज्ञानी जीवके भी विभावपरिणमन चल रहे हैं। फिर पर भी चूँकि उसकी रुचि कारणसमयसारकी है अतः उसकी प्रतीतिमें एक कारण-परमात्मतत्त्व विराजमान रहता है। यह कार्यसमयसार रूप जो अपने आपसे उठता है, अपने आपमें सुगमतया सहजदृष्टिसे उत्पन्न होता है उसको जो भजते हैं और इस कारणपरमात्मतत्त्वको भजते हैं वे संसारके संकटोंसे मुक्त हो जाते हैं।

आत्मतत्त्व— यह आत्मतत्त्व कैसा है कि इसमें कभी तो शुद्धगुण दृष्ट होते हैं और कभी अशुद्ध गुण दृष्ट होते हैं, कहीं सहज पर्यायोंसे विलयमान होता है कहीं अशुद्धपर्यायोंसे यह युक्त होता है। यह जीव एक दृष्टिसे तो सनाथ दिख रहा है और एक दृष्टिसे अनाथ दिख रहा है। जिसको अपने आपके सहजस्वरूपका परिचय नहीं है वह तो अनाथ है और जिसे परिचय है वह सनाथ है। ऐसे विचित्र जौहर वाले इस कारण-परमात्मतत्त्वको, चैतन्यस्वभावात्मक आत्मतत्त्वको मैं नमस्कार करता हूं, भावना करता हूं और उस रूपमें मैं उतारता हूं, ऐसी दृढ भावनाके साथ ज्ञानी पुरुषका इस कारणपरमात्मतत्त्वकी ओर आकर्षित रहता है, जिसके फलमें उसे समस्त अभीष्टोंकी सिद्धि हो जाती है। इस प्रकरणसे केवल यह शिक्षा ग्रहण करनी है कि हमको सहजस्वरूपकी दृष्टि प्राप्त हो और उसमें ही हमारा निरन्तर रमण हो, अन्य कुछ हमको आवश्यक नहीं है।

णरणारयतिरियसुरा पज्जाया ते विभावमिदि भणिदा।
कम्मोपाधिविवज्जियपज्जाया ते सहावमिदि भणिदा॥१५॥

व्यञ्जनपर्याय— जीवतत्त्वके परिज्ञानके सम्बन्धमें स्वभाव और गुण पर्यायोंकी मुख्यतासे वर्णन किया है। अब द्रव्यपर्यायकी दृष्टिसे कुछ वर्णन किया जाता है। गुणोंका वर्णन आतरिक निरूपण है और द्रव्यपर्यायोंका वर्णन बहिरङ्ग निरूपण है। पदार्थका लक्षण स्वभावसे जाना जाता है और वह स्वभाव प्रदेशरूप होता है। उन समस्त गुणोंका जो एक आधारमें पिंड

बना हुआ है वही तो प्रदेशात्मक चीज है और जब वस्तु प्रदेशात्मक होती है तो उसकी प्रदेशपर्याय भी होगी अथवा प्रदेशवत्वगुण के विकारका नाम व्यञ्जनपर्याय है अथवा द्रव्यपर्याय है।

स्वभावपर्याय और विभावपर्याय— जीवमें द्रव्यपर्यायकी मुख्यता से वर्णन किया जा रहा है। यहा। द्रव्यपर्याय भी दो प्रकारके हैं—स्वभावद्रव्यपर्याय और विभावद्रव्यपर्याय। नर, नारक, तिर्यञ्चदेव—ये पर्यायें विभावपर्याय है। ये द्रव्यके या प्रदेशत्वगुणके विभावरूप पर्यायें है और कर्मोपाधिसे रहित पर्यायें स्वभावपर्याय कहलाती हैं। इन स्वभावपर्याय और विभावपर्यायोंमें स्वभावपर्याय दो प्रकारसे देखना चाहिये, एक कारण शुद्धपर्याय दूसरा कार्य शुद्धपर्याय। परमपारिणामिक भाव तो कारण शुद्ध पर्याय है और सिद्ध भगवानकी अवस्था प्रभुकी सिद्ध अवस्थामें जो आकार होता है वह कार्यशुद्ध व्यञ्जनपर्याय है। पारिणामिक भाव भी एक भेदरूप है और द्रव्यपर्यायात्मकतासे सम्बन्ध रखने वाला है, इस लिए उस पर्यायको लिए हुए है किन्तु वह कारणशुद्धपर्याय है अर्थात् उस पारिणामिक भावका आधार करके सर्वपर्यायें प्रकट हुई है और है वह पारिणामिक भाव भेदरूप। इस कारण इसे कारणशुद्धपर्याय कहा है।

पारिणामिक शब्दका अर्थ— परिणाम प्रयोजन यस्य स पारिणामिक। जिसका परिणमन प्रयोजन हो उसे पारिणामिक कहते हैं। पारिणामिक शब्दका सीधा अर्थ ध्रुवभाव स्थिर भाव नही है वह तो फलितार्थ है। पारिणामिक भावका सीधा अर्थ है—जिसका परिणमन प्रयोजन हो उसे पारिणामिक कहते है। अर्थात् जिसका आधार करके प्रति समय निरन्तर परिणमन होता रहता है, परिणमन ही जिसका प्रयोजन है, पारिणामिक शब्द पर्यायको ओझल करके नहीं बना है, इसलिए पारिणामिकभाव पर्यायरूप भाव है किन्तु वह द्रव्यका मौलिक शुद्धभाव है। इस कारण उसे शुद्धपर्याय कहते है और वह समस्त पर्यायोंका कारणभूत है। इस कारण उसे कारणशुद्ध पर्याय कहते है।

कारणशुद्ध पर्याय— सहज शुद्ध निश्चयके द्वारा अनादि अनन्त अमूर्तिक अतीन्द्रिय स्वभाव शुद्धसहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजचारित्र और सहज परमवीतराग आनन्द—इन चतुष्टयात्मक जो आत्माका शुद्धअतरतत्त्व है, स्वरूप है वही हुआ स्वभाव अनन्तचतुष्टय। उस स्वभाव अनन्तचतुष्टय स्वरूपके साथ लगी हुई जो पारिणामिक भावकी परिणति है उसको कारण शुद्धपर्याय कहा है। यहा द्रव्यपर्यायके कथनमें बड़ी सूक्ष्मदृष्टिसे शुद्धपर्यायों का मंतव्य बनता है उसके स्वभावको छुवे बिना वह नही बनता, इसी कारण

शुद्धपर्यायके वर्णनमे भले ही द्रव्यपर्यायकी मुख्यतासे बोला जाये, फिर भी स्वभावको स्पर्श करके शुद्धपर्यायका अवगम होता है। जैसे पूछे कि सिद्ध भगवान्‌के व्यञ्जनपर्याय क्यों कहा है ? तो सिद्धभगवान्‌के जहां न शरीर है, न कर्म है, न अन्य कोई परभाव है, केवल एक आत्माका ही आकार है, जानने तो चलेंगे आकारको, पर उसे जानते हुए स्वभाव और गुणके परिचयमे ही जाना पडेगा। यह पारिणामिकभावकी परिणति है कारण शुद्धपर्याय।

कार्य शुद्धपर्याय-- कार्य शुद्धपर्याय आदि सहित है, किन्तु अन्तरहित है। विभावके बाद जो शुद्धपर्याय होती है, वह किसी समयसे ही तो होती है, परन्तु जीवकी पर्याय एक बार शुद्ध हो जाये तो अनन्तकाल तक फिर अशुद्ध न बनेगी। जो गत चतुर्थकालमें मुक्त हुए हैं, वे भी पूर्वकालमें ससारी थे। उन्होंने भ्रमण किया और उनके आदिमें निगोद अवस्था थी और जो अभीसे १०-२० कल्पकाल पहिले भी चौथे कालमें मुक्त हुए, उनके भी पहिले संसारीपर्याय थी और पहिले निगोद अवस्था थी। जो बहुत ही पहिले जहा तक दृष्टि जाये, अनन्तकाल पहिले जो भी मुक्त हुए हैं, उनके भी संसारीपर्याय तो थी ही और उनके भी मूलमें यह निगोद अवस्था थी।

मुक्तिकी अनादिता-- यह मुक्ति कबसे चली आ रही है ? अनादिकालसे। इसका कहीं आदि है क्या कि कबसे जीवको मोक्ष होता चला आ रहा है ? यदि इसका आदि बन जाये कि इस समयसे जीवको मुक्ति होना प्रारम्भ हुआ तो फिर संसारकी भी आदि रखनी पडेगी कि लो इससे कुछ अधिक ८ वर्ष पहिले ससार बना था, क्योंकि मोक्षका जो समय हुवा, उससे पहिले ८ वर्ष तो जीव ससारमें ही रहा है तो मुक्तिकी आदि माननेपर सत्पदार्थोंमें आदि माननी पडेगी। इसलिये मुक्ति अनादिसे है और ससार भी अनादिसे है, फिर भी मुक्तिसे ससार ८ साल बडा है। इतने पर भी न मुक्तिकी आदि है और न संसारकी आदि है। कितना अद्भुत स्वरूप है।

कार्य शुद्धपर्यायकी विशेषता-- जो भी मुक्त हुआ है, वह पहिले अशुद्ध अवस्थामे था, तत्पश्चात् शुद्धअवस्थामें आया और उसका आदि हुआ, पर अन्त नहीं है। यह प्रसग चल रहा है कार्य शुद्धपर्यायका। जो जीव सर्वप्रकार निर्दोष हो गये हैं, उच्च बन गये हैं, उनकी क्या विशेषता है, यह बतायी जा रही है। वह शुद्धपर्याय तो आदि सहित है व अन्तरहित है, अमूर्त है, अतीन्द्रियस्वभावी है, शुद्धसद्भूत व्यवहारनयका विषय है। शुद्ध

है, सद्‌भूत है किन्तु पर्यायकथन है, उस शुद्ध सद्‌भूत व्यवहारसे यह अनन्त चतुष्टयात्मक है। जहा केवलज्ञान केवल दर्शन अनन्त आनन्द और अनन्त शक्ति प्रकट हुई है ऐसी परमउत्कृष्ट क्षायकभावकी जो शुद्धपरिरिणति है उसे कहते है कार्यशुद्धपर्याय।

केवलज्ञानकी क्षायिकता और प्रवर्तमानता— क्षायिकता क्षयके काल मे होती है। प्रभुके जब केवलज्ञान हुआ था, वह प्रथम समयमें केवलज्ञान कर्मके क्षयका निमित्त पाकर हुआ था। उसके बाद अब सदाकाल केवलज्ञान केवलज्ञान चल रहा है तो वह आत्माके स्वभावसे हो रहा है या क्षयसे हो रहा है? आत्माके स्वभावसे हो रहा है। जैसे धर्म अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य आदि शुद्ध द्रव्योका परिणमन उनके स्वभावसे चल रहा है। इसी तरह परमात्माका केवलज्ञानादिक परिणमन स्वभावसे चल रहा है। हां जो प्रारम्भका समय था उस समय यह क्षायकभाव कहलाता था, सो अब तक भी उन केवलज्ञानादिक भावोको क्षायक कहना यह उपचार कथन है। क्योकि प्रारम्भ समयमे यह केवलज्ञानादिक कर्मोके क्षयका निमित्त पाकर हुआ था। इस कारण वह तब क्षायिक भाव कहलाया था और उनका स्मरण अब तक बना हुआ है कि आखिर होता तो कर्मोके क्षयके निमित्त से ही ना, इसलिए क्षायिकभावका व्यपदेश हुआ करता है।

निमित्तक्षयकालमे क्षायिकता— वस्तुस्थिति ऐसी है कि कर्मोके क्षय का समय एक है, क्षय माने वियोग। वियोग कहते है अंतिम सयोगको। संयोगके व्ययके प्रथम समयका नाम वियोग है फिर तो रहितपना है। वियोग नहीं कहलाता। जैसे कोई आदमी आपको स्टेशन पहुचाने गया और आप आगे चले गए तो आपसे पूछा जाय कि तुम्हारे मित्रका वियोग कहा हुआ था? तो आप क्या उत्तर देंगे? कहां हुआ था? स्टेशन पर। अरे स्टेशन पर तो सयोग था। तो सयोगके अतिमसमयको, सयोगके व्ययके कालको वियोग कहा करते हैं। ऐसी क्षायिकता कर्मके वियोग होनेके समयमे है, फिर बादमे तो मात्र परमपारिणामिक भाव है। उस शुद्ध परिणमन को चूँकि उत्पत्ति हुई थी उसकी क्षयका निमित्त पाकर इस लिए अब भी कहते जाते हैं क्षायिक। ऐसी जो शुद्धपरिणति है उस परिणतिको कार्यशुद्धपर्याय कहते हैं।

सूक्ष्म अर्थपर्याय— द्रव्यदृष्टिसे शुद्धपर्याय देखी जाय तो सूक्ष्म ऋजूसूत्रनयसे जो तका गया है अगुरुलघुत्व गुण द्वारा सूक्ष्म परिणमन जो कि छहो द्रव्योमे एक समान पाया जाता है वह शुद्ध अर्थपर्याय कहलाता है। यह शुद्ध परिणमन जैसा जीवमे है वैसा पुद्‌गलमे है। छहों द्रव्योमे

साधारणरूपसे पाया जाता है। जैसे अस्तित्व गुण सब द्रव्योंमे एक समान है या कुछ विलक्षणतावो लिए हुए होता है? एक समान है। विलक्षणता को लिए हुए तो असाधारण गुण है और असाधारण गुणका मनमे आश्रय रखकर अस्तित्वका मतव्य बनाएँ तो विलक्षण जचता है तब उसका नाम पड़ता है आवांतर सत्ता। अस्तित्व गुणका कार्य आवातरसत्ता बनाना नहीं है। अस्तित्वगुणका कार्य तो सामान्य सत्‌रूप बनाना है, जो छहो द्रव्योंमे सामान्यरूपसे पाया जाता है। आवातर सत्ता तो असाधारण गुण और अस्तित्व गुण दोनोके समवायात्मक दृष्टिका परिणाम है। तो जैसे अस्तित्व गुण छहो द्रव्योंमे एक समान है। अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, प्रमेयत्व छहो साधारणगुण छहो द्रव्योंमे एक समान हैं। इस ही प्रकार द्रव्यत्वगुण अगुरुलघुत्व गुणादिकके कारणसे परिणमनशीलताके कारण जो मूलमे परिणमन चलता है वह परिणमन भी छहो द्रव्योंमे एक समान है। केवल छहोद्रव्योंमे साधारणरूपसे पाया जाने वाला जो सूक्ष्म परिणमन है, जो अव्यक्त हैं वह है शुद्धपर्याय।

व्यञ्जन अर्थात् व्यक्त परिणमन—भैया! जितने भी व्यक्त परिणमन हैं वे सब स्थूल परिणमन है। जैसे एक बहुत बडा चक्का घूमता है, तो चक्केकी आखिरी कोर घूमती हुई स्पष्ट नजर आती है और ज्यों-ज्यो उस छोरसे अन्दरको देखते जाये त्यों-त्यों घुमाव कम नजर आता है और कीलके ही पास जो अश है उसका घुमाव विदित ही नहीं हो पाता। तो इस प्रकार पदार्थकी परिणमनशीलताके कारण मूलमे जो परिणमन हैं वह सूक्ष्म है, सब द्रव्योंमे एक समान हैं। अब असाधारण गुणको साथ रखकर जो परिणमन देखेगा वह व्यक्त परिणमन है, स्थूल परिणमन है, उनमे शुद्ध और अशुद्धका भेद होता है। पर परिणमनशीलताके कारण जो परिणमनमात्र है वह तो अपने एकत्वको लिये हुए हैं। उसमे शुद्ध और अशुद्धका भेद नहीं है।

व्यञ्जनपर्यायोका व्यक्तरूप— पर्यायके विषयमें ये सब भेद जान लेने चाहिये और उनकी जो व्यञ्जन पर्यायें है अर्थात व्यक्त पर्यायें हैं जो इन्द्रिय तकसे भी जान लिये जायें वे सब है नर, नारक तिर्यञ्च देवरूप स्वर और व्यञ्जन होते हैं ना, तो स्वर तो उसे बोलते हैं जो अकेला बोला जा सके, जैसे अ आ इ ई आदि खूब अच्छी तरह बोल लो। पर व्यञ्जन को भी कोई स्वरका सहारा लिए बिना बोला जा सकता है क्या? जैसे क बोलो, पर उसमे अ मत लगाना। क्या बोल सकते हो? आप कहेंगे कि हम बोलते हैं आधा क्, क्या? इसमे बोला तो शुद्ध क्, मगर उस शुद्ध क्

को बोलने के लिए य उत्तरवर्ती आ का सहारा लिया गया। कहीं भी अ न लगा हो, स्वर न लगा हो तो आप व्यञ्जन बोल ही नहीं सकते। व्यञ्जनमें स्वर होना ही चाहिए तब बोला जा सकता है और स्वर स्वयं आधाररूप हैं। उनके लिए और आधार न चाहिए।

स्वरपर्याय और व्यञ्जन पर्याय— इसी प्रकार नर नारकादिक व्यञ्जन पर्यायें है। इसके लिए कोई आधार चाहिए, वह आधार है कारण शुद्धपर्याय अथवा अर्थपर्याय। अगुरुलघुत्व गुण द्वारसे होने वाले परिणमन को और आधार न चाहिए। इसलिए वह है स्वर पर्याय और नर नारकादिक हैं व्यञ्जन पर्याय, ये स्वरसे विलक्षण हैं व्यञ्जन पर्याय आदि सहित है व अंत सहित है, विजातीय विभाव स्वभावरूप है। विजातीय अर्थात् मूर्तपदार्थके सम्पर्कसे हुए हैं, इनका विनाश देखा जाता है, ये नर नारकादिक पर्यायें विभावव्यञ्जनपर्यायें कहलाती है। इस सम्बन्धमे फिर और वर्णन चलेगा।

व्यञ्जनपर्यायो की अज्ञानकारणकता— अब व्यञ्जन पर्यायका वर्णन करते हैं। पर्यायवान् पदार्थोंके ज्ञानके बिना पर्यायके स्वभावसे शुभ अशुभ और मिश्र परिणामोंके द्वारा यह आत्मा व्यवहारसे मनुष्य बनता है। उसकी जो मनुष्यके आकाररूप व्यञ्जन पर्याय है वह मनुष्यपर्याय नारक व्यञ्जनपर्याय है ये व्यञ्जन पर्यायोके प्रकार चारगतियों रूप हैं। इन पर्यायोकी उत्पत्तिका मूल कारण क्या है? तो पर्याय जिसमे प्रकट हुई है ऐसी पर्यायो का ज्ञान न होना, सो पर्यायोंके पाते रहनेका मूल कारण है। सम्यग्दर्शन होने के बाद भी जो कुछ पर्यायें और पानी पड़ती है, उनके भी मूल सम्यग्दर्शन से पहिले जो अज्ञान था वह कारण है। क्योंकि उसी अज्ञानसे जो सिलसिला बना था उस सिलसिलेके अन्दर ही शेषपर्यायें उसे मिलती हैं।

मनुष्यपर्यायकी उत्पत्तिका कारण— मनुष्य बनना न केवल पापपरिणामसे होता और न केवल पुण्य परिणामसे होता, किन्तु पाप और पुण्य दोनोंके मिश्र परिणामसे होता है। यह मनुष्यपर्याय वस्तुगत दृष्टि से देखा जाय तो न केवल जीवके है, न केवल कर्मके है, न केवल उनकी वर्गणावोंके है, और ऐसा भी नहीं है कि सूक्ष्म अंशरूप पर्याय इन तीनो की मिलकर बनी हो अर्थात् तीनोको मिलकर भी कोई एक परिणमन नहीं है। फिर भी स्थूलरूपसे ज्ञानमें आने वाली यह मनुष्यपर्याय जीव, कर्म व आशरीरवर्गणा इन तीनोंका पिण्डरूप है।

नारकत्वका साधन व गतिके अनुकूल भाव— नरकपर्याय भी व्यंजन

पर्याय है। केवल अशुभ कर्मों के द्वारा यह आत्मा नारकी बनती है, यह नारक पर्याय व्यवहारनयसे ज्ञात होती है। जो नरकके आकार पर्याय हुई, उसे नरक पर्याय कहते हैं। जिस पर्यायमे जीव पहुचता है उस जीव की परिणति पर्यायके अनुकूल बनती है। आज कोई मनुष्य है तो मनुष्य के अनुकूल उसके भाव चलेंगे। जैसे मनुष्य खाते हैं, जैसे मनुष्य रहते हैं उस तरहकी वृत्ति होती है। वही जीव मनुष्य पर्याय छोडकर यदि बैल, घोडा आदि तिर्यंच बन गया तो उसकी वहाके अनुकूल परिणति चलेगी। वहा घास खानेको, उस तरह बैठनेको, अपनी ही बिरादरी सुहानेके सब परिणमन हो जाते हैं। ये अनन्त चतुष्टयकी योग्यता रखने वाले जीव एक अज्ञानके फेरमे आकर कैसी कैसी दशावोंको भोगते हैं? ये सब बातें इन व्यंजनपर्यायोंसे ज्ञात होती हैं।

मनुष्योंके प्रकार— मनुष्य कितने प्रकारके हैं? संक्षेपमें मनुष्य तीन प्रकारके हैं—लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, कर्म भूमिया मनुष्य और भोग भूमिया मनुष्य। इन तीनों मनुष्योंकी आदतें अपनी अपनी परिस्थितिके अनुसार होती हैं। कर्मभूमिया मनुष्योंमें देखो कितने प्रकारके मनुष्य हैं? हिन्दुस्तानमे गुजरातियोंका ढग उन जैसा, महाराष्ट्रियोंका ढ ग उन जैसा, मध्यप्रदेश वालोंका ढंग उन जैसा, काश्मीर वालोंका ढ ग उन जैसा— रहन सहन रूप ढग, बोलचाल कितनी भिन्नता हुई है? तो यह तो मोटे रूपमें दिखता है। वैसे तो एक मनुष्यसे दूसरा मनुष्य नहीं मिलता है। आदतमें, परिणाममें सब एक समान हो ऐसे कोई दो मनुष्य नहीं मिलते हैं। तो कितनी विभिन्नताए हैं इन पर्यायोंमे?

नारकी जीवोंका संक्षिप्त विवरण— नारकी जीव नीचे ७ पृथ्वियोंमे रहते हैं। पहली पृथ्वीमे नारकी जितनी अवगाहनाके होते हैं उससे दूनी देह की अवगाहना वाले दूसरे नरकमें हैं। तीसरीमें उससे दूने शरीर वाले चौथे, पाचवे, छठे और सातवेंमे क्रमसे दूने दूने शरीर वाले होते हैं। वे दूसरेको देखकर रोष ही रोष किया करते हैं। पूर्वभवमें चाहे किसीका उपकार किया गया हो, आखमे अंजन लगाकर आखका रोग ही मिटाकर, चाहे वह मा ही क्यों न हो, उपकार किया गया हो, नरकमें जब वे दोनो पैदा हो गए तो उन्हें उल्टा सूझेगा। इसने तो मेरी आख फोड़नेका ही प्रयत्न किया था और उल्टा सोच सोच कर लडते रहेंगे। प्रसिद्ध बात है यहा भी कोई मनुष्य आपसमें यदि लड़ते हैं तो कहने लगते हैं कि नारकियोंकी तरह आपसमें लड़ रहे हैं।

तिर्यक् पर्यायकी उत्पत्तिका कारण व तिर्यंचोंके प्रकार— तिर्यंच

पर्याय भी व्यञ्जन पर्याय है। इसमे जब कुछ शुभ मिला हो और शुभ अशुभ मिश्र परिणाम होता हो लेकिन साथमे माया परिणमन हो तो माया चारकी अधिकतासे तिर्यंच शरीरमे जीव उत्पन्न होता है। उसका जो आकार है उसको तिर्यक्पर्याय कहते हैं। तिर्यंच तो बहुत प्रकारके हैं। प्रथम पंचेन्द्रिय तिर्यचोमे देखो—पशुपक्षी सर्पादिकके ढगके जमीन पर रेंगने वाले पचेन्द्रिय जीव हैं। पशुओमे कितनी विभिन्नताए है? बैल, घोड़ा, हाथी, हिरण, बारहसिहा, खरगोश और और भी नाम लेते जावो, कितने तरहके पशु है, कितने तरहके पक्षी हैं। कई तो दिखते भी नही हैं, कभी दिख जाये तो बड़ी विचित्र मालूम होती है। जलचर तिर्यंच देखो, पंचेन्द्रिय देखो, मछलिया, कच्छ, मगर कितना विस्तार है तिर्यचोका? चौइन्द्रिय कितनी तरहके हैं—चौइन्द्रियमे मच्छर, टिड्डी, पतिगा, मक्खी, भवरा, ततैया नाम लेते लेते पूरा नहीं पड़ सकता है। कहा तक नाम लोगे? ये इतने हैं कि मालूम भी नही हैं। तीन इन्द्रिय कितने प्रकारके हैं, दो इन्द्रिय कितने प्रकारके हैं, एकेन्द्रियकी तो शुमार ही नहीं है। १० लाख जातिकी तो वनस्पति ही बतायी जाती है। लाखों जातिके तो तो वनस्पति ही बतायी जाती हैं। लाखो जातिके तो पेड पाये जाते है। पृथ्वीके जीव, जलके जीव, आगके जीव, हवाके जीव, निगोदराशि कितनी तरहके तिर्यंच पर्यायें है, कोई नाम लेनेसे पूरा पड़ सकता है क्या?

तिर्यंचोंके प्रकारोंकी जातिया तक भी गिनानेकी अशक्यता—एक बार रात्रिके समय राजा बोला कि मन्त्री ऐसा किस्सा तो सुनावो कि जो रात भरमे पूरा न हो सके। दस घटे तक बराबर चलता रहे। क्या ऐसा किस्सा किसीको याद है? सभीको ऐसे याद होगे कि मिनटोमे पूरे हो जाए, एक घटेमे पूरे हो जाये, और १० घटेमे भी पूरा न हो सके ऐसा किस्सा किसीको याद है क्या? नहीं याद है। तो हम सुनायेगे रात भर तो न बोलेंगे पर थोड़ा बताये देते हैं कि इस तरहका किस्सा है। मन्त्री बोला, कि महाराज एक बार हम एक बागमे गए तो उस बागमे कई हजार इमलीके पेड थे, और एक एक पेड़मे १०-१० बड़ी डालिया थीं, एक एक डालीमे २०-२० छोटी डाले निकली थी और एक एक छोटी डालीमे ४०-५० जिसके आधार पर पत्ते रहते ऐसी सीके थीं। और एक एक सीकमें १००-१०० पत्ते थे। एक भवरा आया तो एक पत्ते पर बैठ गया। राजा पूछता कि अच्छा फिर क्या हुआ? मन्त्री बोला, कि भवरा फुर्रसे उड़ा सो पासके दूसरे पत्ते पर बैठ गया।' फिर क्या हुआ? फिर तीसरे पत्ते में बैठ गया। फिर? फिर और पत्ते पर बैठ गया। अब बतावो रात भ

तो क्या ऐसा किस्सा तो ६ महीनेमें भी पूरा नहीं हो सकता है। अरे! कितने पत्ते होंगे उन इमलीके पेड़ोंमें? सो चाहे कितना ही बोलते जावो, महीनोंमें भी किस्सा पूरा नहीं हो सकता। ऐसे ही कितनी जातिके तिर्यंच हैं? गिनते जावो। कुछ गिनती है क्या?

महामोहमदपानका फल— तिर्यंच पर्यायोंमें जन्म लेना अज्ञानभाव से होता है, मोह भावसे होता है, जो मोह इतना इतना प्रिय लग रहा है कि कल्पित अपने ही अपनेको सुहाये, दूसरेको गैर मानें, ये ही मेरे सब कुछ हैं। तन, मन, धन, वचन सब कुछ अपने लड़कोंके लिए, स्त्रीके लिए, परिजनके लिए हैं, औरोंके लिए कुछ बात ही नहीं है—ऐसा प्रबल मोह होता है, इस मोहका फल है ऐसी ऐसी तिर्यंच पर्यायोंमें रुलते रहना। किसके लिए यह बड़ी शान और पोजीशन बनायी जा रही है? ये दिखने वाले सब कोई साथ न जायेंगे। इनमें कुछ सारकी बात नहीं है। ये सब स्वप्न-जैसे दृश्य हैं। कोई किसीका सहायक नहीं है। बस जो पाप भाव बनाते हैं उनका फल ही हाथ आयेगा और बाह्य समागम ये कुछ भी हाथ न रहेंगे। ये तिर्यंच पर्याय व्यंजनपर्यायें हैं।

वर्णन करके अब विशेष रूपसे इसका निरूपण करते हैं।

माणुस्सा दुवियप्पा कम्ममहीभोगभूमिसंजादा।
सत्तविहा णेरइया णादव्वा पुढविभेयेण ॥१६॥
चउदहभेदा भणिया तेरिच्छा सुरगणा चउब्भेदा।
एदेसि वित्थारं लोयविभागेसु णादव्वं ॥१७॥

मनुष्यशब्दका व्युत्पत्त्यर्थ व मानवके प्रकार— चारो गतियोका स्वरूप कहो या व्यञ्जनपर्यायका स्वरूप कहो, एक बात है। मनुष्य दो प्रकार के होते हैं, वैसे तो मनुष्य तीन प्रकारके हैं, पर लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यको यहा अभी नहीं लिया गया है। मनुष्य शब्दकी व्याख्या है—जो मनुकी संतान हों, उन्हें मनुष्य कहते हैं। अन्य जगह भी यह बात प्रसिद्ध है कि सब मनुष्य मनुकी संतान है और जैनसिद्धान्तमे यह बताया है कि भोगभूमि मिटनेके बाद कुछ मनु हुआ करते हैं, जो कि कर्मभूमिकी एक नयी व्यवस्था बनाते है अथवा कुलकरोके जो संतान है, उन्हे मनुष्य कहते है। मनुष्य कहो या कुलकर कहो, एक बात है। पश्चात् यह मनुष्य शब्द कुछ रूढ़िरूप हो गया। विदेहक्षेत्रमे तो कभी कुलकर नहीं होते, क्योकि वहा स्थायीरूपसे कर्मभूमि है। कुलकर तो वहा होते हैं, जहां पहिले भोगभूमि हो और भोगभूमि मिटकर कर्मभूमि बने तो यद्यपि विदेहक्षेत्रमे स्थायी कर्मभूमि होनेके कारण कुलकर नही होते हैं, फिर भी मनुष्य शब्द रूढिसे वहाके लिये भी पुकारा जाता है। ये मनुष्य दो प्रकारके होते हैं— कर्मभूमिज मनुष्य और भोगभूमिज मनुष्य। जो कर्मभूमिसे पैदा हुए हों, वे कर्मभूमिके मनुष्य हैं और जो भोगभूमिमे पैदा हों, वे भोगभूमिके मनुष्य हैं।

भोगभूमिज मनुष्योकी परिस्थितियां— कर्मभूमिमें कार्य करना पड़ता है, तब गुजारा होता है। लिखनेका काम, खेतीका काम, व्यापार का काम, सेवाका काम, अन्य कलाका काम या हथियारका काम आदि कुछ भी काम करे, तब वहा उसका गुजारा है, पर भोगभूमिमे आजीविका का कोई कार्य नहीं करना पड़ता है—ऐसा सुनकर कई लोग सोचे कि यार हम वहीं होवें तो अच्छा है, पर भोगभूमिके जीव कर्मभूमिसे कुछ विशेष नहीं माने जाते हैं। वे भोगमे मस्त रहते हैं, जो मनमे इच्छा हुई, वहा भोग उनके सामने आ जाते हैं। इसी प्रकारके वहा कल्पवृक्षकी रचना है। जीवनभर वे अपने भोगोमे रत रहा करते है। एक सम्यग्दर्शन उनके हो, इतनी बात तक तो वहां है, पर देशव्रत या महाव्रतरूपपर्यायकी प्रकृति कर पाये—ऐसी वहा प्रकृति नही है। भोगभूमिसे विकारका भी दुःख नही होता

है। पुरुष व स्त्री एक साथ मरते हैं और जब बच्चे हों तो लड़का और लड़की एक साथ पैदा हों और उनके पैदा होते ही मां बाप गुजर जायें तो न लड़केको हींड़ना रहे और न मां बापको हींडना रहे। ऐसे बड़े सुख प्रसगमें ये भोगभूमिके मनुष्य रहते हैं। ये पाप भी अधिक नहीं कर पाते और पुण्य भी अधिक नहीं कर पाते। इसी कारण ये मरकर दूसरे स्वर्ग तकमें जन्म लेते है। इससे और ऊपर इनका जन्म नहीं है और देवगति के सिवाय अन्यपर्यायोंमें भी इनका जन्म नहीं होता है।

कर्मभूमिज मनुष्योंकी परिस्थितियां— किन्तु कर्मभूमिया मनुष्य कैसे हैं अपन? वाह रे हम जहा चाहे पैदा हो सकते हैं। भले ही इस कलिकालके कारण ऊपरके स्वर्गोंमे व मुक्तिमें नहीं जा सकते लेकिन मनुष्य ही तो जाया करते हैं। अपन तो मनुष्यके नाते बोल रहे हैं। कर्मभूमिके मनुष्य मोक्ष चले जाये, वैकुण्ठ चले जायें, स्वर्ग चले जायें, ऊर्ध्व लोकमें सर्वत्र उनका जन्म हो सकता है और मोक्ष भी हो सकता है। वैकुण्ठ किसे कहते हैं कि लोकके नकशेमें कंठके जगहमें जो रचना बनी हुई है—ग्रैवेयक है, अनुदिस है, सर्वार्थसिद्धि है, ये सब वैकुण्ठ कहलाते हैं। इनमें से चिलबिलाहट से भरे हुए वैकुण्ठ तो ग्रैवयक हैं, जहा तक मिथ्यादृष्टि का भी जन्म हैं और ऊपरके जन्म हैं उनमें चिलबिलाहट नहीं पायी जाती है। इस ग्रैवयक वैकुण्ठमे सागरों पर्यन्त ये जीव रहते हैं। फिर इतना बड़ा कालावधि व्यतीत होने पर फिर उन्हें यहा जन्म लेना पड़ता है। जैसे कुछ लोग कहते हैं कि जीव ज्यादासे ज्यादा वैकुण्ठमें चला जाय तो वहा से बहुत दिनोंके बादमें धक्के देकर गिरा दिया जाता है, उसे फिर संसारमें आना पड़ता है, ऐसा प्रसिद्ध है कहीं कहीं। वह यही वैकुण्ठ है। तो ऊर्ध्वलोकमें जहा चाहे ये कर्मभूमिया पैदा हो लें।

कर्मभूमिज मनुष्योंके सर्वत्र जन्मकी संभवता— वाह रे हम मनुष्य नरकोंमें सब जगह पैदा हो लें, औरोंको तो कैद हैं। देव नरकोंमें उत्पन्न नहीं हो सकते। चौ इन्द्रिय तकके जीव नरकमे उत्पन्न नहीं हो सकते और असञ्ज्ञी पचेन्द्रिय तो पहिले ही नरकमें जा सकते हैं। संज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च और कर्मभूमिकी स्त्री छठी नरक तक जा सकती है, पर मनुष्य सब नरकोंमे जा सकता है। एकेन्द्रियमें भी पैदा हो ले, सब जगह इसका द्वार खुला है। अब जहा चाहे पैदा हो ले। तो वे दो प्रकारके मनुष्य हैं जिसमें अब कर्मभूमियाकी बात कही जा रही है।

कर्मभूमिज मनुष्योंके प्रकार— ये कर्मभूमियां आर्य और म्लेच्छ इस तरह दो प्रकारके हैं। आर्य जीव तो वे कहलाते है जो पुण्य क्षेत्रमें

उत्पन्न होते हैं, और म्लेच्छ जीव वे कहलाते हैं जो पापक्षेत्रमें उत्पन्न होते हैं। इस व्याख्यासे जो पुण्य क्षेत्र है वहां जितने मनुष्य हैं वे सब आर्य हुए और जो पापक्षेत्र है जैसे कि लोग कहा करते हैं ऐसा स्थान है जहां अन्नका दाना नहीं मिलता बर्फीली जगह, समुद्री जगह तो वह पाप क्षेत्र हैं। ऐसे पापक्षेत्रमें रहने वाले म्लेच्छ मनुष्य कहलाते हैं, और भी इनके सम्बन्धमें विशेष वर्णन शास्त्रोंमें किया गया है, ये सब कर्मभूमिया मनुष्य हैं। अब भोगभूमिया मनुष्यकी बात कही जायेगी।

भोगभूमिके स्थान— जीवके स्वरूपका वर्णन पहिले तो अर्थपर्याय से बताया गया और स्वभावसे बताया गया, इसके पश्चात् मोटे रूपमें लोगोंको शीघ्र विदित हो सके, इस दृष्टिसे व्यञ्जनपर्यायोंका वर्णन चल रहा है। जिसमें मनुष्य व्यञ्जन पर्यायकी बात इस प्रकरणमें है। मनुष्य दो प्रकारके हैं— एक कर्मभूमिज और एक भोगभूमिज। भोगभूमिज जीव आर्य कहलाते हैं और कुछ भोगभूमिया निकृष्ट भोगभूमिया भी होती हैं। यह जो जम्बूद्वीप है, उस जम्बूद्वीपमें भरत व ऐरावत क्षेत्रमें आर्यखण्डमें अस्थिर भोगभूमि होती है। भरतक्षेत्रके बाद जघन्य भोगभूमि शुरू होगी जिसका नाम है हैमवत क्षेत्र, हरिक्षेत्र। इसके आगे उत्तम भोगभूमि मिलेगी जिसका नाम है देवकुरु, फिर उत्तरकुरु नाम उत्तम भोगभूमि मिलेगी, फिर उसके आगे है रम्यकक्षेत्र भोगभूमि, इसके बाद है हैरण्यवत।

जघन्यभोग भूमिजोंकी आयु— जघन्य भोगभूमिमें १ पल्यकी आयु वाले मनुष्य होते हैं। पल्य कितना बड़ा होता है? उसका प्रमाण समझना हो तो गिनतीसे नहीं समझ सकते हैं। वह उपमाप्रमाणसे जाना जायेगा। मान लो दो हजार कोस लम्बा चौड़ा गहरा गड्ढा है, उस गड्ढेमें बालके छोटे छोटे टुकड़े जिनका दूसरा हिस्सा न हो सके ऐसे रोम खूब कूटकर भरे हुए हों, उपमा ही तो है। इतने बड़े विस्तारकी बात गिनती द्वारा नहीं बतायी जा सकती हैं। उसका उपाय उपमा है और कल्पनामें मानलो उस गड्ढेपर हाथी फिरा दो, अब समझलो कि उस गड्ढेमें कितने बाल भरे हो सकते हैं? और बाल भी कैसे लो— अपने जो बाल होते हैं ना। ये जितने मोटे होते हैं उनसे ८ वा हिस्सा बारीक, जघन्य भोगभूमिके बाल जो होते हैं उनसे भी ८ वा हिस्सा कम पतले, मध्यम भोगभूमिमें उससे भी ८ वां हिस्सा कम पतले उत्कृष्ट भोग भूमिमें होते हैं। ऐसे उत्कृष्ट भोगभूमि के कोई ५-७ वर्षके बालकके बाल ले लो या तो महीन बालोंमें मेढा प्रसिद्ध होता है सो उसके पतले बाल हों और जिनका दूसरा अंश न हो सके वे उस गड्ढेमें भरे गए। १००-१०० वर्षमें १-१ बाल निकाला जाय, यों सब

बाल जितने वर्ष लगें उतनेका नाम है व्यवहार पल्य और उससे असंख्या-गुणा काल होता है उद्धार पल्यका और उससे अनगिनतेगुणा काल होता है अद्धापल्यका ऐसे एक-एक पल्यकी आयु वाले जघन्य भोगभूमिज मनुष्य और तिर्यञ्च होते हैं।

भोगभूमिज जीवोंकी जीवनी— इतनी पल्यवाली आयु केवल स्त्री पुरुषके वार्तालापमें ही इस मनुष्यने व्यतीत की। ये जीव पुण्यके उदय वाले हैं, अपने-अपने आरामसे इन्हें प्रयोजन है, विवाद झगडा वहां होते नहीं है ऐसा वहांका वातावरण है। एक तरहसे इसे असली मायनेमें साम्यवाद कह लो। ऐसा साम्यवाद वहां है। यहां हम आप क्या साम्यवाद कर सकते हैं। कोई क्या करेगा ? विचित्र उदय है कर्मभूमिके मनुष्योंका। जहां साम्यवाद भी हो वहां एक चीजका साम्य कदाचित् कर लेवे किसीके पास पैसा न रहे, सब राष्ट्रीय सम्पत्ति हो, लोग तो कमायें और सरकारी जगहोंमें खायें—ऐसा कदाचित् बना भी लो, प्रथम तो यह बहुत मुश्किल है, फिर भी किसी की स्थिति छोटी है किसी की बडी है- कोई चौकीदारका काम करता है कोई बडे मिनिस्टर मंत्री बने हुए हैं तो उनके चित्तमें क्या नहीं होता होगा कि हाय हम हुक्म मान-मानकर मरे जा रहे हैं। समता ला सकते हैं ? पहिनावेमें, भोजन पानमें, इज्जतमें, उनकी [illegible]ारियोंमें इन सब बातोंमें कौन समानता ला सकता है ? तो भोगभूमि मायने साम्यवादका क्षेत्र। जघन्य भोग भूमिमें जितने भी मनुष्य तिर्यञ्च हैं सबका एकसा काम है।

मध्यम और उत्तम भोगभूमिजोंकी परिस्थितियां— जघन्य भोग भूमिसे मध्यमभोगभूमिमें उनकी डबल बात है। यहां एक पल्यकी आयु है तो वहां दो पल्यकी आयु है। उत्कृष्ट भोगभूमिमें तीन पल्यकी आयु वाले जीव हैं। तो ऐसे भोगभूमिके जीव मनुष्य व्यञ्जनपर्यायमें हैं।

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य— एक जीव है लब्ध्य पर्याप्त मनुष्य। ये लब्ध्य पर्याप्त मनुष्य महिलावोंके शरीरसे यों ही जहां चाहे जगहसे उत्पन्न होते रहते हैं और वे दिखते नहीं हैं। उनका नाम लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य है। एक स्वासमें १८ बार जो जन्ममरण निगोदका बताता है ऐसा ही जन्म मरण वहां है। कोई अन्तर नहीं है, चाहे निगोद जीव हो और चाहे लब्ध्य पर्याप्त हो। हां, क्षयोपशमका अन्तर है। इनके पञ्चेन्द्रियावरणका क्षयोपशम है, और मन भी वहां बताया जाता है। वे असंज्ञी नहीं होते हैं। तो ऐसे विचित्र-विचित्र मनुष्यपर्यायके जीव हैं।

नारकियोंकी आवासभूमियां— नारकियों को देखो। यह जो जमीन

है, जिस पर हम और आप चलते और डोलते हैं, यह जमीन बहुत मोटी है। इस मोटी जमीनके अन्दरके ३ हिस्से कर लो। पहिलेके दो भागोंमे भवनवासी और व्यन्तरजातिके देवोंके मकान हैं और नीचेका जो तीसरा भाग है, उसमें नारकी जीव रहते हैं, वहां बहुत नारकी हैं और उनसे नीचे बहुतसा आकाश छोड़कर दूसरी पृथ्वी है उसमे दूसरे नरककी रचना है। फेर कुछ आकाश छोड़कर तीसरी पृथ्वी है, उसमे तीसरा नरक है। फिर नीचे कुछ आकाश छोड़कर चौथी पृथ्वी है, वहां चौथा नरक है। फिर नीचे कुछ आकाश छोड़कर पांचवी पृथ्वी है, वहां पाचवी नरक है। इसी तरहसे छठी पृथ्वीमे छठा और सातवी पृथ्वीमे सातवा नरक है। इनमें रहने वाले जीव सदा क्रोधी बने रहते है, वे एक दूसरेको कुत्तेकी तरह देख कर लड़ते मरते हैं। उनमें ऐसा पापका उदय है कि उनके शरीरके टुकड़े टुकड़े हो जाएं तो भी पारेकी तरह मिलकर फिर उनका पूर्ण शरीर बन जाता है।

नरकभूमियोंके विल— उन नरकोंमे बड़े-बडे विल हैं। कितने बडे विल हैं? कोई १० हजार कोसका समझो, कोई ५० हजार कोसका समझो, इतने ही नहीं, बल्कि इनसे भी बडे। ये तो कुछ भी बडे नहीं हैं और बड़े बडे हजारो योजनोंके लम्बे-चौडे विल है। उसका नाम विल क्यो रखा गया? इतनी बड़ी लम्बी चौडी जगहका नाम विल यों है कि वहां उजाला भी नहीं है। उन विलोंमे किसी ओर मुख नहीं है। जैसे एक हाथभरका लम्बा चौडा और उतना ही मोटा पाटिया हो और उस पाटियेके बीच बीचमे ऐसे छिद्र हो कि आपको पता ही न पडे कि इस पाटियामे छिद्र हैं। आप कभी सागवनका सिलीपर लेने जाते है या कोई मोटा टुकड़ा लेने जाते हैं तो उसमे आपको कहीं विल नहीं दिखता है, पर जब उसे कटाने लगते हैं तो उसमे कहीं न कहीं विल निकल आता है। इसी तरह इस पृथ्वी मे किसी ओरसे मुख नहीं है उस नरकमे जानेके लिये और बीच ही बीच मे इतने बड़े विल बने हुए हैं।

नरकविलोंकी रचनाएं— पहिले नरकमें १३ जगह विलोंकी रचना है। जैसे एक पटल होगा, उसमे पहिले विलोंकी रचना है, फिर उसके नीचे दूसरा पटल आया तो उसमे दूसरे विलोंकी रचना है। पृथ्वीका कुछ टुकड़ा छोड़कर तीसरा पटल आया तो वहा विल है। इस तरह १३ जगह विलों की रचना है। नीचे नीचे नरकोंमें दो-दो पटल कम हैं, ७वें नरकमे केवल एक ही पटलमे विलोंकी रचना है। इन नरकोंमे ऐसे जीव उत्पन्न होते हैं, जो तीव्र आरम्भ वाले हैं, अधिक परिग्रही हैं, जिनको आत्महितका कुछ

भी ध्यान नहीं है। लोगोंमे, धन कमाने, आरम्भ और परिग्रहके तीव्र कषाय हैं, इनमें पडनेसे लोग नरकायुका बन्ध करते हैं और उन्हें नरकोंमें जन्म लेना पडता है। एक यह उक्ति है कि लोग पापका फल तो चाहते ही नहीं है और पापको भी नहीं छोडना चाहते हैं। लोग पुण्यका फल तो चाहते हैं और पुण्यको करना नहीं चाहते हैं—ऐसी स्थितिमें क्या हो? वे ही दुःख होते हैं।

जीवोंके परिणामके मापका उदाहरण— एक किम्वदन्ती है कि एक बार नारद घूमते घूमते पहिले नरक गए थे। नरकमें देखा था कि इतने जीव भरे पडे थे कि कहीं खडे होनेकी जगह ही न मिली और जब वैकुण्ठ पहुंचे तो यह देखा कि खाली विष्णु भगवान पडे है। नारद विष्णुसे बोले कि हे भगवन्! आप बडा पक्षपात करते हो, नरकमें तो इतने जीव भर दिये कि वहा खडे होने तककी जगह नहीं मिली और यहां आप अकेले पडे हुए आराम कर रहे हैं। विष्णु बोले कि हम क्या करें, कोई यहा तो आना ही नहीं चाहता। नारदने कहा कि महाराज! हमें इजाजत दो, हम बहुतसे लोगोंको यहा ले आएँ। सो विष्णुने एक पासपोर्ट लिख दिया कि तुम ले आवो यहा जिसको चाहो।

वृद्ध पुरुषोंका व्यामोह— अब नारद खुश होकर बडी जल्दीसे इस लोकमें आए। सो सबसे पहिले लगभग ६० सालके एक बाबा मिले। उनसे कहा कि बाबा वैकुण्ठ चलोगे? चलो हम तुम्हें वैकुण्ठ ले चलेंगे। वैकुण्ठ कोई मरे बिना तो जा नहीं सकता, सो बाबा बोले कि हम ही तुमको मिले है? इसी तरह कई बूढोंके पास गए, पर कोई भी बूढा जानेको तैयार न हुआ।

युवकोंका व्यामोह— जब किसी भी वृद्धसे दाल नहीं गली तो नारद ने सोचा कि अब जवानोंके पास चलें, क्योंकि वृद्ध तो जानेको तैयार ही नहीं हैं। अब वे एक लगभग २५ सालके जवानके पास गये और बोले कि चलो, हम तुम्हें स्वर्ग ले चलेंगे, किन्तु वह युवक भी जानेको तैयार नहीं हुआ। उसने कहा कि अभी एक लडका है, उसको पढाना है, सिखाना है, शादी करनी है, अभी हमें जानेकी फुरसत नहीं है। इसी तरहसे कई युवकोंके पास नारद जी गये, लेकिन कोई भी जानेके लिये तैयार नहीं हुआ।

अल्पवयस्कोंका व्यामोह—फिर नारद कुछ लडकोंके पास गये। सबसे पहिले एक लडका लगभग १८ वर्षका एक मन्दिरके चबूतरे पर माथे पर तिलक लगाये हुए माला फेरता हुआ दिख गया। नारदने सोचा कि

यह लड़का जरूर हमारे संगमें चलेगा। सो नारदने उस लड़केसे कहा कि चलो बेटा हम तुम्हें स्वर्ग ले चलें। लड़का साथमें जानेको तैयार हो गया। जब थोड़ा चला तो बोला कि महाराज अभी कुछ दिन हुए सगाई हुई थी, अभी तीन दिन शादीके हैं, सब बराती तो आ गए हैं, सो शादी हो जाने दो, ऐसे समय पर जाना अच्छा नहीं लगता है, सो कृपा करके आप तीन वर्षके बादमें आना तब हम चलेंगे। नारदने कहा अच्छी बात। तीन सालके बादमें नारद फिर आए, बोले कि चलो बेटा स्वर्ग। तो वह लड़का बोला कि महाराज अब तो स्त्रीके गर्भ रह गया है, बच्चा हो जाय, सभी लोग बच्चेको तरसते हैं कि बच्चेका मुँह देख लें सो आप १० वर्ष गम खावो फिर चलेंगे। १० वर्षके बादमें नारद फिर आए, कहा चलो बेटा स्वर्ग। तो वह बोला कि अब यह बच्चा हो गया है, इसे अनाथ कहां छोड़ें, इसे ऐसा बना दें कि यह गृहस्थी संभालने लायक हो जाय, सो आप २० वर्षके बादमें आना तब चलेंगे। नारद २० वर्षके बादमें फिर आए, बोले कि अब तो चलो। तो वह बोला कि बेटा तो कुपूत निकल गया। धन बहुत जोड़कर रखा है। अगर हम चलते हैं तो यह लाखोंका धन ७ दिनमें बरबाद हो जायेगा; सो अभी तो नहीं चलेंगे पर कृपा करके आप दूसरे भवमें जरूर आना। तब हम जरूर चलेंगे। नारद चले गए।

भवान्तरमें भी व्यामोह— वह बुड्ढा होकर मरकर सांप बन गया और उसी स्थानपर रहने लगा जहां धन गड़ा था। नारद वहां भी पहुंचे। वहां कहा कि चलो अब तो स्वर्ग चलो। तो वह फन हिलाकर वहांसे भी जानेके लिए मना करता है। अब नारदने सोचा कि विष्णु भगवान् सही कहते थे कि यहां कोई आना ही नहीं चाहता है। इसलिए खाली है। सो लोग फल तो पुण्यका चाहते हैं पर पुण्य नहीं करना चाहते और लोग पापोंसे डरते हैं पर पापोंसे मुख नहीं मोड़ते।

संसारी जीवोंकी दयनीय स्थिति— भैया! संसारी जीवोंकी ऐसी दयनीय परिस्थिति है कि उनका कोई सहारा नहीं है। कुटुम्बके लोगोंको अपना हितू समझकर उनके लिए कमायी करते हैं। बहुत-बहुत परिग्रह इकट्ठा करते हैं। पर जब मरण होगा तो ये सब बिछुड़ जायेंगे। कोई भी कुटुम्बके लोग मरणके समय साथी न होंगे। यहां पर सभी अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। एक मिनटमें ही सारा फैसला हो जाता है, कोई भी पूछने वाला नहीं रहता है। इस जगतमें हम और आपका कोई दूसरा जिम्मेदार नहीं है। यह धन वैभव तो पुण्यका उदय है सो मिलता है। इस धन वैभव से इस आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं है।

शुद्धात्मशरणता— आत्माका स्वरूप जो ज्ञानस्वभाव है उसकी दृष्टि होने पर ऐसा अलौकिक आनन्द शुद्ध स्वच्छता प्रकट होती है कि जिसके प्रताप से भव-भवके पाये हुए पापकर्म निर्जराको प्राप्त होते हैं। एक ही शरण है हम आप लोगोंका कि हम अपने सहजस्वरूप रूप अपने को मान लें, मैं तो इतना ही मात्र हू, इससे अधिक और मैं कुछ नहीं हू। अपने स्वरूपमात्र अपने को मानना भर इतना कठिन लग रहा है इस व्यवहारी जीवको कि इस ओर दृष्टि ही नहीं जाती है और जो चीज पर है, भिन्न है, जिसका सम्बन्ध नहीं है ऐसी चीजोंमें लगने की बड़ी सुध है।

सुगमता और दुर्गमता— एक हवेली बनवानी है, अजी यह तो अपने बायें हाथका काम हैं, ५० हजार रुपयेका बजट बना लिया, लो ६ महीनेमें हवेली खडी कर दी। उसमें भी आत्मा कुछ नहीं कर रहा है, केवल विकल्प ही कर रहा है, पर भूलमें कुछ अभ्युदय वाले आत्माके ऐसे विकल्प हुए कि उनका निमित्त पाकर ऐसा तांता बन गया कि सारा काम सिलसिलेसे होकर ६ महीनेमें मकान खड़ा हो गया। यह जानता है कि मैंने मकान बनाया सो परके विकल्पोंमें पड़ना इसे बड़ा आसान लग रहा है। किन्तु अपने में सहजस्वरूपकी दृष्टि जो प्रभु है विभु है, अपने आपकी सब दृष्टियोंका कारण है उस स्वरूप पर दृष्टिके लिए बड़ा साहस बनाना पड़ता है।

आत्मरमण बिना क्लेशका अभाव— यह प्राणी जब अपने आपको भूला है तो इसकी दृष्टि परकी ओर जाना स्वाभाविक ही है। जैसे जिस बालकको अपना खिलौना नहीं मिल रहा है वह बालक दूसरेके खिलौनेको देखकर रोता है, उसका रोना प्राकृतिक है। अब कई लडके ऊधम कर रहे हों तो बडे लोग उसे डाटते हैं—अरे बड़ा लड़कपन करता है और कदाचित् वह लडका कह दे कि तुम भी जब हमारी उम्रके थे तो तुम भी लड़कपन करते थे। तो लडकपनमें लड़कपन जैसी बात आती है मगर इतनी बात चाहिए कि ऊधम तो करे, पर ऐसा ऊधम करे कि जो सुहावना लगे, दूसरोंकी विराधना न करे और दूसरोंको क्लेश न पहुचे। वह लड़का दूसरेके खिलौने को देखकर रोने लगा। उसे कोई मना करे कि रोना बंद कर दो तो क्या उससे रोना बद होगा? रोना तो तब बद होगा जब उसका खिलौना उसे मिल जाय।

आत्मदर्शन ही संकटमुक्तिका साधन— इसी तरह अपने स्वरूपके अपरिचयी इस अज्ञानी बालकको अपना खिलौना जो सहज चैतन्यस्वरूप है, वह तो मिला हुआ नहीं है, गुम गया है, तो यह जो रूप, रस, गंध,

स्पर्शके बाहरी खिलौनोंको देखकर रोता है। अब इसको कोई दड देकर या कोई धौंस देकर चाहे कि रोना यह बंद करादे तो कैसे बद कर सकता है? इस तो अपने सहजस्वरूपको अनादिकालसे देखनेकी लगन ही नहीं है। इसको तो अपना अंतस्तत्त्व, शुद्ध जीवास्तिकाय प्राप्त हो जाय तो इस का रोना बद हो सकता है। अर्थात विषयोके लोभी पुरुष इन विषयोंको छोड़ नही सकते है, तो उनके क्लेश भी नही समाप्त हो सकते हैं। है वह सारी व्यर्थकी आकुलता क्योकि अतमे रह जायेगा यह अकेला का ही अकेला। कुछ साथी न होगा। तो अपने आपकी दृष्टि करके अपने इस सहज अतस्तत्वमे रंग जाय तो इससे ही इसकी आपत्तियां दूर हो सकती हैं।

नारकियोंकी आयु-- केवल अशुभ कर्मसे नरकगतिमे जन्म होता है। उन नारकी जीवोमे जो प्रथम नारकके जीव है उनकी आयु अधिकसे अधिक १ सागर प्रमाण होती है। आयुके संवधमे कल पल्यका प्रमाण बताया था, ऐसे-ऐसे एक करोड़ पल्यमे एक करोड़ पल्लका गुणा किया जाय, जो लब्ध हो उसको एक कोड़ाकोड़ी पल्य कहते हैं। ऐसे-ऐसे दस कोड़ाकोड़ी पल्यमे एक सागर होता है। दूसरे नरकके नारकियोकी आयु तीन सागर प्रमाण तक होती है, तीसरे नरकके नारकियोकी आयु ७ सागर प्रमाण तक होती है, चौथे नरकके गतियोकी आयु १० सागर प्रमाण होती है, ५ वे नरकके नारकियोकी आयु १७ सागर प्रमाण तक होती है, छठवे नरकके नारकियोकी आयु २२ सागर प्रमाण तक होती है और ७ वे नरक के नारकियोकी आयु ३३ सागर प्रमाण तक होती है।

तिर्यञ्चोकी व्यञ्जनपर्यायें-- अब तिर्यञ्च व्यञ्जनपर्यायकी बात सुनिये--तिर्यञ्च जीव १४ जीव समासोमे विभक्त जानिए। इन १४ प्रकारो मे सब तिर्यञ्च आ जाते हैं। जल्दी जानने के लिए जहा तक ऊचेसे नीचे के क्रमके अनुसार सुनिये। संज्ञी पचेन्द्रिय जीव कोई पर्याप्त है कोई अपर्याप्त है। इस पर्याप्तमे लब्ध्यपर्याप्त और निवृत्य पर्याप्त दोनोको ग्रहण करना। निवृत्यपर्याप्त उसे कहते हैं कि कोई जीव मरकर मानो बैल बन गया तो जिस समय वह गर्भमें आया तबसे लेकर कोई एक दो सेकेण्ड तक ऐसी हालत होती है कि जिस पिण्डके शरीररूपसे बन गया उस पिंड मे स्वयं भी वृद्धिकी योग्यता नही हो पाती। ज्योका त्यों रहता है, उसमे बढ़वारी नहीं होती हैं। जब तक उस शरीरके बढनेकी, बननेकी योग्यता नही आ पाती है तब तक उसे निवृत्यपर्याप्त कहते है। निवृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्तमे फर्क इतना है कि लब्ध्यपर्याप्त तो पर्याप्त नही बनेगा

और नियमसे मरण करेगा । लब्धिपर्याप्तका अपर्याप्तमें मरण हो ही जायेगा। निवृत्त्यपर्याप्त पर्याप्त होगा ही, उसका तो पहिले मरण होता ही नहीं है—ऐसे सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय अपर्याप्त और संज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त-ये दो प्रकारके तिर्यञ्च हैं।

तिर्यञ्चोंमें असञ्ज्ञी जीवोंकी पर्यायें— इनसे और हल्के देखो—असञ्ज्ञीपचेन्द्रिय अपर्याप्त व असञ्ज्ञीपचेन्द्रिय पर्याप्त। जो तिर्यञ्च कान सहित है, पर मन नहीं है, उन्हें असंज्ञीपचेन्द्रिय तिर्यंच बोलते हैं। उनमें भी पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों होते हैं। इनमें और हल्के जीव देखो तो चतुरिन्द्रिय पर्याप्त और चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त। देखो जिन जीवोंके स्पर्शन, रसना, घ्राण, नेत्र—ये चार इन्द्रिय हैं और जो पर्याप्त भी हो चुके, वे चतुरिन्द्रिय पर्याप्त हैं और जो इनमें पर्याप्त नहीं हुए, चाहे निवृत्त्य पर्याप्त हों या लब्ध्यपर्याप्त हों, वे अपर्याप्त कहलाते हैं। इनसे और भी निम्नश्रेणीके तिर्यंच देखा तो तीनइन्द्रिय पर्याप्त और तीनइन्द्रिय अपर्याप्त— बिच्छू, चींटा, चींटा, कीड़ी आदि ये तीनइन्द्रिय जीव हैं, पर्याप्त भी हैं। अपर्याप्त तो जन्म लेनेके समय ही कुछ समयके लिए होता है, तो वह अपर्याप्त भी है। दोइन्द्रिय जीव उनसे जघन्यश्रेणीके हैं। जैसे लट, सीपी, जोंक, कीडी दोइन्द्रिय जीव हैं। पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों तरहके होते हैं ये।

एकेन्द्रिय तिर्यंचोंकी पर्यायें— त्रससे भी निकृष्ट हैं एकेन्द्रिय जीव। एकेन्द्रिय जीव दो प्रकारके पाये जाते हैं—कोई सूक्ष्मएकेन्द्रिय और कोई बादरएकेन्द्रिय। जो अत्यन्त सूक्ष्मशरीर वाले हैं, दिखनेका तो काम ही नहीं है उनका और न भिडनेका ही काम है। आग जल रही हो तो आगसे वे न मरेंगे, वे बहुत जल्दी-जल्दी अपनी मौतसे मरते रहते हैं। इतना सूक्ष्म शरीर होता है कि वायु, पत्थर, आग, पानी किसीसे भी उनका आघात नहीं होता है। इससे उन्हें कुछ भला न समझो, वे अपनी मौतसे तुरन्त जल्दी जल्दी मरते रहते हैं। बादरएकेन्द्रिय जीव वे हैं, जिनके शरीरका आघात हो सकता है, लड-भिड सकते हैं, ये हैं बादरएकेन्द्रिय। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति— ये ५ प्रकारके स्थावर होते हैं। इनमें ये चारों जीव समास घटित कर लो, बादरएकेन्द्रिय पर्याप्तभूत और अपर्याप्त तो ये हैं और सूक्ष्मएकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त हैं। इस तरहसे तिर्यंच जीव चौदह प्रकारके जानने चाहिए। तिर्यंचोंका तो यह रूप सामने दिख ही रहा है। ये निगोद भी तिर्यंच कहलाते हैं। ये वनस्पतिकायके भेद में हैं।

इन्द्रियजातिके प्रति संसारी जीवोंकी मोटी पहिचान— इन जीवोंमें जरा जल्दी पहिचान करना हो कि यह कितनी इन्द्रियका जीव है तो मोटी पहिचान बताते हैं। सम्भव है कि यह पहिचान पूरी नियमरूप न हो लेकिन इससे अंदाजा बहुत हो जाता है। जिसके कान हों वह पञ्चेन्द्रिय है ही। चिड़िया हैं, पशु हैं, बैल हैं ये सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च हैं ही और चौइन्द्रिय तिर्यञ्च छोटे और उड़ने वाले जीव होते हैं। जैसे मक्खी, मच्छर, टिड्डी, ततैया ये चौइन्द्रिय जीव कहलाते हैं और तीनइन्द्रिय जीव वे हैं जो जमीन पर चलते हैं और बहुतसे पैर होते हैं, कीड़ी, बिच्छू, कानखजूरा, पटार, गोर्भी तिल्ला, खटमल, गिजाई ये सब तीनइन्द्रिय जीव हैं। जिनके पैर नहीं होते सरकते हुए रहते हैं, लट, केंचुवा, जोंक और सीप, कोड़ी, शंखमें जो कीड़ा रहता है वह ये सब दो इन्द्रिय जीव हैं। सीपके भीतर कीड़ा है। कौड़ीके भीतर कीड़ा है, ये दो इन्द्रिय जीव हैं। एकेन्द्रिय तो वे हैं जिनके जीभ होती ही नहीं है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति।

विषमताका अन्तर—देखो भैया! ज्ञानानन्द स्वरूप प्रभुकी कैसी कैसी अवस्थाएँ हैं? एक अपने स्वरूपको न पहिचानने के कारण कितना अन्तर हो गया है कि एक आत्मा तो देखो वीतराग सर्वज्ञ तीन लोक, तीन कालकी बातें जानने वाला है और उस ही बिरादरीका एक यह आत्मा देखो जो पेड़ खड़े हैं, कुछ कर ही नहीं सकते, हिल रहे हैं। ऊंट ऊपर मुंह करके पत्ती खा जाता है, लोग जैसा चाहें काट डालते हैं, मानों उनमें जीव ही न हो। इस तरहका उन पर व्यवहार है। कितना अन्तर हो गया, और उन पेड़ोंमें और सिद्धमें क्या अन्तर देखना, अपनेमें और सिद्धमें ही अन्तर देख लो। कहां ये हम आप लोग लटोरे, खचोरे बन रहे हैं, विषयोंके पीछे, पोजीशनके पीछे लग रहे हैं। रहना कुछ नहीं है। काहेकी पोजीशन करें? इस पोजीशनमें धरा क्या है? यहां की बातोंमें धरा क्या है, पर लोगों को कैसा विश्वास हो रहा है इन बातों पर। किसीको अपने स्वरूपकी सूझ ही नहीं होती। यह दशा है मोह और रागद्वेषके कारण।

देवोंका परिचय व भवनवासी व व्यन्तरोंकी परिस्थितियां— अब देवगतिके व्यञ्जनपर्यायकी बातें सुनिये। देव चार जातियोंमें बटे हुए हैं—भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक। भवनवासी देव इस पृथ्वीके नीचे जो ऊपरी खण्ड है और नीचेका भी दूसरा खण्ड है इन दो खण्डोंमें रहते हैं और व्यंतर भी इन दोनों खण्डोंमें रहते हैं और उनके अलावा व्यंतर टूटे फूटे घरोंमें पेड़ोंमें रहते हैं। उनके भी भूख प्यासकी पीड़ा नहीं

लगती, बहुत दिनोमे लगती है तो कंठसे अमृत झड़ जाता है। इस तथ्य को न जानकर उन देवतावोंके नाम पर लोग जीवहिंसा भी कर देते हैं। अरे उनका तो अमृत भोजन है, जब उनको भूख लगती है तो कंठसे अमृत झड़ जाता है। निकृष्टसे निकृष्ट देवोंके भी यही बात है। हा वे कौतूहलप्रिय हैं। अपने को तुच्छ अनुभव करने वाले हैं, इनकी छोटी वृत्ति है। जैसे कि ये नीच आचरण कुल अथवा संस्कारमें पले हुए लोगोंकी वृत्ति ओछी होती है इसी प्रकार उन देवोंकी वृत्ति ओछी होती है। जब कि देखो भवनवासियों के भेदो मे दो-दो इन्द्र हैं और दो दो प्रतीन्द्र हैं और ऐसे ही व्यंतरोंके हैं, यह ओछेपनकी ही तो निशानी है। अगर ढंग अच्छा होता तो दो दो इन्द्र काहे को होते ? विकल्प और आकुलतावोंसे ये भरे हुए हैं।

ज्योतिषी देव— ज्योतिषी देव सूर्य, चन्द्र, तारा, नक्षत्र, ग्रह इनमे रहने वाले होते हैं। जो आंखोंसे सूर्य दिखता है यह स्वय देव नहीं है। यह तो पृथ्वीकायका रचा हुआ विमान है। इनमें बसने वाला अधिष्ठाता सूर्य है और इसी तरह चन्द्रमाकी बात है। इनमे चन्द्र तो इन्द्र है और सूर्य प्रतीन्द्र है और जो कभी गुच्छा सा दिखता है ऐसा लगता है कि बिल्कुल घडे पडे हैं जैसे थालीमें बूंदी फैला देने पर मालूम होता है। इन तारावोंके एक दूसरेके बीचमें करीब-करीब एक-एक, दो दो, तीन तीन योजनका अन्तर है। ये भिड़ नहीं जाते। इसी प्रकार प्रत्येक तारेयों मे देवोंका निवास है।

वैमानिक देव— चौथी जातिके देव है वैमानिक। ये उत्कृष्ट जातिके हैं, इनके दो भेद हैं—कल्पवासी और कल्पातीत। कल्पवासीदेव जहा रहते हैं उसका नाम है स्वर्ग और उससे ऊपर कल्पातीत देव होता है। इन १६ स्वर्गोंमे ये जातिया हैं। कोई इन्द्र हैं, कोई सामानिक हैं। इनमे से कोई सलाहकार है, कोई सदस्य है, कोई बाडीगार्ड है, कोई इन्द्रका कोतवाल जैसा है। कुछ सेना है, कुछ प्रजाजन हैं। कोई वाहन का काम करते हैं। उनमे से कोई हुकुम देने वाला है। किसी हुकुम देने वालेको कहीं जाना है तो उसने हुकुम दिया कि झट घोड़ा सज गया, इनमें से कोई अच्छी वृत्ति वाले हैं, कोई ओछीवृत्ति वाले हैं। यह भेद स्वर्गोंसे ऊपर नहीं हैं।

ससारी भवोंमें उपादेयताका अभाव— देवगतिमें बड़ी ऋद्धि है, बड़ा वैभव है। अपने शरीरको छोटा बना ले, बड़ा बना लें, हल्का बना लें, वजनदार बना लें। बडे विशाल विस्तारका देह होकर भी बिल्कुल हल्का बना लें, अनेक सेना बना ले, अनेक मनुष्य बन जायें और अपनी अवगाहनासे कहो पहाड़ जैसे बन जायें। बड़ी विचित्र इनकी ऋद्धिया हैं।

यहां तो लोग चिड़ियोंकी तरह फुर्रसे उड़नेको तरसते होंगे कि हम न भये चिड़िया, मंदिरसे उड़ कर शीघ्र घर पहुंच जाते। कल्पातीत देवोंमें यह इन्द्रादिकका भेद नहीं होता। प्रत्येक देव वहां पूर्ण समर्थ इन्द्र है। इस तरह इन चार जातियोंमें बंटे हुए ये व्यञ्जनपर्यायें चारों गतियोंके जीवों का वर्णन अन्य ग्रन्थोंमे करुणानुयोगमें बडे विस्तार पूर्वकलिखा है। जीव-काण्ड, कर्मकाण्ड इन सबमें देख लो विशेष जानना हो तो।

व्यञ्जन पर्यायोंके प्रति ज्ञानी की भावना-- यह ग्रन्थ आध्यात्मिक है। इसलिए प्रयोजनवश थोड़ा सा लोकरचनाका वर्णन किया गया है। इनका वर्णन करनेका प्रयोजन भी यह है कि अपनेको जानकारी हो जाय कि जीवका ऐसा ऐसा परिणमन ससारमे है। और यह भावना बने कि मैं इनमे किसी भी जगह पैदा न होऊँ। स्वर्गोंका वर्णन सुना, बड़ी ऋद्धिया है। हजारों वर्षोंमे भूख लगे तो कंठसे अमृत झड़ जाय। कई पखवारेमे सास ले, इतने वे समर्थ है, फिर भी मेरी उत्पत्ति वहा न हो ऐसी भावना ज्ञानी जीवके होती है। अज्ञानी जीव तो चाहता है कि हे भगवन्! हमे खूब पुण्य मिले, स्वर्गोमे जाकर देव हो, पर ज्ञानी जिसने ज्ञानानन्द स्वभावका अनुभव रस चखा है उसके कोई आकांक्षाएँ नही होती। एक ही दृष्टि है अपने सहजस्वरूपकी।

मानवीय वैभवोंमे भी ज्ञानीकी अनाकाक्षा-- भैया! मनुष्यलोकमे भी कैसे-कैसे प्रतापी लोग होते है? नेता, मिनिष्टर, राजा, ऊंचे, ऊंचे लोग जिनकी लोग अगवानी करते है। बड़ा प्रबध किया जाता, स्वागत सम्मान होता। ज्ञानी जीवकी दृष्टिमें यह आता है कि मैं ऐसा भी नहीं उत्पन्न होना चाहता। मेरा तो जन्ममरण ही न हो। कह दिया लाख और करोड़ आदमियोंने वाह-वाह तो प्रथम तो सब आदमियोने ही नही कहा और कदाचित् सब आदमी वाह-वाह कह देवें तो ये घोड़ा बैल तो हमारी वाह-वाह नहीं करते। क्या इनमे जीव नहीं है? क्यो इन्हें छोड़ते हो? ऐसा वैभव बढाओ कि ये गधे कुत्ते भी वाह वाह करें। पर यहा तो सभी लोग भी वाह-वाह नहीं करते हैं, और फिर और भी देख लो अनन्ते जीवोंमे से लाखों हजारो जीव क्या गिनती रखते हैं? उन्होने वाह-वाह कर दिया तो क्या हुआ? भैया! वाह वाह क्या है? वाहका उल्टा पढो, क्या हुआ? हवा। जैसे हवा बहती है वैसे ही वाह-वाहकी बात है। वाह वाह् कह दिया किसीने तो उससे मिलता जुलता कुछ नहीं, कोरी उल्टी हवा चल गयी है।

विद्याधर व देवोंकी ऋद्धिकी अनाकांक्षा— विद्याधरोंमें देख लो, आविष्कारकर्ता भी बहुत बड़े-बड़े कला-कौशल दिखाते है, जिनसे अचम्भा

भी किया जाता है, इनमे भी ज्ञानी जीव उत्पन्न होनेकी-भावना नहीं होती है। देवलोक हैं, बडे-बडे भवनवासियोंके ठाठवे महल हैं, और उनके रत्नमय महलोंमे भी बडे-बडे मन्दिर हैं व छोटेसे छोटे मन्दिर भी हैं, यहा के बडे-बडे राजाओंसे भी ऊचा सुख वैभव है— ऐसे देवोंमे भी और ऊँचे वैमानिक देवोंमे भी ज्ञानी जीवके जन्मकी वाञ्छा नहीं रहती, और नरकोंके निवासियोंमे ज्ञानी जीवके तो क्या, किसीकी इच्छा नहीं रहती। किन्हीं भी ससारी जीवोंमे इस ज्ञानी जीवके जन्मकी इच्छा नहीं रहती है। ज्ञानी के वाञ्छा रहती है तो एक यही कि हे नाथ! कारणपरमात्मतत्त्व और कार्यपरमात्मतत्त्वके वैभवके स्मरणमें ही मेरी भक्ति बार-बार हो।

तृष्णा न करनेका उपदेश— हे आत्मन्! राजा इन्द्र बडे बडे महात्माओंके वैभवको सुनकर अथवा देखकर हे जडवैभव वाले पुरुष! तू व्यर्थमे क्लेशको प्राप्त होता है। अपनी रूखी-सूखी खा रहा था, बडी मौज मे था, दूसरोंकी चुपडी देख ली, इसीसे बीमार हो गए। हाय! मुझे ऐसा न हुआ, थोडीसी पूंजी थी, खर्च चलता था, आराम था और जहा शहर का सुख देखा कि बस हो गये बीमार। अब वह बीमारी ऐसी लग गयी है टी बी की तरहकी कि मरे तब ही छूटे। तो कहते हैं कि हे जडबुद्धि वाले पुरुष! तू दूसरेके वैभवको देखकर क्यों क्लेशको प्राप्त होता है?

ज्ञानीकी हितबुद्धि— भैया! यह वैभव यद्यपि पुण्यसे प्राप्त होता है, परन्तु आप यह बतलाओ कि भेद कैसे आ गये—कोई दरिद्र, कोई श्रीमान्। पूर्वकृत जो पुण्यकर्म हैं, उनके उदयका फल है। उसमे ऐसा नहीं है कि किसीके पुण्योदय है तो प्राप्त ही होना चाहिये। परिणाम खोटे हों और उन खोटे परिणामोंके कारण जो विशेष अभ्युदय हुआ था, सो रुक गया। ज्ञानी पुरुष कहता है कि हे प्रभो! मुझे वैभवको प्राप्त करनेकी आवश्यकता नहीं है, किन्तु हे जिननाथ! आपके चरणकमलोंमे, पूजामें, स्मृतिमें मेरी भक्ति जगे। वह ज्ञानी पुरुष करेगा ऐसे शुभ काम, पर उसका चित्त विरक्ति मे रहता है, विरक्तिसे ही वह अपना हित मानता है।

व्यञ्जनपर्यायोंका वर्णन करके जिसमे कि द्रव्यव्यञ्जनपर्याय भी आते हैं और विपरीत गुणपरिणमन भी, चूंकि व्यञ्जन हैं, व्यक्त है, वह भी गर्भित है। उन पर्यायोंके साथ इस आत्माका और उन पर्यायोंके कारणभूत कर्मोंके साथ आत्माका और उनके फलभूत सुख-दु ख आदिकके साथ आत्माका क्या सम्बन्ध है, अथवा सम्बन्ध नहीं है? इस विषयको स्पष्ट करनेके लिए कुन्दकुन्दाचार्यदेव यह कहते हैं—

कत्ता भोत्ता आदा पोग्गलकम्मस्स होदि ववहारो।
कम्मजभावेणादा कत्ता भोत्ता दु णिच्छयदो॥१८॥

कर्मके कर्तृत्व व भोक्तृत्वमें अपेक्षा—मालूम ऐसा होता है कि आत्मा पुद्गलकर्मोंका करने वाला है और यह आत्मा इन कर्मोंके उदयके फलभूत दु:खोंका भोगने वाला है, इस सम्बन्धमे आचार्य कहते है कि यह आत्मा पुद्गलकर्मोंका कर्ता और भोक्ता है, यह तो व्यवहारनयका दर्शन है और आत्मा कर्मजनित विभावपरिणामोंका कर्त्ता और भोक्ता है। यह निश्चयनयसे है। यहां निश्चयनयसे मतलब है अशुद्धनयसे। आत्माका पर-पदार्थोंके साथ परिणमनमे निमित्तपना भी अधिक निकटतासे है तो कर्मों के साथ हैं। इस कारण इन द्रव्यकर्मोंका यह आत्मा कर्ता है निकटतम अनुपचरित असद्भूत व्यवहारसे।

कर्मके कर्तृत्व और भोक्तृत्वमे अनुपचरित असद्भूतव्यवहारता—पुद्गलकर्म भिन्न पदार्थ है, इसलिये पुद्गलकर्ममे आत्माका कर्तृत्व बताना असद्भूत है, किन्तु यहा प्राकृतिक नैमित्तिकता है, इस कारण यह अनुपचरित है। जैसे हम अन्य मकान, दुकान, मेल-मिलाप, विरोध, विनाश इनके करने वाले कहा करते है, किन्तु इनमे निकटता नहीं है, इसलिये ये अनुपचरित नही है। आत्माका जैसा विभावपरिणमनोंसे उस द्रव्यकर्मका सम्बन्ध है इसी प्रकार विषयभूत व बाह्यविषयोंका भी सम्बन्ध है, किन्तु यह विषयभूत बाह्यपदार्थोंका निश्चयात्मक सम्बन्ध नही है। इसी कारण यह बात सामने आती है कि किसीको मन्दिरप्रतिमाके दर्शन भी हो तो भी उसके भाव नही सुधरते। यह जीव समवशरणमे भी अनेक बार गया तो भी नही सुधरा। सब निमित्त फैल हो गये है, कोई नियामक नही रहा। अरे भाई! निमित्त ही नहीं हैं। निमित्त तो कर्मोंका उदयउदीरणाक्षय क्षयोपशम है, वे तो बाह्यपदार्थ हैं, उनके साथ तुम्हारा अन्वयव्यतिरेक कुछ नही है। जैसे कि विभावपरिणामोंका और द्रव्यकर्मका परस्परमें निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है, उस प्रकारका यहा नही पाया जाता है। अत. द्रव्यकर्मका कर्ता यह जीव आसन्नगत अनुपचरित असद्भूत व्यवहारसे है और उनका फल भी सुख-दुःखको भोगनेका कथनव्यवहारसे है।

अशुद्धनिश्चयनयसे जीवके विभावका कर्तृत्व व भोक्तृत्व—निश्चयनय अर्थात् अशुद्धनयसे यह जीव मोह, राग, द्वेष आदि भावकर्मोंका कर्ता है और उनका भोक्ता है अथवा असद्भूतव्यवहारसे यह कर्म शरीरादिक का कर्ता है। इन सबमे निमित्तनैमित्तिकता है, क्योकि मै घड़ा बना लेता हू, कपड़ा बुन लेता हू, मकान बना देता हू—ऐसा कहना यह उपचरित

भी किया जाता है, इनमे भी ज्ञानी जीव उत्पन्न होनेकी भावना नहीं होती है। देवलोक हैं, बडे-बडे भवनवासियोंके ठाठबे महल हैं, और उनके रत्नमय महलोंमे भी बडे-बडे मन्दिर हैं व छोटेसे छोटे मन्दिर भी हैं, यहा के बडे-बडे राजाओंसे भी ऊचा सुख वैभव है— ऐसे देवोंमे भी और ऊचे वैमानिकदेवोमे भी ज्ञानी जीवके जन्मकी वाञ्छा नही रहती और नरकोंके निवासियोंसे ज्ञानी जीवके तो क्या, किसीकी इच्छा नही रहती। किन्ही भी ससारी जीवोंमे इस ज्ञानी जीवके जन्मकी इच्छा नहीं रहती है। ज्ञानी के वाञ्छा रहती है तो एक यही कि हे नाथ! कारणपरमात्मतत्त्व और कार्यपरमात्मतत्त्वके वैभवके स्मरणमे ही मेरी भक्ति बार-बार हो।

तृष्णा न करनेका उपदेश— हे आत्मन्! राजा इन्द्र बडे बडे महात्माओंके वैभवको सुनकर अथवा देखकर हे जडवैभव वाले पुरुष! तू व्यर्थमे क्लेशको प्राप्त होता है। अपनी रूखी-सूखी खा रहा था, बडी मौज मे था, दूसरोंकी चुपडी देख ली, इसीसे बीमार हो गए। हाय! मुझे ऐसा न हुआ, थोड़ीसी पूजी थी, खर्च चलता था, आराम था और जहा शहर का मुख देखा कि बस हो गये बीमार। अब वह बीमारी ऐसी लग गयी है टी बी की तरहकी कि मरे तब ही छूटे। तो कहते हैं कि हे जडबुद्धि वाले पुरुष! तू दूसरेके वैभवको देखकर क्यों क्लेशको प्राप्त होता है?

ज्ञानीकी हितबुद्धि— भैया! यह वैभव यद्यपि पुण्यसे प्राप्त होता है, परन्तु आप यह बतलाओ कि भेद कैसे आ गये—कोई दरिद्र, कोई श्रीमान्। पूर्वकृत जो पुण्यकर्म हैं, उनके उदयका फल है। उसमे ऐसा नही है कि किसीके पुण्योदय है तो प्राप्त ही होना चाहिये। परिणाम खोटे हों और उन खोटे परिणामोंके कारण जो विशेष अभ्युदय हुआ था, सो रुक गया। ज्ञानी पुरुष कहता है कि हे प्रभो! मुझे वैभवको प्राप्त करनेकी आवश्यकता नही है, किन्तु हे जिननाथ! आपके चरणकमलोंमे, पूजामें, स्मृतिमें मेरी भक्ति जगे। वह ज्ञानी पुरुष करेगा ऐसे शुभ काम, पर उसका चित्त विरक्ति मे रहता है, विरक्तिसे ही वह अपना हित मानता है।

व्यञ्जनपर्यायोंका वर्णन करके जिसमे कि द्रव्यव्यञ्जनपर्याय भी आते हैं और विपरीत गुणपरिणमन भी, चूकि व्यञ्जन है, व्यक्त है, वह भी गर्भित है। उन पर्यायोंके साथ इस आत्माका और उन पर्यायोंके कारणभूत कर्मोंके साथ आत्माका और उनके फलभूत सुख दुःख आदिकके साथ आत्माका क्या सम्बन्ध है अथवा सम्बन्ध नहीं है? इस विषयको स्पष्ट करनेके लिए कुन्दकुन्दाचार्यदेव यह

कत्ता भोत्ता आदा पोग्गलकम्मस्स होदि ववहारो ।
कम्मजभावेणादा कत्ता भोत्ता दु णिच्छयदो ॥१८॥

कर्मके कर्तृत्व व भोक्तृत्वमें अपेक्षा— मालूम ऐसा होता है कि आत्मा पुद्गलकर्मोंका करने वाला है और यह आत्मा इन कर्मोंके उदयके फलभूत दुःखोंका भोगने वाला है, इस सम्बन्धमे आचार्य कहते है कि यह आत्मा पुद्गलकर्मोंका कर्ता और भोक्ता है, यह तो व्यवहारनयका दर्शन है और आत्मा कर्मजनित विभावपरिणामोंका कर्ता और भोक्ता है। यह निश्चयनयसे है। यहां निश्चयनयसे मतलब है अशुद्धनयसे। आत्माका परपदार्थोंके साथ परिणमनमे निमित्तपना भी अधिक निकटतासे है तो कर्मों के साथ है। इस कारण इन द्रव्यकर्मोंका यह आत्मा कर्ता है निकटप्र म अनुपचरित असद्भूत व्यवहारसे।

कर्मके कर्तृत्व और भोक्तृत्वमे अनुपचरित असद्भूतव्यवहारता— पुद्गलकर्म भिन्न पदार्थ है, इसलिये पुद्गलकर्ममे आत्माका कर्तृत्व बताना असद्भूत है, किन्तु यहा प्राकृतिक नैमित्तिकता है, इस कारण यह अनुपचरित है। जैसे हम अन्य मकान, दुकान, मेल-मिलाप, विरोध, विनाश इनके करने वाले कहा करते है, किन्तु इनमे निकटता नही है, इसलिये ये अनुपचरित नही हैं। आत्माका जैसा विभावपरिणमनोंसे उस द्रव्यकर्मका सम्बन्ध हैं इसी प्रकार विषयभूत व ह्यविपयोंका भी सम्बन्ध है, किन्तु यह विपयभूत बाह्यपदार्थोंका नियामक सम्बन्ध नहीं है। इसी कारण यह बात सामने आती है कि किसीको मन्दिरप्रतिमाके दर्शन भी हो तो भी उसके भाव नहीं सुधरते। यह जीव समवशरणमे भी अनेक बार गया तो भी नही सुधरा। सब निमित्त फैल हो गये है, कोई नियामक नही रहा। अरे भाई! निमित्त ही नही हैं। निमित्त तो कर्मोंका उदयउदीरणाक्षय क्षयोपशम है, वे तो बाह्यपदार्थ हैं, उनके साथ तुम्हारा अन्वयव्यतिरेक कुछ नहीं है। जैसे कि विभावपरिणामोंका और द्रव्यकर्मका परस्परमें निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है, उस प्रकारका यहा नही पाया जाता है। अत द्रव्यकर्मका कर्ता यह जीव आसन्नगत अनुपचरित असद्भूत व्यवहारसे है और उनका फल भी सुख-दु:खको भोगनेका कथनव्यवहारसे है।

अशुद्धनिश्चयनयसे जीवके विभावका कर्तृत्व व भोक्तृत्व—निश्चयनय अर्थात् अशुद्धनयसे यह जीव मोह, राग, द्वेष आदि भावकर्मोंका कर्ता है और उनका भोक्ता है अथवा असद्भूतव्यवहारसे यह कर्म, शरीरादिक का कर्ता है। इन सबमें निमित्तनैमित्तिकता है, क्योकि मै घड़ा बना लेता हू, कपड़ा बुन लेता हू, मकान बना देता हू—ऐसा कहना यह उपचरित

असद्भूतव्यवहारसे है। इस तरह पहिले जो वर्णन चला था, उस वर्णनमें समझाये गये उन पर्यायोंके साथ, उपयोगके साथ, कर्मोंके साथ आत्माका सम्बन्ध नहीं है—ऐसा बतानेके लिये यह उपर्युक्त गाथा कही गयी है। सद्भूतव्यवहार मतिज्ञान आदिके पर्यायोंमें बताया जाता है कि ये ज्ञान-गुणके आंशिक विकास हैं। जो स्वभावसे नहीं उत्पन्न होते हैं, उनको असद्भूत कहा गया है—ये सब रागद्वेष मोहादिक जो कुछ भी परिणाम हैं, ये सब असद्भूत हैं। विभावपरिणाम वाले पुरुष कब इस परिणामसे हटकर और किस उपायसे चलकर यह निर्विकल्प सहजसमयसारको जानें? इसका उपाय एक पूर्वमें परमगुरुके चरणयुगलकी सेवा करना है। परमगुरु अरहतदेव कहलाता है।

आत्माका शरण— परमार्थत हमारे लिये हमारा शरण हमारा परिणाम है। जब विषयकषाय और कल्पनाओंके संकटोंसे घिर जाते हैं, उन संकटोंसे छूटनेका उपाय निर्विकल्प, निष्कषाय परमगुरुके स्वरूपका आश्रय है। बाकी समस्त उपाय नागनाथ, सांपनाथ जैसे पर्यायान्तर हैं। उनमें यह छटनी करने लगे कि यह उपाय हमें संकटोंसे बचायेगा और यह न बचाएगा—ऐसा नहीं है। एक ही ज्ञानस्वरूपका स्मरणरूप उपाय संकटोंसे बचा सकता है। जीवनभर यही तो करना है। कितना ही सताए हुए हों कर्मोदयके, फिर भी जब कभी सुधार होगा, आत्मप्रगति होगी तो केवल इसी आत्मज्ञानके प्रसादसे होगी। दूसरा कोई कितना ही मित्र हो, बचा नहीं सकता।

लोकमें अशरणता— भैया! पुराने समयकी बात जाने दो और अपने घरकी भी बात जाने दो। मान लो कि हम छोटे पुरुष हैं, पर आज भी जैसे जो बड़े माने गए हैं, उनके मरणका जब समय आता है तो सारे देशके प्रमुख भी हैरान रहते हैं कि बचा लें, पर कोई बचा नहीं पाता है। कभी सिकन्दर सम्राट था, मरणके समय क्या-क्या हिकमत नहीं की गयी होगी और आजके जमानेमें गांधी व नेहरू भी सम्राट थे, जिनकी चिंतनाका आदर, विचारोंका आदर आदि सब देश करते थे और उनको महत्त्वकी दृष्टिसे देखते थे। मरणके समयमें उन्हें कोई न बचा सका। किसीसे कोई आशा रखना सब व्यर्थकी बातें हैं। जिससे चित्त आपका लगा हो, जिसे आप अपना इष्ट मानते हो, उससे भी अपनी शान्तिकी आशा रखना व्यर्थकी बात है, क्योंकि परकी ओर दौड़ते हुए उपयोगमें वह सामर्थ्य नहीं रहती कि कुछ शांतिका लाभ करा सके। जिस किसीको भी जो कि सबसे अधिक प्रिय है और इष्ट है, उसका उपयोग उतना ही

बाहर दौड़ा और भूला हुआ है। वह तो शांतिसे अधिक ही दूर हो गया है।

परसे अलगाव—संसारमें कहते हैं कि दुःख तो है पर्वत बराबर और सुख है राई बराबर। यहाँ सुखसे मतलब है इन्द्रियसुखका। वास्तवमें इस संसारमें कहीं सुखका नाम नहीं है, पर लगे फिर रहे हैं उस ओर ही आसक्ति बनाए रहनेमें। क्या करेंगे जोड़-जोड़कर? किसी दिन सब कुछ छोड़कर चले ही जायेंगे। लड़का, भतीजा आदि किसीके भी तुम ठेकेदार नहीं होते, उनमें सुमति होगी, उनका अनुकूल उदय होगा तो वे अपने बूते पर सुखी रहेंगे। आपके छोड़े हुए वैभवके खातिर वे सुखी न रहेंगे और यदि कुपूत होंगे, कुबुद्धि जगेगी तो आप जो कुछ छोड़कर जायेंगे, वह सब एक हफ्तेमें ही स्वाहा कर देंगे, फिर किसकी चिंतनामें वैभव जोड़नेके ये सब विकल्प किये जा रहे हैं? यह सब कुछ गम्भीरताके साथ सोचना चाहिये।

गृहस्थका वैभव—यद्यपि गृहस्थावस्थामें कुछ वैभवकी आवश्यकता है। न हो कुछ वैभव तो काम नहीं चलता है, पर इतनी हिम्मत भी तो साथमें रहनी चाहिये कि इस वैभवके रहते हुए यदि कोई कार्य आ पड़े, वह कार्य करने योग्य है तो उसके लिए यह सब व्यय भी किया जा सकता है—ऐसी मनमें सामर्थ्य बने तब तो समझो कि गृहस्थीके लिए आवश्यकता है, इसलिए वैभव बनाया है अन्यथा केवल मनको मोहमें पागनेके लिए ही ये विकल्प बनाए जा रहे हैं।

परमश्रीकी प्रसाधना—जो मनुष्य वीतराग निर्विकल्प सर्वज्ञ कार्यसमयसारके गुणस्मरणके प्रसादसे और उसके अनुरूप कारणसमयसारकी दृष्टिकी कृपासे इस सहजसमयसारको जानता है, वह अवश्य ही परमश्री का अधिकारी होता है। संसार दुःखमय है, इसे मिटाना है तो हम कौनसा काम करें कि यह संसार टले, संकट मेरे टलें, संसार बना है द्रव्यकर्मका निमित्त पाकर। ऐसे द्रव्यकर्मके मिटानेमें हमारा बल नहीं चलता है, क्योंकि पर परद्रव्य ही है। द्रव्यकर्मके मिटानेका मिमित्त है भावकर्म न होना। सो हमारा बल इस पर तो चल सकेगा कि मुझमें भावकर्म न बनें, किन्तु द्रव्यकर्मका मिटाना और इस पर्यायको दूर करना, इस पर हमारा जरासा भी बल नहीं है और भावकर्मका भी मिटाना और रोकना यह भी तो जैसा मैं ज्ञानस्वरूप हूं, उस ही स्वरूपके आश्रयके द्वारा ही तो सम्भव होता है।

धर्म और धर्मका पालन—धर्म एकस्वरूप है और धर्म

की विधि भी एकस्वरूप है और धर्मका फल भी एकस्वरूप है। धर्म है सहजस्वभावका आश्रय करना। प्रथम तो जो धर्म है वह पालन करनेकी चीज नहीं है, व्यवहारकी बात नहीं है। परिणमन और परिवर्तन से सम्बन्ध नहीं रखता, वह है आत्माका विशुद्ध स्वभाव। वस्तुके स्वभावको धर्म कहते हैं। वह तो सब जीवोंमें है। जो पालन करे उसके भी है, न पालन करे उसके भी है। उस वस्तुस्वभावरूप धर्मकी दृष्टि देना यही है पालन करनेका धर्म। जहां पालन करनेकी बात आए वह हो गया व्यवहार तो निश्चय धर्म है ज्ञानस्वभाव और व्यवहार धर्म है ज्ञान स्वभावका आश्रय। करना और इस ज्ञानस्वभावके आश्रय करने के प्रोग्राममें जो स्वाध्याय गुरु संग आदिक बातें हैं, वे व्यवहार धर्मके प्रति व्यवहार धर्म है।

संसारके निरोधका मूल पुरुषार्थ— इस ज्ञानदृष्टिके पड़ने से भावकर्मका निरोध हुआ, जिसके प्रतापसे द्रव्यकर्मका निरोध हुआ है और द्रव्यकर्मका निरोध होनेसे संसारका निरोध होता है। जैसे एक सुईसे दो तरफ नहीं सिया जा सकता है कि आगेको भी सिये और पीछेको भी सिये। एक मुसाफिर पूरबको और पश्चिमको एक साथ जाय, ऐसा नहीं कर सकता है। इसी प्रकार संसारके भोग भोगना और मोक्षमार्गमें प्रगति करना—ये दो बातें एक साथ कभी नहीं हो सकती है। धन वैभव परिजन पोजीशनमें अपने चित्तको उलझाना और उनमें ही अपना बड़प्पन मानना ये सब संसारकी बातें है, अशांतिके कारण हैं।

इन्द्रजाल— जैसे किस्सोंमें सुनाया करते कि किसी गधेको कहीं शेर की खाल पड़ी हुई मिल गई। सो उस खालको ओढ़कर अपनेको बड़ा मान मानकर जंगली जानवरों पर हुकूमत करता है और अपनेमें बड़प्पन महसूस करता है, किन्तु यथार्थ जानने वाला तो उस पर हास्य करता है। कहीं लोमड़ी गिर गयी रंगरेजकी रंगकी हौजमें सो वह नीली हो गई और कहींसे एक डंडा मिल गया और कहींसे मिल गया पुट्टा सो वह जंगली जानवरों पर सितम ढालने लगी। तुमको मालूम है कि मुझे भगवानने इन जंगली जानवरों पर राज्य करने के लिए भेजा है। इसी तरह कुछ धन मिल जाय, परिजन मिल जाये पुत्र स्त्री आदिक, हां में हां मिलाने वाले मित्र मिल जायें अथवा कोई लोग इज्जत रखे तो उन बातोंको मानो लोमड़ी की तरह अपना बड़प्पन महसूस करते हैं। हम सीधे भगवानके भेजे हुए हैं। अरे क्या बड़प्पन करना? वे सब विषादकी चीजे हैं। हर्ष माननेकी चीज नहीं है। इन सब बातोंको विषफल खानेकी तरह बताय

है ? जैसे विषफल देखनेमें बड़ा सुन्दर लगता है और खानेमें जहरीला होता है, उसके खानेका फल मरण ही होगा। तो खुश हो हो करके मर सके, मिट सके, बरबाद हो सके, ऐसो घटनावोंका ही तो नाम इन्द्रजाल है। सो खुश होकर पचेन्द्रियके विषयोंमें आनन्द मानकर गिर रहे है, बरबाद हो रहे हैं, खेद कर रहे हैं। यही तो अवसरका खो देना है।

गोरखधन्धा—एक कोई राजाका मित्र था, दुर्भाग्यवश गरीब हो गया तो उसने राजाको सकेत किया। तो राजाने हुक्म दे दिया कि इनको ले जावो, एक बजे से ३ बजे तक दो घटेमें खजाने से जितना जो कुछ ला सके ले आवे। वह सेठ गया दूसरे दिन। तनिक दरवाजेके अन्दर घुसा तो वहा देखा कि बहुत सुहावना गोरखधंधा रखा हुआ है। सो जैसे छल्ला होते है एकमे एक फसे हुए, वैसे ही फसे हुए थे। सो उन्हें वह निकालकर देखने लगा। जब वह सुलझाने लगा तो और भी वे छल्ले फसते ही चले जाये। निकालने की वह कोशिश करे पर छल्ले फसते जाये। ऐसे गोरख धंधेमें वह पड गया। तो जो खजाञ्ची था वह बोला कि हमारा गोरखधधा ठीक करो तब भीतर पैर रख सकते हो। तो ज्यो ज्यो वह सुलझाए त्यो त्यो छल्ले फसते जाए। इन गोरखधधोंमे ही उसके दो घटे बीत गए, कुछ भी वहांसे ला न सका। यही हाल हम आप सबका है। रिटायर हो गए हैं, मरणके दिन निकट आ गए है, फिर भी अपना कल्याण करनेका कुछ अवसर ही कभी नही आ पाता है।

भावी स्थितिपर धर्मपालनकी आशाका स्वप्न— आज जैसी परिस्थिति है उस परिस्थितिमें ही अपने हितकी बात बनालो, और यह ध्यान करने लगे कि हमारा फला काम बन जाय, छोडीसी तो बात रह गयी है, लड़के समर्थ हो जाएं, मुन्नाका विवाह कर दे, फिर कोई चिता न रहे, फिर अच्छी तरहसे धर्म करेंगे। तो भाई इस तरहसे धर्म करनेका अवसर नहीं आता है। जब अच्छी स्थिति होती है तो धर्म करनेका ख्याल ही नहीं आता और जब कठिन बीमारी पड़ जाय तो झट ख्याल आ जाता है कि मै आत्महितके लिए कुछ नही कर पाया। यदि मै इस बार बच जाऊंगा तो केवल आत्महितका ही काम करूंगा और फिर कुछ नहीं करना है। बच जाय तो कुछ ही समय बाद मामला लेविलपर पहिले जैसा ही पहुंच जायेगा।

दुःख सुखमें प्रभुके स्मरण व विस्मरणकी आदत—एक आदमी नारियलके पेड़ पर चढ गया। चढनेको तो चढ गया पर उतरते समय त्यों ही उसने नीचेको देखा तो भयभीत हुआ। सोचा कि अब मेरे बचनेकी

उम्मीद नहीं है। सो उसने सोचा कि यदि मैं सही सलामत उतर जाऊं तो १०० पुरुषों को भोजन कराऊगा। उसने हिम्मत बाधी और तुरन्त कुछ नीचे उतर आया। सोचा कि १०० तो नहीं पर २५ को जरूर भोजन कराऊगा और नीचे उतरा तो सोचा कि ५ को जरूर भोजन कराऊगा, और जब बिलकुल नीचे उतर आया तो सोचा कि वाह उतरे तो हम हैं, किसीको काहे भोजन कराये ? तो जैसे-जैसे दुःख कम हो जाते हैं वैसे ही वैसे फिर वही पहिलेकी जैसी हालत हो जाती है।

सिद्धान्त और मन्तव्यके और छोर— यह जीव सम्यग्ज्ञानके भाव से रहित होकर भ्रात होता हैं, शुभ अशुभ नानाप्रकारके कर्मोंको करता है और वह मोक्षमार्गमे नहीं लग पाता है। मोक्षमार्गमें लगनेका उसे कोई अवसर ही नही है। जैसे सिद्धान्तमे सर्व जीवोंको एकस्वरूप देखनेका उपदेश है उस सिद्धान्त के माननेकी तो हम दुहाई देते हैं और हम धर्मके नाम पर धर्मके ही नाते सर्व धर्मीजनोंको हम एक समभावकी दृष्टिसे नहीं निहार सकते। तो बतलावो कहा धर्मके निकट आए ? मदिरका प्रसग हो, जलूसका उत्सव हो, तो उन आयोजनोंमे भी अपने माने हुए मन्तव्योंकी दीवाल अड जाती है। यह हमारा मदिर है यह उनका है यह हमारा

करके हम ठीक ज्ञान कर लेते हैं। जैसे कि सबने देखा होगा कि अग्निसे रोटी पकती हैं, बड़ा दृढ विश्वास है, खाने-पीनेसे खूब सुख शांति होती है अथवा अमुक प्रकारसे व्यापार करनेमें लाभ होता है। कितनी बाते प्रयोग करके देख लेते हैं या किसीको गाली देनेसे चाटे रसीद होते है, प्रयोग करके देख लो ना। किसीसे भले शब्द बोल दो, प्रेमसे मीठी वाणी कह दो तो उसके एवजमें भली बात सुननेको मिलती है। जैसे प्रयोगसे अनेक बाते निर्णयमे आती हैं, इसी तरह धर्म और अधर्मके प्रयोगसे सब बाते निर्णयमे आ जाती हैं।

अधर्मसे शान्तिका प्रयोगात्मक निर्णय-- किसीसे राग करो, मोह बढाओ तो उस कालमें भले ही सुहावना लगता है, पर उत्तरकालमे कितनी चिंताओमे पड़ जाना है और अन्तमे मिलता भी कुछ नही है। वह ही विरुद्ध हो जाए तो संक्लेश किए जाते हैं अथवा अनुकूल बने रहे तो राग कर करके वरबाद हो जाते हैं। जैसे लोकमे हुक्म देने वाले भी दुखी है और हुकम मानने वाले भी दुखी हैं। दोनोंके दु:ख अपनी-अपनी जगह हैं। हुक्म मानने वाला तो जानता है कि यह हुकम देने वाला बड़ा है, सुखी है, जो मनमे आया हुक्म दे डाला, किन्तु हुक्म देने वालेको कितनी विपत्तिया सताती है, कितनी जिम्मेदारी उस पर है, उसको हुक्म मानने वाला नही पहिचान सकता। इसीतरह द्वेषमे तो दु ख है, विरोधमे, लडाईमे दुख है, यह सब जानते हैं, किन्तु राग करनेमे जो क्लेश हैं, इसे पहिचानने वाला ज्ञानी ही हो सकता है।

धर्म और अधर्मसे हित अहितके निर्णयकी प्रयोगसाध्यता-- भैया! रागद्वेष करनेसे हम आकुलतामे पडते है और रागद्वेष न हो, किसी परवस्तुका लगाव न हो तो प्रयोग करके देख लो कि आकुलताए शात होती हैं या नहीं। प्रयोग करके देखा कि निर्णय हो जाता है कि रागद्वेष मोह करना तो अधर्म है और रागद्वेषमोहसे विमुख होकर एक जाननहार बने रहना धर्म है। अरे भैया! हम जाननहार भी नहीं बनना चाहते, पर क्या करें, यह तो हमारा गुण है। विवश होकर जानन तो हुआ ही करेगा, सो हो, मात्रजाननसे कोई क्लेश नहीं है। यह निर्णय कर लेना कठिन बात नही है, पर कोई मानना ही नहीं चाहते, इस ओर अपनी बुद्धि लगाना ही नहीं चाहते तो उसका क्या इलाज?

असत्याग्रहकी अकर्तव्यता— भैया! हठ करना अच्छी बात नही होती है। अनुकूल उदय है, इष्ट सामग्री मिल गयी, जिसे जो इष्ट हुआ तो अब वैसा गर्विष्ठ बनकर मनमाना व्यवहार बनाना आदि ऐसी हठका फल

उम्मीद नहीं है। सो उसने सोचा कि यदि मैं सही सलामत उतर जाऊं तो १०० पुरुषों को भोजन कराऊगा। उसने हिम्मत बाधी और तुरन्त कुछ नीचे उतर आया। सोचा कि १०० तो नहीं पर २५ को जरूर भोजन कराऊगा और नीचे उतरा तो सोचा कि ५ को जरूर भोजन कराऊंगा, और जब बिल्कुल नीचे उतर आया तो सोचा कि वाह, उतरे तो हम हैं, किसीको काहे भोजन करायें ? तो जैसे-जैसे दुःख कम हो जाते हैं वैसे ही वैसे फिर वही पहिलेकी जैसी हालत हो जाती है।

सिद्धान्त और मन्तव्यके और छोर— यह जीव सम्यग्ज्ञानके भाव से रहित होकर भ्रात होता है, शुभ अशुभ नानाप्रकारके कर्मोको करता है और वह मोक्षमार्गमे नही लग पाता है। मोक्षमार्गमे लगनेका उसे कोई अवसर ही नही है। जैसे सिद्धान्तमे सर्व जीवोको एकस्वरूप देखनेका उपदेश है उस सिद्धान्त के माननेकी तो हम दुहाई देते हैं और हम धर्मके नाम पर धर्मके ही नाते सर्व धर्मीजनोको हम एक समभावकी दृष्टिसे नहीं निहार सकते। तो बतलावो कहा धर्मके निकट आए ? मदिरका प्रसग हो, जलूसका उत्सव हो, तो उन आयोजनोंमे भी अपने माने हुए मन्तव्योंकी दीवाल अड जाती है। यह हमारा मदिर है, यह उनका है, यह हमारा आयोजन है यह उनका है, यह मेरा जलूस है और यह दूसरेका है—ऐसी बात लोगोके घर कर जाती है। तो अब और आगे कैसे गाडी चले ? बहुत पीछे हटे हुए हैं धर्ममार्गसे। अब धर्ममें बढना है तो चुपचाप अपने आपमें अपनी सफाई करके बढो। इसी से ही कुछ तत्त्व मिलेगा, बाकी तो सब चार दिनकी चांदनी फेर अधेरी रात।

धर्मयोग—जो जीव इन्द्रियजन्य सुखका त्याग करके अथवा कर्म सम्बन्धी सुखका त्याग करके कर्मरहित सुखसमूहरूप अमृत जलके समूहमे अर्थात् आत्मतत्त्वमें मग्न होते हुए होते हैं, ऐसे भव्य आत्मा इस चतन्य-मय एक अद्वितीय आत्मभावको प्राप्त हो। धर्मकी समस्या सुलझना बहुत सरल है और बड़ी विद्यावों व धर्म ज्ञानकी बड़ी बाते समझनेमे कुछ संदेह भी किया जा सकता है, विशद बोध नही भी हो पाता है पर धर्मकी समस्या सुलझाना कुछ कठिन नहीं है।

धर्मकी समस्याकी प्रयोगात्मक सुलझन— पुराणोमे कथन है स्वर्ग अथवा नरककी रचना है अथवा तीन लोक, तीन कालकी रचना है यह सब श्रद्धाके द्वारसे माना जाता है। कोई तो उनमें श्रद्धाबलसे बहुत निश्चय रखते हैं। मान लो कोई न भी रख सके तो धर्मकी समस्या सुलझानेमे कहा विवाद यह तो प्रयोग वाली बात है। जैसे व्यवहारकी बात प्रयोग

करके हम ठीक ज्ञान कर लेते हैं। जैसे कि सबने देखा होगा कि अग्निसे रोटी पकती हैं, बड़ा दृढ़ विश्वास है, खाने-पीनेसे खूब सुख शांति होती है अथवा अमुक प्रकारसे व्यापार करनेमें लाभ होता है। कितनी बातें प्रयोग करके देख लेते हैं या किसीको गाली देनेसे चाटे रसीद होते है, प्रयोग करके देख लो ना। किसीसे भले शब्द बोल दो, प्रेमसे मीठी वाणी कह दो तो उसके एवजमें भली बात सुननेको मिलती है। जैसे प्रयोगसे अनेक बातें निर्णयमें आती हैं, इसी तरह धर्म और अधर्मके प्रयोगसे सब बातें निर्णयमें आ जाती हैं।

अधर्मसे शान्तिका प्रयोगात्मक निर्णय— किसीसे राग करो, मोह बढ़ाओ तो उस कालमें भले ही सुहावना लगता हैं, पर उत्तरकालमें कितनी-चिंताओंमे पड़ जाना है और अन्तमें मिलता भी कुछ नही है। यह ही विरुद्ध हो जाए तो सक्लेश किए जाते हैं अथवा अनुकूल बने रहे तो राग कर करके बरबाद हो जाते हैं। जैसे लोकमें हुक्म देने वाले भी दुखी है और हुक्म मानने वाले भी दुखी है। दोनोंके दु ख अपनी-अपनी जगह हैं। हुक्म मानने वाला तो जानता है कि यह हुक्म देने वाला बड़ा है, सुखी है, जो मनमे आया हुक्म दे डाला, किन्तु हुक्म देने वालेको कितनी विपत्तिया सताती है, कितनी जिम्मेदारी उस पर है, उसको हुक्म मानने वाला नही पहिचान सकता। इसीतरह द्वेषमें तो दु ख है, विरोधमें, लड़ाईमें दुख है, यह सब जानते हैं, किन्तु राग करनेमें जो क्लेश हैं, इसे पहिचानने वाला ज्ञानी ही हो सकता है।

धर्म और अधर्मसे हित अहितके निर्णयकी प्रयोगसाध्यता— भैया! रागद्वेष करनेसे हम आकुलतामें पड़ते हैं और रागद्वेष न हो, किसी परवस्तुका लगाव न हो तो प्रयोग करके देख लो कि आकुलताए शांत होती हैं या नहीं। प्रयोग करके देखा कि निर्णय हो जाता है कि रागद्वेष मोह करना तो अधर्म है और रागद्वेषमोहसे विमुख होकर एक जाननहार बने रहना धर्म है। अरे भैया! हम जाननहार भी नहीं बनना चाहते, पर क्या करे, यह तो हमारा गुण है। विवश होकर जानन तो हुआ ही करेगा, सो हो, मात्रजाननसे कोई क्लेश नहीं है। यह निर्णय कर लेना कठिन बात नही है, पर कोई मानना ही नही चाहते, इस ओर अपनी बुद्धि लगाना ही नहीं चाहते तो उसका क्या इलाज?

असत्याग्रहकी अकर्तव्यता— भैया! हठ करना अच्छी बात नहीं होती है। अनुकूल उदय है, इष्ट सामग्री मिल गयी, जिसे जो इष्ट हुआ तो अब वैसा गर्विष्ट बनकर मनमाना व्यवहार बनाना आदि ऐसी हठका फल

बुरा है। उस हठके फलमें बादमें ऐसी घटनाएं आ जाती है कि खुदको ही मार खाना पड़ता है। उदय कब तक अनुकूल चलेगा? सुख और दुःख चक्र-आरोंकी तरह इस लोकमें घूम रहे हैं। हां सुख-दुःख दोनोंका विनाश हो और आत्मीय आनन्द प्रकट हो तो वह बात अहितकी नहीं है। वह तो संसारसे परे जो शुद्ध आत्मा है उसकी कलाकी बात है।

ज्ञानात्मक आत्माके ज्ञानकी सहजसाध्यता— अपने ज्ञानको थाह पा लेना, मर्म जान लेना यह भी कठिन नहीं है, इसके लिए भी कोई बड़ी डिग्री हम जानते हों, बहुत शास्त्रोंके विद्वान् हों तब हम अपने आत्माके मर्मकी बात जान सकेंगे ऐसा नहीं है, वह तो जाननेका अधिकारी है ही, किन्तु जो अल्पज्ञ हैं वे भी एक बात मनमें आ जाय कि इस लोकमें समस्त समागम जंजाल असार है, भिन्न हैं मेरे लिए ठीक नहीं हैं इस ज्ञानके बल पर अपने उपयोगको ऐसा बनाएं कि किसी भी बाह्यपदार्थका ख्याल न करें तो स्वयमेव अपने आप उस ज्ञानज्योतिका अनुभव हो जायेगा। तो ये सब बातें बड़े प्रेमकी हैं। जगतके जीवोंमें किसी भी प्रकारका भेद और विरोध न रखकर अपने आपकी प्रीति रीति बढ़ाकर अपनेमें मग्न होनेका यत्न करें तो बात बन सकती है। यह बहुत बड़ा वैभव है कि हम अपनी पोजीशनको महत्त्व न देकर अपने को श्रद्धान ज्ञान और आचार विचारसे भरपूर अनुभव करें।

तत्त्वज्ञपुरुषकी उत्कृष्ट आसीनता— भैया! आत्महितयोगीके क्षति यही हो सकता है कि कोई प्रशंसा न करेगा, पर उस प्रशंसाकी भी परवाह नहीं है उस तत्त्वज्ञानी पुरुषको। जो जीव कर्मज सुखको छोड़कर निज में सुखमें रुचि करता है वह एक अद्वैत ज्ञायकस्वरूप को प्राप्त कर लेता है। वैभव होता है, रागद्वेष चलते हैं, इसकी कोई अधिक चिंता नहीं है। चिन्ता तो इसकी होनी चाहिए कि मेरा जो अपने आपका स्वरूप है वह जानन मे क्यों नहीं आता? कुछ भी स्थिति हो। अपने उपयोगमें अपना सहज आत्मस्वरूप जो सर्व कर्म और विभावोंसे रहित है, शुद्ध आत्माका जो केवल स्वरूप है वह अनुभवमें आए क्योंकि इस ज्ञानानुभवके बिना अन्य-प्रकारसे इस जीवकी मुक्ति नहीं है। संसारी जीवमें सांसारिकताके ढंगसे गुण प्रकट होता है और सिद्ध जीवोंमें उनका आनन्द परमगुण प्रकट हुआ है यह व्यवहारनय का विषय है।

आत्मस्वरूपकी झलक— निश्चयसे तो भैया! एक निशाना भर मिलता है वह न मुक्त है, न संसारी है किन्तु एक लक्ष्यभूत चिह्न-चिह्नित हो जाता है। किसी पुरुषके बारेमें पूछें कि यह कौन है? तो कोई कहेगा कि

यह बालक है, पर यह भी कोई स्थायी उत्तर नहीं है। जवान है, धनी है, अमुकका पिता है, अमुकका लड़का है। ये कुछ चिह्न इस मनुष्यमें नहीं पाये जाते हैं। इस मनुष्यका तो सही वर्णन बताओ कि यह स्वयं क्या है? तो कहना होगा कि सब प्रकारकी बातें कह चुकनेके बाद भी अब निष्कर्षमें सबसे रहित है और यह मनुष्य है सो समझ जायेगा। यह आत्मा न कषाय सहित है और न कषाय रहित है, किन्तु एक सहजज्ञायकस्वरूप है। अंगुलीको अंगुलीसे जकड़ दिया जाय उस स्थितिमें पूछा जाय कि अंगुली का स्वरूप कैसा है? तो यह अंगुली जकड़ी हुई है, बंधी हुई है, यह स्वरूप है। यही तो अंगुलीका स्वरूप है। अरे यह तो एक परिस्थिति बनायी है। अंगुलीमें जो कुछ है वही अंगुलीका स्वरूप है। गाय कैसी है? अरे बंधी है। वह न बंधी है और न छूटी है। अंगुलीका बंधा भी स्वरूप नहीं है और छूटा भी स्वरूप नहीं है। गायमें, जो कुछ पाया जाता है वह गायका स्वरूप है। सो संसारी जीवोंमें विभावपरिणमन है और मुक्त जीवोंमें स्वभावपरिणमन है। यह सब व्यवहारनयका वर्णन है। निश्चयसे तो यह आत्मा न मुक्त है और न संसारी है। यह ज्ञानवंतोंका निर्णय है। इस ही प्रकरणसे उठकर कुन्दकुन्दाचार्यदेव नयविभागपूर्वक इसका निर्णय करते हैं।

दव्वट्ठियेण जीवो वदिरित्तो पुव्वभणिहपज्जाया।
पज्जयणयेण जीवा संजुत्ता होंति दुविहोहिं ॥१६॥

ज्ञान दर्शनकी शाखाओंका विस्तार— द्रव्यार्थिकनयसे जीव पूर्वमें कही हुई पर्यायोंसे भिन्न है और पर्यायार्थिक नयसे यह जीव दोनों प्रकार की पर्यायोंसे सहित है। जो शुद्ध है वह शुद्ध पर्यायसे सहित है और जो अशुद्ध है वह अशुद्ध पर्यायसे सहित है। जीवके सम्बन्धमें बहुत वर्णन चला है। पहिले तो उपयोग स्वरूपका वर्णन था और उसके विस्तारमें स्वभावज्ञान, विभावज्ञान, कारण स्वभावज्ञान, कार्यस्वभावज्ञान, सम्यक्विभावज्ञान केवलविभावज्ञान और दर्शनके सम्बन्धमें स्वभावदर्शन, विभावदर्शन कारणस्वभावदर्शन, कार्यस्वभावदर्शन— ऐसे विस्तारपूर्वक गुणों और गुणपर्यायों को बताया है। और गुणपर्याय तथा व्यञ्जनपर्याय इन सबका माध्यमभूत जो अर्थपरिणमन है उसका वर्णन किया और व्यञ्जनपर्यायों का वर्णन किया।

ज्ञानदर्शनकी विस्तारविवेचनामें शिक्षा— इस सब वर्णनके बाद अब शिक्षारूपमें क्या ग्रहण करना है? इस बातको इस पद्धतिमें बतला रहे हैं कि द्रव्यार्थिकनयसे जीव पूर्वोक्त सर्व पर्यायोंसे भिन्न है। देखो ना कोई

बुरा है। इस हठके फलमें बादमें ऐसी घटनाएं आ जाती है कि खुदको ही मान रखना पडता है। उदय कब तक अनुकूल चलेगा? सुख और दुःख चक्रके आरोकी तरह इस लोकमें घूम रहे हैं। हां सुख-दुःखका विनाश हो और आत्मीय आनन्द प्रकट हो तो वह बात अहितकी नहीं है। यह तो ससारसे परे जो शुद्ध आत्मा है उनकी कलाकी बात है।

ज्ञानात्मक आत्माके ज्ञानकी सहजसाध्यता— अपने ज्ञानकी थाह पा लेना, मर्म जान लेना यह भी कठिन नहीं है, इसके लिए भी कोई बडी विद्या हम जानते हों, बहुत शास्त्रोंके विद्वान् हों तब हम अपने आत्माके मर्मकी बात जान सकेंगे ऐसा नहीं है, वह तो जाननका अधिकारी है ही, किन्तु जो अल्पज्ञ है वे भी एक बात मनमें आ जाय कि इस लोकमें समस्त समागम जजाल असार है, भिन्न हैं मेरे लिए ठीक नहीं हैं इस ज्ञानके बल पर अपने उपयोगको ऐसा बनाए कि किसी भी बाह्यपदार्थका ख्याल न करे तो स्वयमेव अपने आप उस ज्ञानज्योतिका अनुभव हो जायेगा। तो ये सब बातें बडे प्रेमकी हैं। जगतके जीवोंमें किसी भी प्रकारका भेद और विरोध न रखकर अपने आपकी प्रीति रीति बढाकर अपनेमें मग्न होनेका यत्न करे तो बात बन सकती है। यह बहुत बडा वैभव है कि हम अपनी पोजीशनको महत्त्व न देकर अपने को श्रद्धान ज्ञान और आचार विचारसे भरपूर अनुभव करें।

तत्त्वज्ञपुरुषकी उत्कृष्ट आसीनता— भैया! आत्महितयोगीके क्षति यही हो सकता है कि कोई प्रशसा न करेगा, पर उस प्रशसाकी भी परवाह नहीं है उस तत्त्वज्ञानी पुरुषको। जो जीव कर्मज सुखको छोड़कर निजधर्म सुखमें रुचि करता है वह एक अद्वैत ज्ञायकस्वरूप को प्राप्त कर लेता है। वैभव होता है, रागद्वेष चलते हैं, इसकी कोई अधिक चिंता नहीं है। चिंता तो इसकी होनी चाहिए कि मेरा जो अपने आपका स्वरूप है वह जाननमें क्यों नहीं आता? कुछ भी स्थिति हो। अपने उपयोगमें अपना सहज आत्मस्वरूप जो सर्व कर्म और विभावोंसे रहित है, शुद्ध आत्माका जो केवल स्वरूप है वह अनुभवमें आए क्योंकि इस ज्ञानानुभवके बिना अन्य प्रकारसे इस जीवकी मुक्ति नहीं है। ससारी जीवमें सासारिकताके ढंगसे गुण प्रकट होता है और सिद्ध जीवोंमें उनका आनन्द परमगुण प्रकट हुआ है यह व्यवहारनय का विषय है।

आत्मस्वरूपकी झलक— निश्चयसे तो भैया! एक निशाना भर मिलता है वह न मुक्त है, न ससारी है किन्तु एक लक्ष्यभूत चिह्न-विदित हो जाता है। किसी पुरुषके बारेमें पूछे कि यह कौन है? तो कोई कहेगा कि

यह बालक है, पर यह भी कोई स्थायी उत्तर नहीं है। जवान है, धनी है, अमुकका पिता है, अमुकका लड़का है। ये कुछ चिह्न इस मनुष्यमें नहीं पाये जाते हैं। इस मनुष्यका तो सही वर्णन बतावो कि यह स्वयं क्या है? तो कहना होगा कि सब प्रकारकी बातें कह चुकनेके बाद भी अब निष्कर्षमें सबसे रहित है और यह मनुष्य है सो समझ जायेगा। यह आत्मा न कषाय सहित है और न कषाय रहित है, किन्तु एक सहजज्ञायकस्वरूप है। अंगुलीको अंगुलीसे जकड़ दिया जाय उस स्थितिमें पूछा जाय कि अंगुली का स्वरूप कैसा है? तो यह अंगुली जकड़ी हुई है, बंधी हुई है, यह स्वरूप है। यही तो अंगुलीका स्वरूप है। अरे यह तो एक परिस्थिति बनायी है। अंगुलीमें जो कुछ है वही अंगुलीका स्वरूप है। गाय कैसी है? अरे बंधी है। वह न बंधी है और न छूटी है। अंगुलीका बंधा भी स्वरूप नहीं है और छूटा भी स्वरूप नहीं है। गायमें जो कुछ पाया जाना है वह गायका स्वरूप है। सो संसारी जीवोंमें विभावपरिणमन है और मुक्त जीवोंमें स्वभावपरिणमन है। यह सब व्यवहारनयका वर्णन है। निश्चयसे तो यह आत्मा न मुक्त है और न संसारी है। यह ज्ञानवतोंका निर्णय है। इस ही प्रकरणसे उठकर कुन्दकुन्दाचार्यदेव नयविभागपूर्वक इसका निर्णय करते हैं।

दव्वट्ठियेण जीवो वदिरित्तो पुव्वभणिदपज्जाया।
पज्जयणयेण जीवा संजुत्ता होंति दुविहेहि ॥१६॥

ज्ञान दर्शनकी शाखाओंका विस्तार—द्रव्यार्थिकनयसे जीव पूर्वमें कही हुई पर्यायोंसे भिन्न है और पर्यायार्थिक नयसे यह जीव दोनों प्रकार की पर्यायोंसे सहित है। जो शुद्ध है वह शुद्ध पर्यायसे सहित है और जो अशुद्ध है वह अशुद्ध पर्यायसे सहित है। जीवके सम्बन्धमें बहुत वर्णन चला है। पहिले तो उपयोग स्वरूपका वर्णन था और उसके विस्तारमें स्वभाव ज्ञान, विभावज्ञान, कारण स्वभावज्ञान, कार्यस्वभावज्ञान, सम्यक्विभावज्ञान केवलविभावज्ञान और दर्शनके सम्बन्धमें स्वभावदर्शन, विभावदर्शन का. स्वभावदर्शन, कार्यस्वभावदर्शन—ऐसे विस्तारपूर्वक गुणों और गुणपर्यायों को बताया है। और गुणपर्याय तथा व्यञ्जनपर्याय इन सबका माध्यमभूत जो अर्थपरिणमन है उसका वर्णन किया और व्यञ्जनपर्यायों का वर्णन किया।

ज्ञानदर्शनकी विस्तारविवेचनामें शिक्षा—इस सब वर्णनके बाद अब शिक्षारूपमें क्या ग्रहण करना है? इस बातको इस पद्धतिमें बतला रहे हैं कि द्रव्यार्थिकनयसे जीव पूर्वोक्त सर्व पर्यायोंसे भिन्न है। देखो ना कोई

वकील गलतीसे वेहोशीसे नशेमें अपने ही खिलाफ बात बोल जाय, दूसरे वादीके अनुकूल बात बोल जाय, उस बातको बोलकर फिर वह कह देवे कि इतनेमें फिर हमारी नींद खुल गयी। विरोध विरोधमें ही सब बोले जिससे अपना मुकदमा खराब हो जाय और बोलनेके बाद फिर कहे कि ऐसा देखा—इतने में नींद खुल गयी। ऐसी ही बात यहा हो गयी कि पर्यायों का वर्णन किया, स्वभावको छोड़कर पर्यायोंको विस्तृत किया और करनेके बाद अब कह रहे हैं द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे कि ये जीव इन सर्व पर्यायोंसे भिन्न हैं।

यहा दोनों नयोंकी सफलता बतलायी जा रही है। भगवान अरहंत परमेश्वरके द्वारा भणित ये दो नय हैं—द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय ये परमेश्वरसे आए हुए हैं, जैसे कहते हैं ना कि परमेश्वरके भेजे गए ये संदेश हैं। परमेश्वरसे आये हुए संदेश हैं अर्थात् उनके उपदेशकी परम्परा से चला आया हुआ यह निर्णय है। द्रव्यार्थिकनय कहता है कि जिसका द्रव्य ही प्रयोजन हो, द्रव्य ही देखनेका मतलब हो। मतलब तो छोटी चीज है। मतका लव-मायने माने गयेकी छोटीसी बात लवलेश जो मानता है, उसकी मामूली, रच सी बात उसका नाम है मतलब और मतबल जो अपना मन होता है उसमें बल है, पुष्टि है। तो जिसका लक्ष्य एक द्रव्य देखनेका हो उसे कहते हैं द्रव्यार्थिकनय और पर्याय ही जिसका प्रयोजन हो उसे कहते हैं पर्यायार्थिकनय। भगवान्का उपदेश एक नयके आधीन नहीं है। एक नयके आधीन ही हुआ उपदेश ग्रहण करने योग्य नहीं है क्योंकि इन दोनो नयोंके आधीन हुई बुद्धि ग्रहण कहनेके योग्य है। निरपेक्ष नयका विषय निर्णयमें ठीक नहीं हो सकता।

एक नयकी अग्राह्यता— एक नयके ही रखनेमें भले ही एक गौण रखें, एक मुख्य रखे पर दूसरेको कतई न मानना इतना जो एक सिद्धान्त है कोई नयका वह उपदेश ग्राह्य नहीं है। इसही का तो फल है कि कोई क्षणिकवाद निकल आया, कोई अपरिणामवाद निकल आया, किन्तु हित की दृष्टिसे एक नय प्रधान बनेगा, दूसरा नय गौण रहेगा। यह ठीक है पर जानकारी सब नयोंकी नहीं होती तो केवल एक नयकी जानकारीका उपदेश ग्राह्य नहीं है।

द्रव्यार्थिकनयसे जीवका स्वरूप— यहां बतला रहे हैं कि द्रव्यार्थिक नयसे सब जीव उन समस्त पर्यायोंसे भिन्न हैं। द्रव्यार्थिकनयका कैसा बल है कि वह सत्ताको ग्रहण करने वाला है। द्रव्यार्थिकनय केवल द्रव्यको देखता है उस दृष्टिमें पूर्वोक्त व्यञ्जनपर्यायोंसे ये समस्त जीव जिसमें मुक्त

और संसारी जीवोंका भेद नहीं करना है, सबको लेना है, वे सब इस दृष्टि मे सर्वथा भिन्न ही हैं। अपेक्षा लगाकर बलपूर्वक ही बोलना चाहिए।

स्याद्वादका चिह्न अपेक्षा और ही— जैसे किसी बालकके प्रति पूछा जाय, उसका पिता भी पास बैठ जाए और उसीसे पूछ दें कि यह कौन है? वह बतायेगा कि यह मेरा लडका है। उस समय ऐसा ज्ञान करना चाहिये कि इसका लड़का ही है और ऐसा बोध करें कि इसका लड़का भी है। तो क्या वह और कुछ भी है। अपेक्षा लगाकर भी बोलनेमे अनर्थ हो जाता है। स्याद्वादका चिन्ह भी नहीं है, स्याद्वादका चिन्ह अपेक्षा और 'ही' है। दोनोंका एक साथ प्रयोग है।

द्रव्यार्थिकनयसे जीवकी शुद्धता— द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिसे समस्त जीव पर्यायोंसे सर्वथा भिन्न ही है। अपेक्षा लगाकर ही लगानेमे सकोच नहीं होता है, क्योंकि शुद्धनयसे समस्त जीव शुद्ध ही है। यहां शुद्धसे मतलब केवल ज्ञानादिक शुद्धपर्यायोंसे नहीं है, केवल ज्ञानादिक शुद्धपर्यायोंका जानना अशुद्धनयसे होता है और स्वभावपरिणमन हो या विभावपरिणमन हो, सबसे व्यतिरिक्त केवल द्रव्यस्वभावको जानना ही शुद्धनयका विषय है। यहा शुद्ध और अशुद्धका अर्थ तो केवल शुद्ध है और केवलको छोड़कर अन्य बातें देखना अशुद्ध है। आध्यात्मिक ग्रन्थोंमे शुद्ध शब्दकी व्याख्या जब तक स्पष्ट न हो, तब तक स्वाध्याय करते जाइये, कुछ पकड़मे न आएगा। अब तो केवल यही जानना पडेगा कि सभी जीव द्रव्यार्थिकनयसे शुद्ध हैं। अरे हां! शुद्ध हैं। ये संसारी भी शुद्ध हैं क्या? अरे, संदेह भी करने लगा, परन्तु शुद्धनयका सबसे बडा प्रयोजन है खालिश एक ध्रुवस्वभावको निरखना ही। उस निरखनेमे अन्य कुछ और बाते दृष्ट ही नही होती हैं।

द्रव्यार्थिकनयका विषय प्रियतम— भैया! द्रव्यार्थिकनयसे क्या निरखा जा रहा है? परमशरण पारिणामिकभाव ध्रुवस्वभाव अति अभीष्टतम पीतम है, पीतम मायने प्रियतम, जो सबसे अधिक प्रिय हो। अब तो वास्तविक प्रियतमको लोग भूल गए और जिसे जो अधिक प्रिय है, उसको ही प्रियतम कहने लगे। चाहे वह लाठी ही बरसाता हो, मगर वह है हमारा प्रियतम। अरे! तुम्हारा प्रियतम तो तुम्हारे आत्मामें बसा हुआ ध्रुवज्ञानस्वभाव है, वही प्रियतम है। जितने भी अच्छे शब्द हैं, उनका मर्म तो लोग भूल गए और उनका अर्थ कुछका कुछ लगा बैठे। अब बोलते हैं साइयां। सइयां, साइयां— यह शब्द बिगड़ा है स्वामी शब्दसे। अरे! आपका स्वामी कौन है? आपका स्वरूप स्वस्वामीसम्बन्ध भिन्न

द्रव्य में नहीं है, आपके स्वामी आप हैं। और एक शब्द बोला जाता है खसम। उस खसमका अर्थ है— ख मायने इन्द्रिय, सम मायने शात हो जायें, अर्थात् जहा इन्द्रिया शात हो जायें मायने इन्द्रियविजयी साधुजन, सतजन, ज्ञानी लोग जो हैं उनका नाम है खसम और उनको छोड़कर अपने मनमाने का नाम रखने लगे। वल्लभ, वालम, वल्लभ शब्दसे बना, जो प्रिय हो। तो जितने भी प्यारके शब्द हैं वे सब आत्मस्वभावके लिए घटित हैं पर वहासे दृष्टि उड गई तो जो कुछ समझमें आया उसीको ही ये शब्द बोले जाते हैं। सर्व जीव शुद्धनयसे शुद्ध ही हैं। इस प्रकार द्रव्यार्थिकनयसे जीवका वर्णन करके अब पर्यायार्थिक नयमें यह जीव कैसा दृष्ट होता है इसका वर्णन चलेगा। यह गाथा इस अधिकारके उपसहाररूप है। इसमें विभावपर्यायोंका और स्वभावपर्यायोंका कुछ आगे वर्णन होगा।

नयोकी अपेक्षासे पर्यायोसे आत्माकी सयुक्तता व विविक्तता— द्रव्यार्थिकनयसे तो समस्त जीव शुद्ध हैं अर्थात मात्रज्ञानस्वभावी है और पर्यायार्थिकनयसे विभावव्यञ्जन पर्यायकी अपेक्षा वे सब जीव संयुक्त हैं। इनमें सब जीवोमें विभावव्यञ्जन पर्यायें अपर्यायें सिद्ध होती हैं, किन्तु ऐसा है नहीं। सिद्ध जीवोका तो अर्थपर्यायोके साथ परिणमन है, व्यञ्जन पर्यायोंके साथ नहीं है। यहा व्यञ्जन पर्याय व्यक्त पर्यायको माना है। जिसमें अञ्जन लगे हुए की तरह परका सम्बन्ध हो अथवा वि अञ्जन, विशेष अञ्जन हो• उसे व्यञ्जन कहते हैं, इस दृष्टिसे नारक, तिर्यञ्च मनुष्य और देव व्यञ्जनपर्याय कहलाते हैं।

सिद्धोके व्यञ्जन पर्याय मानने या न माननेके सम्बन्धमे प्रश्नोत्तर— व्यञ्जन पर्यायोसे सहित होना पर्यायार्थिक नयसे है, ऐसा सिद्धान्त उपस्थित होने पर यह शका होती है कि सब जीवोको दोनों पर्यायोसे संयुक्त कैसे बताया गया है? सिद्ध भगवान् तो सदा निरञ्जन हैं। न बाह्य अञ्जन है, न कर्म अञ्जन है, न विभाव अञ्जन है फिर यह बात कैसे घटित होती कि द्रव्यायार्थिक और पर्यायार्थिक—इन दोनो नयोमें सब जीव सदा संयुक्त हैं। प्रत्येक जीवमे द्रव्यार्थिकनयकी भी बात है और पर्यायार्थिक नयसे भी ऐसी बात है और पर्यायको माना है व्यञ्जनपर्याय। उसके उत्तरमें ऐसा जानना कि प्रथम तो व्यञ्जनपर्याय सिद्ध भी कहा जा सकता है, शुद्ध शुद्धव्यञ्जनपर्याय। शरीरादिकके सम्बन्धसे रहित आत्मप्रदेशके विस्तारात्मक शुद्धव्यञ्जन पर्याय है इसलिए पर्यायार्थिकनयसे भी वह सयुक्त है और यहा व्यञ्जनपर्याय से मतलब चतुर्गतिमें शरीरोंमे लिया जाय तो सिद्ध भगवान्के नैगमनयकी दृष्टिसे व्यञ्जनपर्याय कह सकते हैं। नैगमनय

का अर्थ है—निर्विकल्पग्राही नयसे जो विकल्प हो, सकल्प हो, आशय हो उसमें होने वाला जो परिज्ञान है वह नैगमनय है।

सिद्धोंमें व्यञ्जनपर्यायको सिद्ध करने वाली अपेक्षा— नैगमनय तीन प्रकारका होता है—भूतनैगम, वर्तमाननैगम और भाविनैगम्य तो भूत नैगमनयकी अपेक्षा भगवान् सिद्धमें भी व्यञ्जनपर्याय और अशुद्धपना सम्भव होता है। यह जीव तो वर्तमानमें अशुद्ध नहीं है किन्तु जो पहिले अशुद्धपर्याय थी तो भूतपर्यायकी अपेक्षा व्यञ्जन पर्यायकी बात कही जा सकती है क्योंकि वह भगवान् पूर्वकालमें व्यवहारनयसे ससारी था, बहुत क्या कहें, दोनों नयोंको सब जीवोंमें दताया है और दोनों नयोंके बलसे सभी जीव शुभ और अशुभ है, विवक्षाए यथासम्भव लगाना चाहिए। यहां यह बतलाया जा रहा है कि भगवत सर्वज्ञदेवविषयक बोध दोनों नयोंके आधीन है। एक नयकी बात नहीं है। जो प्रतिपक्षी नयकी बात भुलाकर केवल एक नयसे ही माना है उसको परिज्ञान निर्दोष नहीं होता है।

नयद्वयका गुंथन— भैया! दोनों नय ऐसे एक साथ गुथे हैं कि उनको मना ही नहीं किया जा सकता है। जैसे आपसे पूछे कि यह क्या है? तो आप बोलेंगे कि यह घड़ी है। यह घड़ी है, इसका ही अर्थ यह है कि यह घडाके अलावा और कुछ नही है। दोनों बाते एक साथ गुथी हुई हैं कि नही ज्ञानसे या केवल यह ही एक बात है कि घड़ी है? और घड़ीके अतिरिक्त और कुछ नही है? यह बात भी है कि नहीं है? यदि यह बात नही है तो इसका अर्थ है कि और कुछ भी हो गया है, चौकी आदिक हो गया है। और जब और कुछ हो गया तो यह घड़ी है ऐसा जो पहिला पक्ष है वह भी खण्डित हो गया। कुछ भी बात बोले, उसमे दोनो नय तो एक साथ लगे ही हैं। कुछ भी तो बोला जायेगा ना जो कहा जायेगा वह तो है और उसके अतिरिक्त कुछ नही है— ये दोनों बाते एक साथ उसमे आयी हैं या नही? उसीमें आयी। तो यही तो दोनो नयोकी व्याप्तता हुई।

किसी भी वस्तुधर्मकी साधनामें सप्त भंगोंकी अनिवार्यता— भैया! और भी देखो—कुछ भी एक बात हो वहा ७ बाते एक ही बातमे हो ही जाती हैं। जैसे कहें कि यह घड़ी है, तो इसमे दूसरी बात क्या सामने आयी कि यह अघड़ी नही है अर्थात् घड़ीके अलावा अन्य चीज नहीं है। फिर पूछा गया कि अच्छा तुम एक बात बतावो, हमे दो बाते न चाहियें। यह घडी है और अघड़ी नहीं है—इनमे तुम एक कोई बात यथार्थ बतावो। तो वह हो गया अवक्तव्य तो अब तीन बाते आ पडी कि नहीं। तुम एक प्रस्ताव रखो, कुछ भी अस्तित्व बतावो, जरा भी जीभ हिलावो

तो हिलानेके ही साथ तीन स्वतंत्र बातें आकर खड़ी हो ही जायेंगी। एक जो बात बतायी गयी उससे खिलाफ और एक जो बतायी गयी वह और एक अवक्तव्य। तब ये तीन भाग हो जाते हैं। तो जहा तीन स्वतंत्र बातें हैं वहां उनके मिलान चार हुआ करते हैं। इसी तरह इन तीन धर्मोंके मिलान भी चार हैं। यों तो तीन स्वरूप और चार मूल हुए, ऐसे ७ धर्म हो जाते हैं।

सप्तभंगपर दृष्टान्त— तीन चीजें रख लो—आम, नमक, मेथी, इन तीनों चीजोंको तुम अलग-अलग खा सकते हो, आमको केवल खावो, नमक अलग खा लो, मेथी अलग खा लो। और दो दो मिलाकर खावो तो आम नमक खावो आममेथी खा लो और नमक मेथी खालो, तीनो बातों का मिलान करलो। तीनोंका मिलान एक है तो इस तरह आप ७ स्वाद ले लेंगे। एक स्वतंत्र धर्म हो तो उसके धर्म ७ होते हैं और कदाचित् चार स्वतंत्र धर्म हों तो उसके स्वाद १५ हो गए।

भङ्ग निकालनेकी विधि— जितनी चीजें हों इतनी बार दो-दो रखो यदि तीनके भंग जानना है तो तीन जगह दो दो रख दो और उनका आपसमें गुणा करके एक घटा दो। दो-दूनी चार, चार दूनी ८ और एक कम कर दो तो रह गए ७। और ५ चीजें हों तो पांच बार दो दो रख दो-दो दूनी चार, चार दूनी ८, ८ दूनी १६ और १६ दूनी ३२, ठीक है, ३२ में १ घटा दो, ३१ का स्वाद आ जायेगा। तीन जब स्वतंत्र धर्म होने ही पड़ते हैं तो बात करनेमें जीभ हिलानेमें कोई रोक नहीं सकता है तो उसके विस्तारमें ७ भंग बन जाने अनिवार्य हैं। स्याद्वाद और सप्तभंगी अनिवार्य हैं, इन्हें कोई रोक नहीं सकता।

वचनमें सप्रतिपक्षताका गठन— हम कौन हैं? आदमी हैं। इसका अर्थ यही हुआ ना कि हम सिंह, हाथी, घोड़ा, बैल आदि कुछ नहीं हैं, सिर्फ आदमी हैं। दो बातें अपने आप आयीं कि नहीं आयीं? हम पुरुष हैं, इस का ही अर्थ हुआ कि, पुरुषके अलावा पशु-पक्षी आदि कुछ नहीं हैं। इन दोनोंको मानोगे या नहीं? अच्छा, एक बात कुछ न मानकर बताओ। हम आदमी हैं, यह बात मानने लायक है कि नहीं है या झूठ कह रहे हैं? मानने लायक है और हम हाथी, शेर, घोड़ा, बैल कुछ नहीं हैं। यह मानने लायक बात है कि नहीं? इन तीनोंमेंसे यदि एक कुछ नहीं माना गया, क्या नहीं माना गया? यह आदमी है— ऐसा नहीं माना गया तो आदमी ही नहीं रहा। आदमीके अलावा अन्य कुछ नहीं है—ऐसा नहीं माना गया। यदि यह सिंह, हाथी आदि बन जाएगा तो अभी यहीं आफत मच जाएगी।

वचनमें सप्रतिपक्षताकी ऐसी गठित व्यवस्था है कि यदि उनमें स्याद्वादका गठन नहीं है तो सब छितरा है, कुछ न रहेगा।

स्याद्वाद या निर्विकल्पता—भैया! या तो अन्तर्वहि पूर्ण चुप बैठो और बोलो तो स्याद्वाद मानो या निर्विकल्प बन जाओ। कोई जरूरत नही है स्याद्वादकी पकड़ करनेकी। करो ज्ञानानुभव, पर दूसरोके लिए समझाने चले या अपनेको भी समझाने चले व स्याद्वाद न माना तो काम न चलेगा। दोनों नयोका विरोध मिटा देने वाला यह स्याद्वादचिन्हित जिनेन्द्रवचन है। जीव नित्य है या अनित्य है? सदा रहता है या क्षण-क्षणमे मिटता जाता है? द्रव्यार्थिक दृष्टिमे सदा रहता है, यह विदित है और पर्यायार्थिक से क्षण-क्षणमे होता है—ये दोनों बाते कितने विरोधकी कही जा रही है, पर कोई विरोध नहीं है। नित्यकी बात अनित्यकी बात माने बिना नही बनती और अनित्यकी बात नित्यकी बात माने बिना नही बनती—ऐसा वस्तुस्वभाव है।

दृष्टान्तपूर्वक नयद्वयकी अनिवार्य सहयोगिता—जैसे कोई पुरुष ऐसा ढूंढो कि जिसके पीठ हाथ हो, और पेट न हो। क्या है कोई ऐसा? कोई मिले तो लावो। कोई ऐसा नटखटी लडका हो तो उसे पकड़ कर लावो। कोई न मिलेगा। अगर पेट नही है तो पीठ नहीं है और अगर पीठ नही है तो पेट नही है। तो जैसे पीठ और पेट दोनोंका ऐसा अनिवार्य सम्बन्ध है कि हटाया नही जा सकता, इसी तरह पर्यायार्थिक और द्रव्यार्थिक दोनो नयोका ऐसा अनिवार्य सम्बन्ध है कि वस्तुमें दोनो ही बाते गुम्फित है। दोनो नयोकी बाते पायी जाती हैं। दोनो नयोका विरोध मिटा देने वाला स्याद्वादचिन्हित जिनवचनोंमे जो पुरुष निर्मोह होकर रमण करता है, वह शीघ्र इस समयसारको प्राप्त करता है। कोई नई बात नहीं है, जिसे प्राप्त की जा रही हो, किन्तु वही पुरानी बात है, जो अनादिसे है। उसकी प्राप्तिकी बात कहते हैं, जो कुनयपक्षसे अखण्डित है अथवा नयपक्षसे भी अखण्डित है—ऐसे कारणसमयसारको वह पुरुष देख ही लेता है।

दियेके तले व ऊपर भी अन्धेरा—भैया! जगत्मे अन्य समस्त पदार्थोका मिलना सुगम है, किन्तु एक निजका यथार्थ परिज्ञान होना बहुत कठिन बात है। खुद ज्ञानमय हैं और खुदको अपनी ज्ञानमयताका पता न हो, यह कितने अन्धेरकी बात है? इसे कहो दिया तले अन्धेरा। आजकल तो दियाके ऊपर अन्धेरा रहता है। यह जो बल्ब जल रहा है, यह तो ऐसा दिया है, जिसके ऊपर अन्धेरा रहता है। आजकलके दिये उलटे हो गए। अब उनके ऊपर अन्धेरा है और जो पहिले दिये जलते थे, उनके नीचे

अन्धेरा था। अब ऐसा जमाना मिश्रणका हो गया कि ऊपर भी अन्धेरा और नीचे भी अन्धेरा। तो यों समझ लो कि ज्ञानके मार्गमें मोही जीवोंके लिए ऊपर भी अन्धेरा व नीचे भी अन्धेरा है। सो ऐसा मोह हो रहा है कि यह स्वय तो ज्ञानज्योतिर्मय है और स्वयको ही यह जान नहीं पाता है।

आत्महितके प्रयोजनकी धुनि— ज्ञानके मार्गमें दोनो नयोंके आधीन उपदेशको ग्रहण करना चाहिए। अपने प्रयोजनकी धुन रखो और सब नयोंकी बातोंमे हां कहो। जब आप अपने जीवनमें धुनि तो अपनी ही रखते हो, मगर सुन सबकी लेते हो--हलो! हलो! ठीक है, यह भी ठीक है और धुनि अपनी रखते हो तो यहा भी अपनी धुनि रखो स्वभावदृष्टिकी। जो कोई हितके लिए उपदेश करता हो, हां बिल्कुल ठीक है। वह भी स्वरूप है, हा यह भी स्वरूप है, पर धुनि रखो कारणसमयसारके आलम्बनकी। जैसे बहुत गप्पोंमें लगकर भी अपने प्रयोजनकी बात आप नहीं भूला करते हैं, इसी तरह सर्वप्रकारके काडोंमे लगकर भी ज्ञानी प्रयोजनकी बात नहीं भूलते हैं ज्ञानमें। जो दो नयोंके सम्बन्धमें नीतिका उल्लंघन नहीं करता और इस प्रकारकी परिणतिसे परमतत्त्वका परिज्ञान करके फिर नयपक्षसे अतीत होकर परमभावमें मग्न होता है—ऐसा ही सत्पुरुष उस समयसारको शाघ्र प्राप्त कर लेता है।

जैनसिद्धान्तमें समग्रवस्तुदर्शन-- जितने भी जो कुछ दर्शन हैं, वे सब जैन आगममें लिखित है। बौद्ध वेदाती, नैयायिक, मीमासक सबका दर्शन जैन आगममें अन्तर्निहित है, परखने वाला चाहिए। जहा स्याद्वाद की विवक्षा छोड दी गई है, वहा यह एकातरूपसे प्रकट होकर दुनियामें निराला प्रसिद्ध हो गया है, किन्तु कोई दर्शन निराला अलग नहीं है, सब वस्तुस्वरूपसे सम्बन्ध रखता है। एक हिंसाकाडोंकी बात छोड़कर अर्थात जो वस्तुकी ही बात है, वे सब बातें जैनआगममें पायी जाती हैं। द्रव्यार्थिकनय ही तो वेदात साख्य आदि सिद्धान्तोंको बताता है और पर्यायार्थिकनय ही तो बौद्ध व अन्य क्षणिकवाद सिद्धान्तको बताता है। निराली चीज हैं कहा अलग? पर दोनो नयोंके आधीन उपदेशको ग्रहण करे तो इन सब का निचोड पा सकते हैं और फिर सबको छोडकर निर्विकल्प समाधि जग सकती है।

स्याद्वाद बिना व्यवहारकी असभवता-- स्याद्वादके बिना तो व्यवहारमें, घर गृहस्थमें भी काम नहीं चलता है। नातेदारी, रिश्तेदारी—ये सब स्याद्वादके ही तो आधीन हैं। नातेदारी तो आधीन नही है, पर रिश्ते

दारी आधीन है। रिश्तेदारी और नातेदारीमें अन्तर है। रिश्तेदारी तो वह कहलाती है कि यह मेरा कुछ है और नातेदारीका अर्थ है--न मायने नहीं, ते मायने तुम्हारा, तुम्हारा नहीं है--ऐसी बातको नातेदारी कहते हैं। अब जगत्की रीति तो देखो--मुखसे तो कहते जाते हैं कि ये मेरे नातेदार है अर्थात् ये हमारे कुछ नही हैं और उन्हें ही अपना मानते जाते हैं। यह पिता है, पुत्र है, भतीजा है, एक ही पुरुष सब कुछ बन जाता है तो अपेक्षा ही तो जुदा-जुदा है।

स्याद्वादका एक दृष्टान्त-- चार अंधे बोले कि चलो हाथीकी खोज करें कि कैसा होता है? टटोलते-टटोलते एक हाथी मिला तथा एकके हाथ मे सूंड पड गयी तो वह कहता है कि हाथी तो मूसल जैसा होता है। एक के हाथमे पेट लग गया तो वह कहता है कि हाथी तो ढोल जैसा होता है। एकके हाथमें कान पड़ गया तो वह कहता है कि हाथी तो सूप जैसा होता हैं। एकके हाथमे पैर आ गए तो कहता है कि हाथी तो खम्भा जैसा होता है। यह चार अन्धोकी बात कह रहे हैं। अब वे चारो आपसमे लड़ने लगे। एक कहता है कि हाथी सूप जैसा होता है, दूसरा कहता है कि तू भूठ बोलता है, वह तो ढोल जैसा होता है। इस तरहसे चारो परस्परमे झगड़ने लगे। कुज समय बाद एक घुड़सवार निकला। पूछा कि क्या मामला है। चारोंने अपनी अपनी बात रखी। सभी कहे कि अजी! ये तीनो भूठ बोलते है, हाथी तो ऐसा होता है। उसने समझाया कि भाई! लड़ो नही। इसने कान पकड़ा तो सूप जैसा लगा, इसने पेट पकड़ा तो ढोल जैसा लगा, इसने पैर पकड़ा तो खम्भा जैसा लगा और इसने सूंड पकड़ी तो मूसल जैसी लगी। मूसल जानते हो किसे कहते है? मूसलमे कोई भी कला नहीं है, उठे और गिरे, इतना ही करना जानता है। अब उसने चारो अन्धोंको ढंगसे समझाया। तो उन चारोंका यह झगड़ा स्याद्वादने मिटा दिया।

भैया! लोग एक दूसरेके आशयका तो आदर नही करते, उनकी दृष्टि नही परखते और मनके मुताबिक अर्थ लगाते है तो इसीसे व्यक्तियों मे परस्परमे झगड़ा होने लगता है। अन्य जगह, अन्य दर्शन, अन्य खोजों से क्या करना है? एक स्याद्वादचिह्नित जैन आगममे वस्तुस्वरूपके सम्बन्ध मे सभी दर्शन हैं, सो वस्तुस्वरूपके परिज्ञानका अभ्यास करो। उन दोनों नयोकी विवक्षा अनुसार प्रयोग करो और वस्तुस्वरूपको सही पहिचानो। अच्छा, यह तो पहिले बताओ कि सिद्धभगवान् मुक्त हैं या नही। सिद्धभगवान् मुक्त होंगे ना। ये मुक्त है भी और नही भी। अरे! मुक्त कर्मोंसे ही

तो हैं कि ज्ञानसे भी मुक्त हो गए क्या ? ज्ञानसे मुक्त नहीं हैं। जब हम मुक्त जैसी बातको भी स्याद्वादसे सप्रतिपक्ष जान लेते हैं तो फिर अन्य बातोंका विवाद क्या है ? सब जाना जा सकता है और कोई स्वय बाह्य बातें बोले तो यों जान लो कि आशयसे तो ऐसा ही है। इसलिए वस्तुस्वरूपको दोनो नयोंसे भी परखिये और परखकर फिर जो एक वस्तुगत शाश्वत सहजस्वरूप दीखा, उसमे रत हो जाइये, यही उपदेशकी सार ग्रहण करनेकी पद्धति है।

मुद्रकः—मैनेजर, जैन साहित्य प्रेस, १८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ।